गिरिजाकुमार माथुर नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में

गिरिजाकुमार माथुर

नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में

विजयकुमार।

अभिनव प्रकाशन
२१-ए, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

●

प्रथम संस्करण : १९७६

मूल्य :
पैंतीस रुपये

मुद्रक :
सैनी प्रिंटर्स, बाजार मार्ग
विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२

Published by : R. S. CHAUHAN

पूज्य माता-पिता

को

सादर

प्राक्कथन

नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में, छायावादोत्तर काव्य-विकास में सतत् रूप से सक्रिय और विकसनशील कवियों (अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि) में जो महत्त्व गिरिजाकुमार माथुर को मिलना चाहिए था, वह उन्हें नहीं मिला। इसका मूल कारण सम्भवतः यही रहा कि समीक्षा की कसौटी पर उनकी रचनाओं को परखने का समग्र प्रयास किसी भी पारखी ने नहीं किया। अपनी रोमानी संवेदना, सामाजिक यथार्थ, युगीन परिप्रेक्ष्य में मानव की परिस्थितियों के सही मूल्यांकन तथा नवीन वैज्ञानिक चेतना की सरस व सरल अभिव्यक्ति के साथ-साथ टेकनीक के क्षेत्र में किये गए क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण वे निःसन्देह नयी कविता की एक ऐसी पृथक् और महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में सामने आते हैं जिनके काव्य के समग्र मूल्यांकन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रयास की यात्रा का एक सोपान है जिसमें उनकी समस्त महती काव्योपलब्धियों की समीक्षा के साथ-साथ यह स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है कि समानान्तर काव्यधाराओं से प्रभावित रहते हुए भी माथुरजी उनकी अतिवादी वृत्तियों से अछूते रहे हैं। नयी पीढ़ी के साथ चलकर भी वे अनास्थावादी नहीं हैं, आगत भविष्य पर उनकी पूर्ण आस्था है। वर्तमान विकृतियों के कुहासे में वह भारत के स्वर्णिम अतीत की गौरवमयी परम्पराओं से कहीं भी कटे नहीं, अपितु नये समाज के लिए उन विगत परम्पराओं की नये रूप में प्रस्तुती करके उनकी युगानुकूल पुनःप्रतिष्ठा की है।

इस पुस्तक में मैंने गिरिजाकुमार माथुर के नव प्रकाशित काव्य-संग्रह 'भीतरी नदी की यात्रा' सहित अब तक उपलब्ध सभी काव्य-संग्रहों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर उनके कृतित्व का मूल्यांकन करने की चेष्टा की है।

डॉ० सुषमा पाराशर का आभार मैं किन शब्दों में प्रकट करूँ, क्योंकि उनकी उत्साही वृत्ति, स्नेहसिक्त व्यवहार एवं पाण्डित्यपूर्ण सुझावों के परिणामस्वरूप ही यह महत्-कार्य सम्पन्न हो सका है। पुस्तक को लिखते समय अनेक बार श्री गिरिजाकुमार माथुर से साक्षात्कार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। शारीरिक रूप से अस्वस्थ रहने तथा अनेक आवश्यक कार्यों से घिरे रहने पर भी, अपने स्नेहिल व्यवहार से उन्होंने

जिस प्रकार मेरी अनेक शंकाओं का निवारण किया तथा कुछ अनुपलब्ध रचनाओं को अपने निजी पुस्तकालय से लेकर मेरी अनेक समस्याओं को दूर किया, उसके लिए मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ।

अन्त में मैं उन सभी सहयोगियों तथा लेखकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके सद्परामर्श तथा जिनकी कृतियाँ प्रस्तुत पुस्तक की रचना में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहायक रही हैं।

विजयकुमारी

हिन्दी विभाग
कॉलेज ऑफ, वोकेशनल स्टडीज
गोल मार्केट, नई दिल्ली

विषय-सूची

१ व्यक्तित्व (रचनाएं) और परिवेश

श्री गिरिजाकुमार माथुर 'नयी कविता' के एक अत्यन्त समर्थ आधार-स्तम्भ हैं। वे सतत् विकासशील कवि हैं। उनके काव्य को किसी एक वाद की सीमा में नहीं घेरा जा सकता। युगीन परिवेश को, समसामयिक प्रभावों को ग्रहण करता हुआ भी उनका काव्य उनके व्यक्तिगत जीवन की विविध परिस्थितियों को विशेष रूप से प्रतिबिम्बित करता रहा है। उनके काव्य के सम्यक् अध्ययन के लिए उनके व्यक्तित्व के उन मूल आधारों (परिवेशगत और व्यक्तिगत) का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है जिन्होंने उनकी सम्पूर्ण काव्य-चेतना को प्रभावित किया है।

जीवन-परिचय

गिरिजाकुमार माथुरजी का जन्म भाद्रपद कृष्ण द्वादशी, संवत् १९७७ (सन् १९१९) में अशोक नगर (मध्य प्रदेश) के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। 'टूटे खपरैल, 'सीले गलियारे, घुप्प अंधेरा, एकदम सुनसान परिवेश और उदासी, यह था उनके बचपन का वातावरण'।[1] जिसका प्रभाव माथुर साहब के काव्य पर पड़ा। उनकी ममतामयी माँ उनके जन्म के बाद ही गम्भीर रूप से बीमार हो गई और तैंतीस वर्ष तक चल-फिर सकने में असमर्थ रहीं। इस घटना ने कवि के मन पर यह प्रभाव छोड़ा कि 'दुःख' जीवन का आवश्यक अंग है। सहनशीलता, असंपृक्तता और अकेलापन के संस्कार कवि को अपने जीवन के आरम्भ (बचपन) से ही मिले हैं।

माथुर साहब के घर में शिक्षा का सुसंस्कृत वातावरण था। काव्य और संगीत के प्रति प्रेम माथुर साहब को पैतृक-संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ। उनकी माता काव्य और संगीत में रुचि रखने वाली प्रतिभा-सम्पन्न महिला थी। पिता भी अच्छे संगीतज्ञ थे। घर में प्राप्त पौराणिक ग्रन्थों, साहित्यिक पुस्तकों और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन द्वारा उनकी काव्य-रुचि अधिकाधिक विकसित और परिष्कृत होती गई।

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि (गिरिजाकुमार माथुर), भूमिका—(डॉ० कैलाश वाजपेयी) पृ० ५९६

माथुरजी अशोक नगर से सन् १९३२ में मिडिल पास करके गवर्नमेंट स्कूल झाँसी में दाखिल हुए। बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक सुषमा और साहित्यिक वातावरण ने उन्हें काव्य-सृजन की प्रेरणा दी। स्कूल में होने वाले कवि-सम्मेलनों में वे स्वरचित रचनाएँ पढ़ा करते थे। गणेशोत्सव पर "गिरिजाकुमार की उतारें सब आरती" वाली 'समस्यापूर्ति' से उनके आरम्भिक कवि-जीवन का प्रारम्भ होता है। जब माथुरजी विक्टोरिया कालेज (ग्वालियर) में बी० ए० के विद्यार्थी थे, उस समय कालेज में माखनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षता में एक कवि-सम्मेलन हुआ जिसमें माथुरजी ने भी अपनी रचना पढ़ी। माखनलालजी ने सराहना करते हुए कहा, "तुम इतनी अच्छी कविता लिखते हो कि अगर किसी भी बड़े कवि का नाम साथ जोड़ दिया जाए तो पहिचानना मुश्किल हो जाएगा कि रचना किसकी है।"[1] इस घटना से उनका मन आत्मग्लानि से भर गया और उन्होंने छायावादी प्रभाव से मुक्त होकर अपना मौलिक पथ न मिलने तक कविता न लिखने का संकल्प किया।

सन् १९३८ में जब वे अंग्रेजी विभाग में एम० ए० के विद्यार्थी थे, उन्होंने काव्य में वस्तु एवं शिल्प दोनों क्षेत्रों में नये प्रयोग प्रारम्भ किए। इसी समय में लिखी गई उनकी 'विजय', 'महायुद्ध', 'सात सागर का विष' और 'तीसरा पहर' आदि महत्त्वपूर्ण रचनाएँ कवि के छायावादी शिल्प से अलग होने का संकेत हैं।

व्यक्तित्व और कृतित्व:—सन् १९४१ में उन्होंने एम० ए० एल-एल० बी० किया और उसी वर्ष उनका प्रथम काव्य-संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हुआ। सन् १९४३ में अज्ञेय के सम्पादकत्व में प्रथम संग्रह 'तारसप्तक' में माथुरजी की नयी शैली की कविताओं का प्रकाशन हुआ। सन् १९४६ में इनके दूसरे काव्य-संग्रह 'नाश और निर्माण' का प्रकाशन हुआ। इस संग्रह में व्यक्ति के दु:खों, निराशाओं और घुटन को तो अभिव्यक्ति मिली ही है, साथ ही सामाजिक यथार्थ को भी निरूपित किया गया है। सन् १९५५ में उनका तीसरा काव्य-संग्रह 'धूप के धान' प्रकाशित हुआ। इसमें माथुरजी ने पहली बार समस्त एशिया को अखण्ड रूप में देखा और विश्व की समस्याओं का अपने ढंग से समाधान प्रस्तुत किया। सन् १९६१ में इनका चौथा काव्य-संग्रह 'शिलापंख चमकीले' प्रकाशित हुआ। यह संग्रह कवि के चिन्तन की प्रौढ़ता का प्रतीक है। माथुरजी का अन्तिम काव्य-संग्रह 'जो बंध नहीं सका' सन् १९६८ में प्रकाशित हुआ।

गिरिजाकुमार माथुर की काव्य-प्रतिभा समसामयिक काव्य-परम्पराओं से पूर्वतः बंध तो न सकी परन्तु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित अवश्य हुई है। उनका युग परिवर्तनशील था—अनेकानेक वाद एवं काव्य-परम्परायें उभर रही थीं, तिरोहित

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : भूमिका—डॉ० कैलाश वाजपेयी (गिरिजाकुमार माथुर), पृ० २

हो रही थीं। जिनमें कुछ प्रमुख थीं—छायावाद, वैयक्तिक काव्यधारा, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नयी कविता।

छायावाद में कल्पना, अमूर्त वायवीयता तथा रोमानी प्रवृत्ति की प्रधानता थी। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि गीतकारों ने वैयक्तिक सुख-दुःखमयी अनुभूतियों को प्रत्यक्षतः काव्य में अभिव्यक्त किया। इनकी भाषा सरल और बोलचाल के शब्दों से युक्त थी। प्रगतिवादी जनजीवन की यथार्थ समस्याओं को जनभाषा में अभिव्यक्त कर रहे थे। ये कवि सामाजिक चेतना के प्रति आग्रहशील तथा सिद्धान्तों के प्रति मताग्रह ही इनकी रचनाओं में प्रधान था। प्रयोगवादी कवि काव्य में नवीन सौन्दर्यबोध को लाने का प्रयास कर रहे थे। इन कवियों में परिवेश के प्रति गहरी जागरूकता आत्मविश्लेषण, मानवीय-संवेदना तथा बौद्धिकता की प्रधानता थी।

इन समस्त काव्य-धाराओं ने माथुरजी की काव्य-चेतना को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है।[1]

गिरिजाकुमार माथुर मूलतः रोमानी कवि हैं। रंग, रस और रोमान उनके काव्य के अनिवार्य एवं अभिन्न अंग हैं। उनके प्रारम्भिक काव्य-संग्रह 'मंजीर' के अधिकांश गीतों में—'बड़ा काजल आँजा है आज', 'रूठ गये वरदान सभी' में रोमानी उपमा को देखा जा सकता है। उनकी रोमनी कल्पना पर छायावाद का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। छायावाद की वायवीयता व कल्पना का माथुरजी के काव्य में सर्वथा अभाव है। उनके काव्य की 'आधारभूत अनुभूतियाँ' अत्यन्त सूक्ष्म और परिष्कृत होते हुए भी मूर्त और माँसल हैं। उनके काव्य में केवल छायावादी आभा का ही वर्णन नहीं है वरन् रूप और आभा का पूर्ण समन्वय इनके गीतों में पहली बार देखने को मिलता है। यथा—

> **'बड़ा काजल आंजा है आज**
> **भरी आँखों में हलकी लाज**
> **तुम्हारे ही महलों में प्रान**
> **जला क्या दीपक सारी रात**
> **निशा का सा पलकों पर चिन्ह**
> **जागती नींद नयन में प्रात।'**[2]

इस प्रकार के अनेक रूप व आभा से युक्त चित्रों की सृष्टि माथुरजी की कविताओं में हुई है। जिनमें रूप, रंग और आभा का सौन्दर्य झिलमिलाता दृष्टिगत होता है।

उनके काव्य की भाववस्तु काल्पनिक न होकर जीवन की मधुर भावनाओं से सम्बन्धित है। उनके प्रेम में सर्वत्र भोग और वासना का पुट दृष्टिगत होता है। जीवन

---

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि (गिरिजाकुमार माथुर), भूमिका—डॉ० नगेन्द्र, पृ० २८
२. मंजीर, माथुर, पृ० ६६

की कोमल और मधुर अनुभूतियों को उन्होंने बड़ी कलात्मकता से अभिव्यक्त किया है—

'दूज-कोर से उस टुकड़े पर
तिरने लगीं तुम्हारी सब सज्जित तस्वीरें
सेज सुनहली,
कसे हुए बन्धन में चूड़ी का झर जाना
निकल गईं सपने जैसी वे मीठी रातें
याद दिलाने रहा
यही छोटा-सा टुकड़ा।'[1]

यहाँ कवि ने मिलन के क्षण की एक मधुर अनुभूति को बड़ी बारीकी से, किन्तु पूरी गहराई के साथ अंकित करने का प्रयत्न किया है। शुद्ध रोमांस की यह भावना माथुरजी के अतिरिक्त अन्य कवियों में बहुत कम देखने को मिलती है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में 'उनमें (माथुरजी में) एक ओर छायावाद की अतीन्द्रिय शृंगार-भावना का अभाव है और दूसरी ओर प्रगतिवाद की अनगढ़ स्थूलता भी नहीं है। रूप और रस के मांसल स्पर्श परिष्कृत कल्पना के संसर्ग से अत्यन्त रमणीय बन गए हैं। यह शृंगार न तो भूखे तन और मन का आहार है और न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना-विहार है।[2]

अतः स्पष्ट है कि छायावाद का प्रत्यक्ष प्रभाव माथुरजी पर नहीं पड़ा है परन्तु उसकी रोमानी संवेदना उनके काव्य की मूल चेतना है।

गिरिजाकुमार माथुर पर वैयक्तिक गीतकारों (बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि) का प्रभाव इसी रूप में देखा जा सकता है कि उनके काव्य में भी जीवन के सुःख-दुखमयी अनुभुतियों की निश्छल आत्माभिव्यक्ति हुई है। प्रेम और सौन्दर्य से सम्बन्धित विविध मनःस्थितियों का भावुकतापूर्ण वर्णन हुआ है। मिलन की एक सूक्ष्म दृश्य-छवि को कवि ने सफलता से अंकित किया है—

'बोलने में
मुसकराहट की कनी
रह गई गड़कर
नहीं निकली अनी
खेल से
पल्ला जो उंगली पर कसा
मन लिपट कर रह गया
छूटा वहीं।'[3]

---

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ६५ और ६६
२. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि (गिरिजाकुमार माथुर) : भूमिका—डा० नगेन्द्र, पृ० २८
३. शिलापंख चमकीले, माथुर, पृ० ५

अनुभूति के इस चित्रांकन में परिवेश भी अपने पूरे प्रभाव के साथ चित्रित हो गया है। रोमांसपूर्ण परिवेश से सम्बन्धित उनकी कुछ अन्य कविताएँ हैं—'रेडियम की छाया', 'चूड़ी का टुकड़ा', 'रात हेमन्त की', 'वसन्त की रात', 'रेडियो कवि-सम्मेलन'।

गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में संयोग के क्षणों की रंगीन भावनाओं का ही नहीं, विरह की मार्मिक पीड़ा का भी चित्रण है। वैयक्तिक दुःखों, निराशा, असफलता तथा घुटन का उन्होंने सफलता से चित्रण किया है। यथा—

'प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने मरु—तपते यौवन में
रस बरसाने वाले आकर
विष ही छोड़ गए जीवन में।'[1]

वैयक्तिक वेदना और निराशा को व्यक्त करने वाली उनकी प्रमुख कविताएँ हैं—'दूर की आशा', 'रूठ गए वरदान सभी' 'विदा समय', 'मैं कैसे आनन्द मनाऊँ।'

वैयक्तिक गीतकारों की भाँति माथुरजी ने भी सीधी और सरल भाषा को अपनाया। रस और रोमांस के गीतों में कोमल, श्रुतिमधुर और बोलचाल के शब्दों का ही प्रयोग किया है। अपने गीतों को लक्षणा और व्यंजना के कृत्रिम आवरणों से बचाने का प्रयास किया है। उनकी कविताओं में मुक्त छन्द और आन्तरिक संगीतात्मकता की प्रधानता है।

माथुरजी की काव्य-चेतना में सामाजिक चेतना का भी संस्पर्श मिलता है। यहां आकर उनके वैयक्तिक सुख-दुःख समष्टि के सुख-दुःख हो गए। ऐसी कविताओं में आधुनिक जीवन की कटुता, संघर्ष, घुटन और अवसाद का चित्रण हुआ है। यान्त्रिक सभ्यता ने मनुष्य को कठोर, शुष्क और संवेदनहीन बना दिया है। यान्त्रिक सभ्यता के शिकंजे में मानवीय संवेदना दम तोड़ रही है—

'लोहे के दिल दिमाग हाथ इस्पात के
निरवधि समय को जो अंकों में बाँधते

× × ×

चलते हैं तार खिंचे मध्यवर्ग के पुतले
रोल्ड गोल्ड का कल्चर चमकते मुलम्मे से
लोहा, सीमेंट, कांच, कोलतार
आत्म-विहीन एक दैत्य-देह महाकार।'[2]

१. मंजीर—माथुर, पृ० ५६
१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ७१-७२

'क्रानिक मरीज' तथा 'मशीन का पुर्जा' आदि कविताओं के माध्यम से उन्होंने वर्तमान जीवन के वर्गगत वैषम्य को अभिव्यक्ति दी है। आर्थिक विषमता से पिसते हुए मध्यवर्ग की आशा, आकाँक्षाओं, निराशाओं तथा असन्तोष का माथुरजी ने मार्मिक चित्रांकन किया है—

'कुहरा भरा भोर जाड़ों का
शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं
ठिठुरन से सूरज की गरमी जमी हुई है
सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है
पर वह मजबूरी से कंपता उठ आया है
दोनों बांह कसे छाती पर।
उसकी फाइल सी भारी आँखों के नीचे
रातों जागी हुई कालस है
पीले से गालों पर है कुछ शेव बड़ी-सी
मसली हुई कमीज के कफ में
बटनों के बदले दो डोरे बंधे हुए हैं,
रफू किया उसका वह स्वेटर,
तीन सर्दियाँ देख चुका है।
× × ×
काली चिकनी सड़कों की ऊँची पटरी पर
बढ़ता जाता वह मशीन सा,
चांदी के पहियों पर चलती हुई
मोटरों के स्वर सुनता।
आसपास के ऊँचे चमकीले
बंगलों में रहने वाले।'[1]

कवि की वर्ग-वैषम्य की यह अनुभूति क्रान्ति व विद्रोह का जन्म नहीं देती। उनकी सामाजिक चेतना विध्वंस पर आश्रित नहीं है। उन्होंने सामाजिक वैषम्य की जिस पीड़ा को अनुभव किया उसे अपने काव्य में स्वच्छ रूप से व्यक्त कर दिया। ये कवि की स्वानुभूत अनुभूतियाँ हैं। डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'इन कविताओं में मध्यवर्ग की अनुभूतियों को ही आधार बनाया गया है, इसलिए इनमें एक ओर स्वानुभूति की सचाई है और दूसरी ओर अभिव्यक्ति में असंयत आक्रोश का सर्वथा अभाव भी है।[2]

माथुरजी की प्रगति-चेतना वास्तव में मध्यवर्ग की प्रगति-चेतना है जिसमें विध्वंस न होकर निर्माण है। चारों ओर फैले हुए अंधकार, अनास्था और घुटन के

१. नाश और निर्माण, पृ० ९२, ९३
२, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : भूमिका, डा० नगेन्द्र पृ० २९

बावजूद उनकी दृष्टि मानव-विकास की ओर लगी है। उनके काव्य में आस्था और विश्वास के स्वर अधिक हैं। यथा—

वे अम्बर-चुम्बी दीवारें
नीली पड़कर गिर जायेंगी
और मरे पत्थर सा यह युग बन जाएगा
नई जिन्दगी की अविजेय नींव का पत्थर।[1]

भविष्य में आस्था और विश्वास के ऐसे सशक्त स्वर नये कवियों में बहुत कम मिलते हैं। आधुनिक युग के मानव को संघर्ष, क्रान्ति, परस्पर द्वेष तथा तनाव से मुक्त करने के लिए कवि ने ऐतिहासिक महापुरुषों का गौरव-गान भी किया है। ये महापुरुष हैं—'राम', 'बुद्ध', और 'कबीर'। इस प्रकार कवि ने ऐतिहासिक परम्परा से भी अपना 'अविच्छिन्न सम्बन्ध' जोड़ा है और आज के भ्रान्त मानव को सही दिशा दिखाने का प्रयत्न किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माथुरजी की विचारधारा प्रगतिशील, मानवतावादी तथा विश्व-बंधुत्व की भावना से सम्पन्न है, किन्तु उन्हें प्रगतिवाद के घेरे में बाँध कर नहीं देखा जा सकता, क्योंकि उनके काव्य में नाश का नहीं निर्माण का प्राधान्य है। वस्तुतः 'हिन्दी कविता में नवीन सामाजिक चेतना का समावेश करने में गिरिजाकुमार का योगदान कम नहीं है, किन्तु उन्होंने इसे व्यापक नैतिक धरातल पर ही ग्रहण किया, रूढ सिद्धान्तवाद के रूप में नहीं।'[2]

नयी कविता के नयेपन ने भी माथुरजी के कृतित्व को प्रभावित किया है। किन्तु यह नवीनता न केवल बाह्याकार की है और न इसे समसामयिकता की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। यह नवीनता आन्तरिक और परिवर्तित भावबोध की है जिसका प्रादुर्भाव यान्त्रिक तथा वैज्ञानिक विकासक्रम के वर्तमान बिन्दु पर आकर हुआ है।[3]

कवि ने वर्तमान जीवन के मूल्यों को, नयी अनुभूतियों को नव्यतम शिल्प में ढालने का प्रयास किया है। उनकी कविताओं में कोई बौद्धिकता और चमत्कार-वादिता नहीं है। आधुनिक मानव की घुटन और निराशा का अंकन कवि इस प्रकार करता है—

'जिन्दगी है भार हुई
दुनिया है बहुत बोर,
'दम्भी, पाखण्डी, बहुरूपिये
हैं बड़े लोग'

१. नाश और निर्माण, पृ० १२८
२. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि —भूमिका—डा० नगेन्द्र, पृ० ३०
३. नयी कविता सीमाएँ और सम्भावनाएँ—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १०५

'बात ये है
सारा जमाना ही है बेईमान'
'आदमी असल में है
बेसिकली हैवान'
'क्या करे
विकृत हो गए हैं सभी मूल्यमान ।'[१]

कवि ने अर्ध-आधुनिकों की बातचीत द्वारा वर्ग-वैषम्य, मानव-जीवन की घुटन, तनाव व अनास्था को प्रकट किया है। आज मानव-मूल्य विकृत हो गए हैं। मनुष्य का जीवन निर्जीव रेजगारी के समान है जिसे स्वयं अपनी दिशा का ज्ञान नहीं है। कवि ने स्थान-स्थान पर मध्यवर्ग की बेचैनी, घबराहट व घुटन के स्वर को अभिव्यक्ति प्रदान की है। आधुनिक जीवन की एक क्रानिक मरीज़ के रूप में चित्रित किया है—

जीवन अपाहिज है
रोगी असाध्य बहुत साल से
पलंग पर है
चल फिर न सकता है।
× × ×
अपने में लीन
किन्तु आत्मविश्वासहीन
× × ×
अपने से अच्छों को
देखकर तरसता है।[२]

विज्ञान के नए उपकरणों को भी माथुरजी ने काव्य-सामग्री के रूप में प्रयुक्त किया है, क्योंकि वे वैज्ञानिक सभ्यता के विकास को मानव की शक्ति एवं साहस का प्रतीक मानते हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों को वे प्रकृति पर मानव की विजय का प्रतीक मानते हैं। 'पृथ्वीकल्प' और 'कल्पान्तर' आदि रचनाओं में उन्होंने वैज्ञानिक उपलब्धियों को आशा एवं उल्लास की दृष्टि से देखा है भय की दृष्टि से नहीं।

कविता के शिल्पपक्ष में नवीनता लाने का सफल प्रयास माथुरजी की रचनाओं में मिलता है। भाषा, छन्द, बिम्ब-योजना, प्रतीक-योजना, रंगयोजना आदि सभी क्षेत्रों मे उनकी देन महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने नवीन शब्दावली, वैज्ञानिक प्रतीक-योजना के द्वारा भाषा का संस्कार किया और उसे नवीन भाव-बोध के योग्य बनाया। भाषा को लक्षय व व्यंजना के घेरे से निकाल कर लोक-जीवन के निकट जाने का प्रयास किया।

१. जो बंध नहीं सका, पृ० ३०
२. नयी कविता सीमाएँ और सम्भावनाएँ—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १०५

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माथुरजी की काव्य-चेतना किसी एक काव्यधारा से प्रभावित नहीं हुई है। अप्रत्यक्ष रूप से भले ही उस पर किसी काव्य-धारा का प्रभाव पड़ा हो। छायावाद के वायवी प्रेम के स्थान पर उन्होंने भौतिक प्रेम की प्रतिष्ठा की। उन्होंने किसी काल्पनिक आलम्बन के प्रति प्रणय-निवेदन नहीं किया वरन् अपनी ही सुख-दुःखमयी अनुभूतियों को निश्छल अभिव्यक्ति प्रदान की। प्रगतिवादियों की भाँति उन्होंने शोषितवर्ग के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति प्रकट नहीं की वरन् मध्यवर्ग की स्वानुभूत अनुभूतियों को निश्छल अभिव्यक्ति प्रदान की। उन्होंने सामाजिक चेतना को मार्क्सवाद के सिद्धान्तों से संयुक्त न करके मानवता-वादी धरातल पर उतारने का प्रयास किया। वैज्ञानिक भाववस्तु तथा टेकनीक की नवीनता माथुरजी की अपनी विशेषता है।

परिवेश

साहित्य सदैव अपने युग-परिवेश से प्रभावित होता है। उस पर समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है, और 'आज के वैज्ञानिक युग में जबकि मानव के अनुभव और संवेदना-क्षेत्रों में पर्याप्त विकास हो गया है, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी देश के जीवन पर (तथा साहित्य पर) व्यापक प्रभाव डाला है।'[1] इसलिए इनका अध्ययन और भी आवश्यक है। साहित्य और कला को पूरी तरह समझने के लिए भी विभिन्न परिस्थितियों को समझना-परखना होता है, उसकी प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं के सूत्रों का अनुसंधान और विश्लेषण उन्हीं के आधार पर करना होता है—तभी उसका सम्पूर्ण रूप स्पष्ट हो सकता है। आज मानव-जीवन के मूल्य बड़ी तेजी से बदल रहे हैं और उसका प्रभाव साहित्य के बदलते रूप में अत्यन्त स्पष्ट हो रहा है। अतः आज की नयी कविता और उसके परिप्रेक्ष्य में माथुरजी की रचनाओं का अध्ययन करने से पूर्व उन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण आवश्यक है जिन्होंने माथुरजी और हिन्दी की नयी कविता को प्रभावित किया।

राजनीतिक परिवेश

स्वतन्त्रता-पूर्व का युग राजनीतिक दृष्टि से क्रान्ति का युग था। सर्वत्र राष्ट्रीय चेतना का प्रसार हो रहा था। अंग्रेजी शासन का दमन उसी अनुपात से बढ़ रहा था। सन् १८५७ के आसपास देशी राजा परस्पर-संघर्ष में रत थे। फलस्वरूप उनकी शक्ति क्षीण हो रही थी और अंग्रेज़ शक्तिशाली हो रहे थे। 'दलन, पराजय, तिरस्कार और घोर अपमान के आघात-प्रतिघात से राष्ट्र में स्वाभिमान एवं स्वतन्त्रता-प्राप्ति की

१. नया हिन्दी काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० १३

सुप्त चेतना करवट लेने लगी थी।'[1] इस चेतना की परिणति १८५७ की राष्ट्रीय क्रान्ति के रूप में प्रकट हुई। किन्तु यह क्रान्ति असफल हो गई।

क्रान्ति की यह आग अन्दर-ही-अन्दर सुलगती रही किन्तु सही नेतृत्व नहीं मिल रहा था। इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना को उकसाया। विदेशों में हुई क्रान्तियों से भी भारतीय नवयुवकों ने प्रेरणा ग्रहण की।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् देश में स्वतन्त्रता-संघर्ष जोरों से चला। गाँधीजी के नेतृत्व में यह सब कुछ हो रहा था। वे सत्य, अहिंसा तथा सत्याग्रहों के द्वारा देश को स्वाधीन कराना चाहते थे। 'सविनय अवज्ञा' और अत्याचार-सहिष्णुता का सात्विक एवं नैतिक बल लेकर—महायुद्ध-विजेता और भौतिक-बल-सम्पन्न अंग्रेजी राज्य से उसका युद्ध चल रहा था।'[2] गाँधीजी द्वारा चलाए गए आन्दोलन बार-बार असफल हो रहे थे किन्तु, साधारण जनता में उनका विश्वास बढ़ रहा था। वे असफल ही सही किन्तु क्रान्ति और विद्रोह को तो बढ़ावा दे ही रहे थे। काँग्रेस के गरम दल का जनता पर उतना प्रभाव नहीं था जितना गाँधीजी का। वस्तुत: गाँधीजी उस समय की राष्ट्रीय एवं राजनीतिक चेतना के प्रतीक थे। वे देश के स्वतन्त्रता आन्दोलनों में भाग लेने के साथ-साथ रचनात्मक कार्यों की ओर भी ध्यान दे रहे थे। वर्ग-वैषम्य, आर्थिक वैषम्य तथा छुआछूत आदि को दूर करने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने प्रेम और सद्भाव की भावना को जनता में जगाने का प्रयास किया। गाँधीजी ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुओं को (विशेषकर खादी को) प्रोत्साहन दिया। काँग्रेस पार्टी ने १९२९ में 'भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता' की घोषणा की।

१९२९ तक आते-आते देश मे समाजवादी विचारों का प्रभाव उत्पन्न हो चुका था। आर्थिक शोषण के विरुद्ध अनेक मजदूर व किसान सभाओं का संगठन हुआ। फलस्वरूप [illegible] वर्ग भी राष्ट्रीय संघर्ष के अनिवार्य अंग बन गए। छात्रों और सेना में भी राष्ट्रीय चेतना की लहर दौड़ रही थी। देश जब इस प्रकार की स्थिति से गुजर रहा था उसी समय द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया। जिसने विश्व के सभी देशों को प्रभावित किया। एशिया के सबसे शक्तिशाली देश जापान पर परमाणु बम के भीषण प्रहार किए गए।

इन समस्त परिस्थितियों ने आदर्शों, जीवन-मूल्यों, समाज-व्यवस्था के प्रति भावों और विचारधारा के प्रति अविचल निष्ठा को झकझोर दिया। साथ ही हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम के नृशंसता एवं अमानवीयतम प्रहार ने भी विश्व को युद्ध के सम्बन्ध में पुन: सोचने-विचारने के लिए विवश कर दिया।[3]

गोलमेज सम्मेलन की विफलता, १९३५ के चुनावों में काँग्रेस का विजयी होना,

१. आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ—कमलापति त्रिपाठी, पृ० ३
२. वही, पृ० ६५
३. वही, पृ० ६५

१९३७ में प्रान्तों में सत्ता ग्रहण करके १९३९ में त्याग दे देना तथा द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भ और इस युद्ध में भारतीयों की इच्छा के विरुद्ध हमारे साधनों का उपयोग आदि ऐसी घटनाएँ हैं जिससे देश में सर्वत्र निराशा का वातावरण छा गया। प्राचीन मान्यताओं से आस्था उठने लगी। पराजय, भय, अन्धकार तथा निराशा की अभिव्यक्ति काव्य में इस प्रकार हुई—

तुम बुझो न मेरे प्राणों की आलोक किरण
अब रुको न इस क्षण मेरे अन्तर की धड़कन।
विश्वास गिरा जाता है, गिरता जाता है

× × ×

ढह रहीं युगों की दीवारें मन में मेरे

× × ×

बेसुरी पराजय की प्रतिध्वनि से सारे स्वर
हैं काट रहे आधारहीन अन्धे फेरे।[1]

देश की राष्ट्रीय कविता ने वर्तमान अधःपतन, विपन्नताओं एवं विषमताओं का चित्रण किया है। पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह, राष्ट्रीय कविता की महत्त्वपूर्ण देन है। इन कवियों ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा जनता के मन में चेतना का संचार किया। जनसमुदाय को गौरवपूर्ण इतिहास से परिचित कराया। पराधीन राष्ट्र के सम्मुख अनेक महान् और उदार चरित्र प्रस्तुत किए और "इस प्रकार राष्ट्रीय तथा जातीय गौरव की भावनाओं को उदबुद्ध कर प्रकारान्तर से सामयिक राष्ट्रीय आन्दोलन को भी शक्ति तथा प्रेरणा दी।"[2] इस दृष्टि से प्रमुख कृतियाँ हैं—'साकेत', 'द्वापर', 'सिद्धराज' (मैथिलीशरण गुप्त), 'नकुल' (सियारामशरण गुप्त), 'हल्दीघाटी', 'जौहर' (श्यामनारायण पाण्डेय)' 'कुणाल' (सोहनलाल द्विवेदी), कृष्णायन (द्वारिका प्रसाद मिश्र) आदि।

गांधीवादी कवियों ने देश की पतनोन्मुख आर्थिक स्थिति का ही चित्रण किया है। उनके काव्य में क्रांति व आक्रोश की भावना नहीं है किन्तु, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर आदि ने पूँजीवादी तथा समाजवादी व्यवस्था से उत्पन्न वर्ग-वैषम्य का भी चित्रण किया है। यथा—

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे
कुछ पाँच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़े-से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर
पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ

---

१. नये पत्ते (पत्रिका)—नेमीचन्द्र जैन।
२. नया हिन्दी काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० ५१

> नारियां जन रही हैं गुलाम
> पैदा होना फिर मर जाना
> यह है लोगों का एक काम ?[१]

इसी प्रकार—

> लपक चाटते जूठे पत्ते
> जिस दिन मैंने देखा नर को ।[२]

इस प्रकार चाहे गांधीवादी कवि हो या वर्गचेतना से प्रभावित कवि (दिनकर आदि) इन दोनों प्रकार के कवियों का उद्देश्य जनता को स्वाधीनता के लिए प्रेरित करना था । समाज को अधोगति का चित्रण करके जनता में आक्रोश उत्पन्न करना था । कवि अपनी कविता के माध्यम से जनता को उद्बुद्ध कर रहे थे और गांधीजी अपने सत्याग्रह आन्दोलनों के द्वारा । गांधीजी के ये आन्दोलन यद्यपि बार-बार असफल हो रहे थे किन्तु फिर भी जनता पूरे विश्वास के साथ अपना सहयोग दे रही थी ।

सन् १९४० के आस-पास के भयंकर अकाल से बंगाल में हजारों व्यक्ति असमय मृत्यु की गोद में समा गये । इस ओर अंग्रेजों की दृष्टि पूर्णतः उपेक्षापूर्ण रही । देश में एक प्रकार की आर्थिक हलचल मच गई । इसी के साथ-साथ बर्मा के युद्ध में अंग्रेजों को जापानियों से बार-बार हार खानी पड़ी और भारतीयों को अपना व्यवसाय और नौकरी छोड़कर भारत लौटना पड़ा । फलस्वरूप पूरा उत्तरी भारत विस्थापितों से भर गया । देश की आर्थिक अवस्था और भी बिगड़ने लगी । वस्तुओं की कीमतें बढ़ गईं, बेरोजगारी पहले से भी भयंकर रूप धारण करने लगी । इन सब अनुभूतियों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति सन् १९४२ की जन-क्रान्ति के रूप में हुई ।

सन् १९४२ की क्रान्ति स्वतन्त्रता-संघर्ष के व्यापक स्वरूप को लेकर सामने आई । गांधीजी के नेतृत्व में 'भारत-छोड़ो' के नारे लगाते हुए जनसाधारण ने यह प्रतिज्ञा ली कि वे अंग्रेजों का सफाया करके देश को स्वतन्त्र करायेंगे । अपने रोष को प्रकट करने के लिए भयंकर प्रदर्शन किए गए । विदेशी वस्तुओं को नष्ट करना प्रारम्भ किया । क्रान्ति की यह भावना जनसाधारण तक ही सीमित नहीं रही । पुलिस, सेना तथा नाविकों में भी यह विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई थी । अनुशासन रखने वाली शक्तियाँ ही विद्रोह करने लगी थीं । अंग्रेजों ने इस आन्दोलन को दबाने का अथक प्रयास किया । अपनी नृशंसता एवं अमानवीय व्यवहार से उन्होंने क्रान्ति को दबाने का प्रयास किया । 'गाँव के गाँव जला डाले गये, असंख्य युवकों को जान से हाथ धोना पड़ा । अंग्रेजों के भयंकर अत्याचार के सामने भारतीय जीवन एक बार आतंकित होकर अपने विश्वास को खोने लगा ।'[३]

१. भैंसागाड़ी—भगवतीचरण वर्मा ।
२. जूठे पत्ते—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ।
३. छायावादोत्तर हिन्दी कविता—डॉ० रमाकान्त शर्मा, पृ० २८६

गांधीजी की अहिंसावादी नीति देश की समस्याओं को सुलझाने में असफल सिद्ध हो रही थी। जागरूक साहित्यकारों का झुकाव मार्क्सवाद की ओर होने लगा। १६३६ में प्रगतिशील लेखक-संघ की स्थापना हो चुकी थी। साहित्य जनजीवन के सम्पर्क में आ रहा था। जीवन में जो कुंठा, निराशा का अन्धकार फैला हुआ था उसे चीरती हुई सामाजिक चेतना विकसित हुई। देश की स्वतन्त्रता के लिए आत्मबलिदान की प्रेरणा देते हुए कवि कहता है—

> **कुछ मस्तक कम पड़ते होंगे।**
> **जब महाकाल की माला में**
> **मां मांग रही होगी आहुति**
> **जब स्वतन्त्रता की ज्वाला में**
> **क्षण भर भी पड़ असमंजस में**
> **पथ भूल न जाना पथिक कहीं।**[1]

प्रगतिवादी देश को स्वतन्त्र कराने के लिए क्रान्ति का आह्वान करते हैं। वे अहिंसा जैसे आदर्श को कोई महत्त्व नहीं देते। देश की अस्वस्थ परिस्थितियों को बदल देना चाहते हैं। शोषण करने वालों के प्रति रोष प्रकट करते हैं। फिर यह शोषणकर्ता चाहे अंग्रेज हो, साहूकार हो, या जमींदार हो। बमजीवियों के प्रति इस वर्ग के कवियों की पूर्ण सहानुभूति है।

सन् १६४२ की क्रान्ति राष्ट्रीय इतिहास में भले ही असफल रही हो किन्तु इतना स्पष्ट है कि इस क्रान्ति से सारे देश में चेतना की लहर दौड़ गई। जनसाधारण से लेकर बुद्धिजीवी-वर्ग तक सभी देश को पूर्ण स्वतन्त्र कराने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो गए। देश की जनता देश की स्वतन्त्रता के लिए एकप्राण थी और उस आजादी के तीन पहलू थे—राजनीतिक आजादी, सामाजिक आजादी (पुराने प्रगति-विरोधी संस्कारों से मुक्ति) तथा देशी-विदेशी शोषण से आजादी।[2] जनता के हृदय में स्वतंत्रता की भावना पूरे वेग से उफन रही थी।

स्वतन्त्रता की इस क्रान्ति को सन् १६४६ के नौ-सैनिक विद्रोह, सन् १६४६ के चुनावों में काँग्रेस की आशा से अधिक सफलता तथा नोआखाली में हिन्दुओं और मुसलमानों के साम्प्रदायिक दंगों से और भी बल प्राप्त हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध में जनवादी शक्तियों को विजय प्राप्त हुई थी। विश्व में समाजवादी सरकारों की स्थापना हो रही थी। इस प्रकार अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कारणों ने अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया था। भारतवर्ष को १५ अगस्त, सन् १६४७ को राजनीतिक स्वतन्त्रता तो मिली किन्तु देश का विभाजन हो गया।

स्वतन्त्रता से पूर्ण देश के जन-जन के मन में जो खुशी व उल्लास था, मर-मिटने का जो अदम्य उत्साह था, देश को खुशहाल बनाने की जो आशा थी वह स्वतंत्रता

१. पथ भूल न जाना पथिक कहीं—शिव मंगलसिंह 'सुमन'।
२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-काव्य—डा० रामगोपालसिंह चौहान, पृ० १४

मिलने पर धूमिल होती गई। देश-विभाजन से उत्पन्न साम्प्रदायिक दंगों, लूटखसोट तथा हत्याओं ने देश के जीवन में उथल-पुथल मचा दी। मानव मानव को अपना शत्रु समझ रहा था। इस साम्प्रदायिक विद्वेष की अभिव्यक्ति काव्य में भी हुई। यह अभिव्यक्ति दो रूपों में हुई। एक में साम्प्रदायिकता के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया और दूसरे में साम्प्रदायिकता दूर करने का प्रयास किया गया। क्षोभ का स्वर शिवमंगलसिंह 'सुमन', बच्चन, केदारनाथ अग्रवाल आदि की कविताओं में सुनाई पड़ा है—

> **आह ! धरती बंट गई है**
> **एक हिन्दुस्तान अब दो हो गया है**
> **आग पानी औ गगन तक बंट गया है**
> **आदमी का दिल-कलेजा कट गया है।**[१]

समसामयिक कवियों ने देश-विभाजन और साम्प्रदायिकता के मूल में अंग्रेजों की कूटनीति को ही माना। इन कवियों ने अपने दृढ़ स्वरों में अंग्रेजी सरकार की नीतियों की भर्त्सना की है—

> **विदेश की कुनीति हो गई सफल,**
> **समस्त जाति की न काम दी अकल**
> **सकी न भांप एक चाल, एक छल**
> **फरक हमें**
> **दिखा न फूल-**
> **शूल में।**[२]

देश-विभाजन के पश्चात् शरणार्थियों की समस्या गम्भीर रूप से सामने आई। हजारों की संख्या में लोग भारत आए और भारत से पाकिस्तान गए। उन्हें लूटा गया, स्त्रियों का अपहरण किया गया, बूढ़ों व बच्चों को मार डाला गया। स्वतन्त्रता से पूर्व संजोये हुए स्वप्न एक-एक करके टूटने लगे। शरणार्थियों की दयनीय स्थिति के अनेक चित्र हमें बच्चन, अज्ञेय आदि की कविता में मिलते हैं। इन कवियों ने शरणार्थियों के प्रति संवेदना प्रकट की है—

> **कैसे उन लोगों को सकते हैं बिसार**
> **पुश्तहा-पुश्त की धरती को कर नमस्कार**
> **जो चले काफिलों में मीलों के लिए आस**
> **कोई उनको अपनाएगा बांहें पसार**
> **जो भटक रहे अब भी सहते मानापमान,**
> **आजादी का दिन मना रहा हिन्दोस्तान।**[३]

१. हंस (अंक, मई १९४७)—केदारनाथ अग्रवाल।
२. चार के इधर-उधर—बच्चन, पृ० ७३
३. वही, पृ० ७८, ७९

शरणार्थी-समस्या पर अभी पूर्ण रूप से ध्यान केन्द्रित भी नहीं हुआ था कि पाकिस्तान ने कश्मीर को हथियाने के षड्यन्त्र रचने प्रारम्भ कर दिए। कश्मीर में हुए जन-आन्दोलन की प्रतिक्रिया अनेक कवियों पर हुई। गिरिजाकुमार माथुर ने भी अपनी कविता में इस आन्दोलन के स्वरूप को अंकित किया है—

> **बनकर शमशीर उठी जनता**
> **बजता परबत का नक्कारा**
> **नदियाँ बिजली बन कर उतर पड़ीं**
> **हो गया लाल ध्रुव का तारा**
> **धरती के यह जन फूल उठे बनकर मशाल**
> **हिम के सफेद दीपक की लौ अब हुई लाल।**[1]

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के सम्मुख एक अन्य समस्या आई—रियासतों के पुनर्गठन की। जूनागढ़ तथा हैदराबाद की रियासतों ने पाकिस्तान में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। लौह-पुरुष सरदार पटेल ने इन रियासतों का पुनर्गठन किया और १९५० में भारत को गणराज्य घोषित किया गया।

महात्मा गाँधी जिन्होंने अपना सारा जीवन देश की स्वतन्त्रता तथा साम्प्रदायिकता को दूर करने में लगा दिया, उन्हीं की हत्या ३० जनवरी, सन् १९४८ में कर दी गई। इस घटना से सारा देश विचलित हो गया। स्वातन्त्र्योत्तर कविता पर इस घटना का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। कुछ कवियों ने बापू के महाप्रयाण पर निराशा और क्षोभ का स्वर मुखरित किया और कुछ ने साम्प्रदायिकता के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उठाई। सब कवियों ने एक स्वर से उनकी साधना के महत्त्व को आंका और उन्हें युगादर्श के रूप में स्वीकार किया।'[2] इस दृष्टि से गिरिजाकुमार माथुर, पन्त, नागार्जुन, बच्चन आदि का नाम लिया जा सकता है। बापूजी के निधन पर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए गुप्तजी लिखते हैं—

> **'अरे राम कैसे हम झेलें अपनी लज्जा उसका शोक**
> **गया हमारे ही हाथों से अपना राष्ट्रपिता परलोक।**[3]

गिरिजाकुमार माथुर ने उनकी सांस्कृतिक देन को इस रूप में चित्रित किया है—

> **तप में रची अस्थियों से**
> **जन-वज्र हुआ निर्माण।**
> **मिट्टी नवयुग, तन का हरकन,**
> **रवि की नई उठान।**

१. धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ४९
२. नया हिन्दी काव्य और विवेचिना—डॉ० शंभुनाथ चतुर्वेदी, पृ० ७२
३. प्रतीक (१९४८)—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १०

तुमने मरकर मृत्यु मिटा दी,
विश्व निहाल हुआ ।[१]

शिवमंगल सिंह 'सुमन', नागार्जुन, बच्चन आदि ने गाँधीजी की हत्या का उत्तरदायी किसी एक व्यक्ति को नहीं माना वरन् सम्पूर्ण दूषित परम्परा को माना है। और इस परम्परा को दूर करने का दृढ संकल्प भी किया है—

बापू हम लेते शपथ
× × ×
नव-जीवन-ज्योति जलाएँगे ?[२]

'देश की राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त समग्र एशिया के जागरण का प्रभाव भी स्वातन्त्र्योत्तर कविता पर पड़ा। एशिया में जन-जागृति की जो लहर फैल रही थी, उसकी प्रतिक्रिया भी कवियों के मानस पर हुई। एशिया के देशों में स्वतन्त्रता, आत्मनिर्भता और स्वाभिमान की जो भावनाएँ पनप रही थीं। उनकी अभिव्यक्ति काव्य में की गई।'[३] एशिया के जागरण का स्वर बच्चन, माखनलाल चतुर्वेदी, 'सुमन', गिरजाकुमार माथुर आदि की कविताओं में मुखर हुआ है। उदयशंकर भट्ट ने एशिया के विभिन्न देशों के जागरण को इस रूप में प्रस्तुत किया है—

समग्र जातियां जगीं,
समग्र शक्तियाँ जगीं
समग्र एशिया जगा ।[४]

गिरिजाकुमार माथुर ने एशिया के जागरण को नए युग के प्रतीक के रूप में माना है—

मुड़ गये समय के चपल चरण
आया कृतान्त बन मुक्ति काल
मिट्टी का हर कन सुलग उठा
उठ गयी एशिया की मशाल ।[५]

देश-विभाजन, शरणार्थी-समस्या, कश्मीर-समस्या, रियासतों के पुनर्गठन की समस्या, गांधीजी की मृत्यु आदि देश की राजनीतिक परिस्थितियों ने काव्य को समय-समय पर प्रभावित किया। एशिया की जन-जागृति भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रही। इसके अतिरिक्त (१९६२), चीन के आक्रमण सन् १९६४ में जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु तथा सन् १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण ने भी हमारे काव्य को प्रभावित किया है।

१. धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ४७
२. पर आंखे नहीं भरीं—सुमन, पृ० १०९, ११०
३. नया हिन्दी काव्य और विवेचना—डॉ० शम्भुनाथ चतुर्वेदी, पृ० ७५
४. यथार्थ और कल्पना—उदयशंकर भट्ट, पृ० ४९
५. धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १६

वस्तुतः स्वतन्त्रता के पश्चात् से हमारे राजनीतिक जीवन में संघर्षों का ही प्राधान्य रहा है। जिस सुख और शान्ति की आशा हम स्वतन्त्रता से पूर्व करते थे वह प्राप्त नहीं हुई।

स्वतन्त्र भारत में यद्यपि सारे अधिकार जनता के हाथ में आ गए थे। हमारी अपनी सरकार थी किन्तु फिर भी देश विपन्न होता जा रहा था। विदेशी शत्रुओं (चीन और पाकिस्तान विशेष रूप से) से देश को हर समय चौकन्ने रहना पड़ा। अपनी राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग सेना पर खर्च करना पड़ा। फलतः स्वतन्त्रता के पश्चात् भी देश की आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। मात्र राजनीतिक स्वतन्त्रता देश के चतुर्दिक् विकास में असमर्थ रही। इन सब समस्याओं को हमारी सरकार शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने की चेष्टा कर रही है।

स्वतन्त्रता के २०, २२ वर्ष बाद भारत ने विश्व में अपनी स्थिति को सुदृढ बना लिया है। पंचशील के सिद्धान्तों के द्वारा भारत ने विश्व में शान्ति स्थापित की। आज भारत गुटों से अलग तटस्थ देशों में अपना सम्मानित स्थान रखता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् की विभिन्न समस्याओं को सुलझाता हुआ, अपनी आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ भारत आत्मनिर्भर और विकसित देश बनने का प्रयास कर रहा है। यही कारण है कि आज की हिन्दी-कविता में जहाँ एक ओर निराशा, कुण्ठा और पराजय के स्वरों की प्रधानता है वहीं दूसरी ओर 'नया सूरज निकलने', 'काली रात के हटने' और 'नयी सुबह उगने' की भी चर्चा है। हमारी आज की राजनीतिक परिस्थितियां काव्य में आस्था को प्रेरित करने वाली हैं।'

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। 'समष्टि की आशाओं, आकांक्षाओं की ही अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। स्वतन्त्रता से पूर्व के राजनीतिक जागरण की पृष्ठभूमि में सामाजिक आन्दोलनों का विशेष हाथ है।' और यदि यह कहा जाय कि राजनीतिक आन्दोलन को चारित्रिक दृढ़ता तथा विश्वास और अध्यवसाय की शक्ति प्राप्त हुई, तो कोई अत्युक्ति नहीं।[१] सामाजिक आन्दोलनों का उद्देश्य केवल सामाजिक सुधार नहीं था बल्कि राजनीतिक स्वाधीनता की प्राप्ति भी थी।

भारतीय समाज में अनेकानेक कुरीतियाँ रूढ़ परम्परायें बनकर युग युगों से घर करती जा रही हैं। सती-प्रथा, बालविवाह, जातिभेद, छुआछूत, स्त्री-शिक्षा का निषेध आदि बुराइयाँ जोरों पर थीं। इन कुरीतियों को दूर करने का प्रयास अनेकानेक संस्थाओं व समाजसुधारकों ने किया। इनमें से प्रमुख हैं—ब्रह्मसमाज, महाराष्ट्र समाज, आर्य समाज, थियोसाफिकल सोसायटी आदि के आन्दोलन तथा स्वामी रामकृष्ण

१. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास—रामबहोरी शुक्ल और डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० १२८

परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और श्री अरविन्द के वेदान्त दर्शन तथा गाँधीजी का अनासक्त, कर्मयोग का सिद्धान्त ।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से देश के महान् विचारकों ने पुराने संस्कारों, अन्ध-विश्वासों का विरोध किया जिससे समस्त देश में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना की लहर दौड़ गई । सांस्कृतिक आन्दोलनों का उद्देश्य प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान तथा पौराणिक ग्रन्थों के प्रति रुचि उत्पन्न करना था । इस क्षेत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्थान सर्वश्रेष्ठ है । उन्होंने वैदिक धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताया । नारी-शिक्षा को महत्त्व दिया । 'उनका व्यक्तित्व समाज-सुधार के क्षेत्र में वैसा ही क्रान्तिकारी रहा जैसा कि राजनीति के क्षेत्र में लोकमान्य तिलक का । स्वामीजी के दो कार्य महत्त्वपूर्ण रहे—राष्ट्रीय भावना का संचार और राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्थापना और प्रचार ।[1]

थियोसाफिकल सोसायटी का उद्देश्य धार्मिक कट्टरता और अति भौतिकता के प्रभाव को कम करके, उच्च धार्मिक तत्त्वों का प्रचार करना था । रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द आदि ने धर्म के सच्चे स्वरूप को सामने रखा । श्री अरविन्द ने अपना नया दर्शन प्रस्तुत किया । उनके मानवतावाद में अध्यात्मवाद का सम्मिश्रण है । विश्वकवि रवीन्द्र के मानवतावाद में आध्यात्मिकता, अन्तर्राष्ट्रीयता, विश्व-संस्कृति तथा जातिभेद को मिटाने की अद्भुत क्षमता है । ब्रह्म समाज ने भी सामाजिक रूढ़ियों को दूर करने का प्रयास किया ।

गांधीजी ने अन्धविश्वासों, पाखण्डों और सामाजिक कुरीतियों से घिरी हुई जनता में आत्मविश्वास, दृढ़ता तथा अन्य चारित्रिक गुणों का विकास किया । सत्य तथा अहिंसा के बल पर जन-जन के मन में क्रान्ति की भावना उत्पन्न की । देश को एकता के मार्ग पर अग्रसर किया । ग्रामों के उद्धार का प्रयास किया, नवीन चेतना की ज्योति विकीर्ण की । निम्नजाति के व्यक्तियों को ईसाई होने से बचाया । उन्हें समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने की चेष्टा की । शिक्षा को विशेष महत्त्व प्रदान किया । वस्तुतः तत्कालीन समाज में गांधीजी का प्रभाव बड़े व्यापक रूप से फैला हुआ था ।

वस्तुतः 'इन महान् पुरुषों के पास पूर्वजों द्वारा अर्जित सांस्कृतिक सम्पत्ति तो थी ही, साथ ही इनकी मौलिक दृष्टि राष्ट्रीय जीवन को नया प्रकाश देने में समर्थ थी । अस्वस्थता द्वारा जो रूढियाँ जोंक बनकर जीवन को चूसती हैं उनका इन क्रान्तिकारियों ने अपने व्यक्तित्व द्वारा प्रतिकार किया ।[2] इन समाजसुधारकों को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जनजागरण का महान् श्रेय प्राप्त है ।

'स्वामी रामतीर्थ का अद्वैत दर्शन, स्वामी रामकृष्ण परमहंस का मानवता-वादी समन्वय दर्शन, श्री विवेकानन्द की राष्ट्रीय संस्कृति की निष्ठा से विकसित

१. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास—रामबहोरी शुक्ल और डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० १२६
२. छायावादोत्तर हिन्दी कविता—डॉ० रमाकान्त शर्मा, पृ० ५८

मानवतावादी राष्ट्रीयता ने युग के अन्धकार को चीर डाला। इन महापुरुषों द्वारा उत्पन्न प्रकाश नये भारत का प्राण है।'[1]

आज की हिन्दी कविता में इस प्रकार की दार्शनिक और धार्मिक चेतनाओं का प्रभाव तो नहीं है किन्तु संस्कृति के नवनिर्माण का स्वर उसमें उमुख है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने विभिन्न कुरीतियों व बुराइयों को दूर करने का तथा देश के नव-निर्माण का प्रयास किया। अस्पृश्यता, जातिभेद, साम्प्रदायिकता तथा नारी-जीवन की विभिन्न समस्याओं आदि को कानून द्वारा दूर करने का प्रयास किया। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। शोषण-मुक्त समाजवादी व्यवस्था का लक्ष्य अपने सामने रखकर वर्ग-वैषम्य तथा बेरोजगारी को दूर करने का प्रयास किया और शिक्षा के प्रसार को महत्त्व दिया।

'भारत ने अपनी कल्पना के नए स्वतन्त्र, सुखी और सम्पन्न भारत के नव-निर्माण का लक्ष्य घोषित किया—वर्गहीन, शोषण-मुक्त समाजवादी समाजव्यवस्था के निर्माण का लक्ष्य—जिसमें न वर्ग-वैषम्य होगा, न वर्ण-असमानता, न जाति-पाति, न ऊँच-नीच, जिस समाज में हर व्यक्ति को न्याय, समानता, विकास करने का समान अवसर, शिक्षा, काम और सुरक्षा पाने का समान अधिकार होगा, जिस समाज के आधार-स्तम्भ हैं—जनवाद, आर्थिक समानता, राष्ट्रीय एकता और धार्मिक सहिष्णुता। जिसके तीन प्रेरक सूत्र हैं—आजादी की रक्षा, विश्वशान्ति और प्रगति।[2]

स्वतन्त्र भारत में यह आशा की गई कि प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति सुखी और सम्पन्न होगा। देश नवीन उत्साह से निर्माण-कार्यों में प्रवृत्त होगा। किन्तु स्वतन्त्रता के काफी वर्ष पश्चात् भी स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। मध्यवर्ग की स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गई। बढ़ते हुए पूँजीवाद का प्रभाव इसी वर्ग पर सर्वाधिक पड़ा। फलतः निष्क्रियता, कुण्ठा, निराशा का उदय हुआ जिसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रयोगवादी काव्य में मिलती है। आज व्यक्ति का झुकाव राष्ट्र और समाज से हटकर व्यक्तिवादी बन गया है। 'अपना हित' उनके लिए सर्वप्रमुख बन गया है। युद्ध की आशंका और भविष्य के प्रति अनिश्चय ने उसे और भी अधिक व्यक्तिवादी बना दिया है। फलतः जीवन-मूल्यों का विघटन हो रहा है। और इन्हीं की अभिव्यक्ति हमें साहित्य में दृष्टिगत होती है।

'आज का साहित्यकार व्यक्ति के रूप में समाज का अंग होने के नाते आज के परिवर्तन में स्वयं जीकर और उसके स्वरूप—अस्वस्थ प्रभावों तथा वर्तमानकाल के दुर्निवार संघर्षों का स्वयं-भोक्ता बनकर साहित्य में उन्हें अभिव्यक्ति दे रहा है।'[3]

१. छायावादोत्तर हिन्दी-कविता—डॉ० रमाकान्त शर्मा, पृ० ५८
२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-काव्य—डॉ० रामगोपालसिंह चौहान, पृ० २२
३. वही, पृ० ३०

आज के व्यक्ति और समाज का यह संघर्ष गिरिजाकुमार माथुर जी की रचनाओं में भी सफलता से अभिव्यक्त हुआ है। स्वतन्त्रता के पश्चात् का काल वास्तव में संक्रान्ति व पुनरुत्थान का काल है जिसमें व्यक्ति और समाज के मूल्यों में परस्पर टकराहट हो रही है। वह सहयोग की भावना जो स्वतन्त्रता से पूर्व हममें विद्यमान थी, जिसके आधार पर सम्पूर्ण भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार-आन्दोलन प्रारम्भ हुए थे, वह अब समाप्तप्राय: दृष्टिगत होती है। इस संक्रान्तिकाल का चित्रण माथुरजी ने इस प्रकार किया है—

यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त मंथन काल है
संक्रान्ति की घड़ियाँ बनी हैं श्रृंखला
बंदी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं।

× × ×

यह न युग है भावना का
स्वप्न का या कामना का
रूप-रस की कल्पना का

× × ×

क्योंकि यह संक्रान्ति की वेला घिरी है।[1]

माथुरजी की रचनाओं में धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों का चित्रण उस रूप में नहीं मिलता जिस प्रकार स्वतन्त्रता-पूर्व के धर्म व समाजसुधारकों ने किया। उनके काव्य में आज के मध्यवर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण स्पष्टता से हुआ है। आर्थिक विषमता ने इस वर्ग की समस्त खुशियों और आशाओं को छीन लिया है। उनके जीवन का उल्लास मिट गया है—

जन्मदिन की क्या खुशी होगी उन्हें
जिंदगी है मृत्यु से भारी जिन्हें
भूख, बीमारी, गरीबी, गंदगी
कौड़ियों के मोल बिकती जिंदगी।[2]

नयी कविता में जहाँ कुंठा, निराशा व क्षोभ का चित्रण हुआ है वहीं स्वर्णिम भविष्य की कल्पना भी विद्यमान है। भविष्य के प्रति आस्था का स्वर गिरिजाकुमार माथुर, हरिव्यास, नरेश मेहता, भारतभूषण अग्रवाल आदि में प्रमुख है। विषम परिस्थितियों से उत्पन्न जीवन में निराशा के अन्धकार को वे आस्था के दीप से प्रकाशित करना चाहते हैं।

१. धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ५२, ५३
२. वही, पृ० ९२

तुम आस्था का दीप जलाओ
अंधकार की हदें खींच दो,
लौ का यह छोटा-सा घेरा
नई किरण का बने पांवड़ा।[1]

अतः आज की नयी कविता में समाज में व्याप्त वर्ग-वैषम्य की भावना को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों में व्याप्त असंतोष के चित्रण के साथ-साथ इन्हें स्वर्णिम भविष्य पर भी पूर्ण विश्वास है। नये कवि आज के दुःख, दर्द की पृष्ठभूमि पर नयी पीढ़ी को सँवारना चाहते हैं। भारतीय संस्कृति का का पुनरुत्थान करना चाहते हैं।

आर्थिक परिवेश

भारत प्राकृतिक साधनों और जनशक्ति की दृष्टि से एक सम्पन्न राष्ट्र है किन्तु फिर भी यहाँ के निवासियों का जीवन अभावग्रस्त है। उसका प्रधान कारण यह है कि २०० वर्षों की परतन्त्रता और उससे पहले बार-बार विदेशी आक्रमणकर्ताओं की लूट-खसोट ने हमारी आर्थिक स्थिति को खोखला बना दिया है। ब्रिटिश सरकार की उद्योगनीति भारत के पक्ष में नहीं थी। वे हमारे यहाँ से सस्ता कच्चा माल ले जाते और अपने यहाँ से तैयार माल भारत में लाकर बेचते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश वस्तुओं का प्रचार भारत में सरलता से होने लगा और धीरे-धीरे हमारे यहाँ के उद्योगधन्धे बन्द होते गए, कारीगर बेकार हो गए। अब उनके लिए खेतिहर मजदूर बनने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था।

इधर किसानों की दशा भी अच्छी नहीं थी। खेती वही पुराने ढंग से होती थी। किन्तु अब उस पर अधिक व्यक्ति आश्रित रहने लगे थे। उद्योग-प्रधान भारत कृषि-प्रधान देश हो गया। जनसंख्या लगातार बढ़ रही थी, किन्तु रोजगार का कोई साधन नहीं था। कृषक महाजनों के ऋणों से और जमींदारों के अत्याचारों से तंग आ गए थे। सारे देश में घुटन और निराशा का वातावरण था।

शहरों में कुछ उद्योगधन्धे बड़े-बड़े पूँजीपतियों के अधीन थे। किन्तु उनमें आधुनिक यन्त्रों द्वारा कार्य किया जाता था। इससे पूँजीवाद को तो बढ़ावा मिला किन्तु बेरोजगारी और भी बढ़ती गई। एक ओर ऐश्वर्य-सम्पन्न व्यक्ति थे तो दूसरी ओर भूखे और बेकारी से तड़पते हुए मजदूर व्यक्ति। अमीरी और गरीबी ने वर्ग-संघर्ष की भावना को जन्म दिया। इस प्रकार एक ओर बढ़ती हुई बेरोजगारी थी जिसमें 'बड़े-बड़े शिक्षितों को नौकरी तथा व्यवसाय मिलना दूभर था। ग्रेजुएट और पोस्ट-ग्रेजुएट पचीस-तीस रुपये माहवार की नौकरी ढूँढ़ते-फिरते थे और वह भी मिलती न थी।[2] और दूसरी ओर सरकार ने साधारण जनता पर भारी कर लगा रखे

१. ओ अप्रस्तुत मन—भारतभूषण अग्रवाल, पृ० १२६
२. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ७३, ७४,

थे। साधारण व्यक्ति का जीवन दूभर हो रहा था। चारों ओर निराशा का वातावरण छाया हुआ था। संसार-व्यापी मन्दी ने सबकी कमर तोड़ दी थी। पूँजीपति दिन-पर-दिन अमीर हो रहे थे और गरीब और भी दरिद्र हो रहे थे। समाज पूँजीवादी साँचे में ढल रहा था। निम्नवर्ग और मध्यवर्ग अपनी जरूरत की चीजें भी नहीं जुटा पाते थे।

'आर्थिक दशा तंगी पर थी। निम्न-मध्यवर्ग सबसे अधिक दयनीय था। रोजमर्रा की छोटी-मोटी जरूरतें मन को चोट पहुँचाने लगी थीं। जो मन पहले बड़े-बड़े ऊँचे आदर्शों और सपनों के पंखों पर उड़ा करता था उस पर छोटी-छोटी भौतिक बातों का बोझ बढ़ चला था। घर बाजार में बिकने को जा पड़ा था, दुकान रसोई-घर को ग्रसने लगी थी। नैतिक दृष्टि से यह पतन का युग था।'[१]

द्वितीय विश्वयुद्ध, संसार-व्यापी मुद्रा-स्फीति तथा बंगाल के अकाल ने देश की स्थिति को और भी दयनीय बना दिया था। युद्ध की प्रगति के कारण देश के व्यापारी-वर्ग ने कालेधन से अपना घर भर लिया और कपड़ा, अनाज आदि आवश्यक वस्तुओं का अकारण अभाव हो गया। पैसा देने पर भी बाजार में चीजें उपलब्ध नहीं होती थीं। 'चोरबाजारी, मुनाफाखोरी आसमान को छूने लगीं···भूखमरी फैली, चीजों के दाम इतने आश्चर्यजनक हो गये कि सुनकर विश्वास नहीं होता था।'[२] इस प्रकार के वर्ग-वैषम्य और दयनीय आर्थिक स्थिति का सूक्ष्म चित्रण गिरिजाकुमार माथुर जी की रचनाओं में भी मिलता है यथा—

> **राजमार्ग पर एक सीध में सारी बत्ती,**
> **लम्बी श्वेत लकीर बनाती—**
> **जिसके नीचे दिखते**
> **गोरे-गोरे दम्पती,**
> **सुन्दरता का स्वर्ग······किन्तु**
> **आंखों के नीचे यह श्यामलता**
> **ड्रेसिंग-टेबिल में देखी थी,**
> **मेरी छै पैसे की कीमत।**[३]

१९४३ में बंगाल में अकाल पड़ा। यह भारतीय इतिहास में एक दुःखपूर्ण घटना थी, जिसने सारे भारत को प्रभावित किया। भूख से तड़पते हुए व्यक्तियों की सहायता के लिए सारा देश एक हो गया। किन्तु अंग्रेजी सरकार ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और लगभग ४० लाख लोग अपने प्राणों से हाथ धो बैठे। इस भीषण अकाल ने साहित्यकार के हृदय को झकझोर दिया। 'अकाल की लोमहर्षक,

१. हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ—डॉ० नामवरसिंह, पृ० ४६
२. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ८३
३. नाश और निर्माण, पृ० २७

हृदयविदारक, किन्तु यथार्थ घटनाओं के आधार पर अनेक उपन्यास, नाटक, कहानियाँ व कविताएँ लिखी गई। निराला, महादेवी वर्मा, बच्चन, सुमन, रांगेय राघव, रामविलास शर्मा आदि की अकाल पर लिखी कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि हिन्दी के कवियों पर अकाल की प्रतिक्रिया कितने गहरे रंग में हुई थी।'[1] इस अकारण दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर बाप बेटे को बेचता है अपनी क्षुधा की तृप्ति के लिए। छोटे-छोटे बच्चे मां के हृदय से लिपट कर अपना समय बिताते हैं। वस्तुतः बंगाल के इस भीषण अकाल से सारे देश में उथल-पुथल-सी मच गई। जिसका प्रभाव हमारी आर्थिक अवस्था पर काफी गहरा पड़ा।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाए। गाँवों से जमींदारी प्रथा का अन्त किया। इसके अतिरिक्त 'पूँजीपतियों के शोषण से मजदूरों की रक्षा करने के कानून बनाना, व्यक्तिगत पूँजी के समानान्तर सार्वजनिक पूँजी के उद्योगों की स्थापना, अनेक उद्योगों और आर्थिक संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण कर पूँजीपतियों के प्रभुत्व को कम करना, पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश का सर्वतोमुखी विकास कर राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और आत्म-निर्भर बनाने का प्रयास करना' भी इस कार्यक्रम के आवश्यक अंग थे।'[2]

किन्तु इन सब योजनाओं के बावजूद भारत सरकार न तो वर्ग-वैषम्य को दूर कर सकी, न कीमतें कम हुई, कर के भार से निम्नवर्ग और मध्यवर्ग और भी अधिक पिसता गया। बेरोजगारी का बोलबाला अब भी उतना ही था। दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं के मूल्य इतने बढ़ गये थे कि साधारण व्यक्ति उन्हें क्रय करने में असमर्थ था। 'अन्न और वस्त्र की कमी के कारण स्वदेशी सरकार ने 'कंट्रोल' और राशन की व्यवस्था की। परन्तु जनता को इससे संतोष नहीं हुआ। 'कंट्रोल' और राशन की व्यवस्था द्वारा भी अन्न और वस्त्र की समस्या न सुलझ सकी।'[3] अतः जनता में निराशा की भावना बलवती हो उठी। स्वतन्त्रता-पूर्व के संजोए हुए सुख-स्वप्न एक-एक करके समाप्त होने लगे। दैनिक जीवन के अभावों से भारतीय जन-समाज में आक्रोश उत्पन्न हुआ। श्रमजीवी वर्ग पूँजीपति के विरुद्ध अपना रोष हड़तालों द्वारा प्रकट कर रहे थे। स्वाधीनता का उल्लास जनजीवन में अधिक समय तक विद्यमान नहीं रहा, क्योंकि रोटी और रोजी की समस्या ने भयंकर रूप धारण कर लिया था।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् के कुछ वर्षों में भारत की आर्थिक स्थिति कितनी खराब थी इसका संकेत हमें भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के इस कथन से

१. नया हिन्दी-काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० २१
२. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-काव्य—डॉ० रामगोपालसिंह चौहान, पृ० २३
३. नया हिन्दी काव्य और विवेचना—डॉ० शम्भुनाथ चतुर्वेदी, पृ० ७८

स्पष्ट होता है—'अपनी दीर्घकालीन पराधीनता और विश्वव्यापी युद्ध और उसके परिणामों ने हमारे आगे बहुत-सी अत्यावश्यक समस्याओं को एक साथ डाल दिया है। आज हमारी जनता के लिए भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं की कमी है और हम मुद्रा-स्फीति और बढ़ती हुई कीमतों के बवंडर में पड़ गए हैं।'[१] इन समस्याओं को दूर करने का आश्वासन हमारी सरकार बराबर दे रही थी, किन्तु ये ऐसी समस्याएँ थीं जिनका शीघ्र समाधान किसी सरकार के लिए कठिन था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् लिखी गई कविताओं में देश की बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति से उत्पन्न अभावों की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है—

> **'वही धुआँ है**
> **वही क्षुधा है**
> **वही कर्ज है**
> **वही सूद है ?'**[२]

साधारण मनुष्य की स्थिति स्वतन्त्रता के पश्चात् भी वैसी ही रही जैसी स्वतन्त्रता से पूर्व थी। अतः स्वतन्त्रता उसके लिए नया उल्लास लेकर नहीं आई। स्वतन्त्रता के लिए देश के वीरों ने अपने जीवन तक की बलि दे दी किन्तु सत्ता मुट्ठी-भर स्वार्थी लोगों के हाथों में आ गई जिन्हें जनता के हित से बढ़कर अपना हित अधिक प्रिय था—

> **'युग-युग से शोषित जनता जो इस दिन की रही प्रतीक्षा में,**
> **दी कितने शहीदों लालों ने बलि की अग्नि-परीक्षाएँ।**
> **मुक्ति मिली जब-जब, मुट्ठी भर लोगों को वरदान मिला,**
> **शेष बचे लाखों लोगों को पुनः बुभुक्षित प्राण मिला।'**[३]

अतः स्वतन्त्रता के पूर्व की जो आर्थिक स्थिति थी स्वतन्त्रता के पश्चात् और भी अधिक बिगड़ गई। आज देश का मध्यवर्ग और निम्नवर्ग कठिन परिस्थितियों से गुजर रहा है। 'देश की गिरती हुई आर्थिक स्थिति के प्रतीक-रूप में किसान व मजदूर की भाँति मध्यवर्ग का भी उतना ही महत्त्व है।'[४] विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में यद्यपि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है किन्तु औसत व्यक्तिगत आय में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। पूँजीपतियों की सर्वसम्पन्न शक्ति से श्रमजीवी वर्ग आज भी उतना ही पीड़ित है। निम्न और मध्यवर्ग के इसी आक्रोश कुंठा और निराशा की अभिव्यक्ति नयी कविता में हुई है।

साहित्यिक परिवेश

साहित्य सतत् विकासशील चेतना है। उसमें निरन्तर परिवर्तन और परिवर्द्धन

१. स्वाधीनता और उसके बाद—पंडित नेहरू, पृ० ८
२. हंस (अंक ५, फरवरी १९४८) : केदारनाथ अग्रवाल।
३. अनुक्षण—प्रभाकर माचवे, पृ० ७३
४. नया हिन्दी-काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० २९

होता रहता है। कोई भी साहित्यिक धारा प्राचीन परम्परा से परिसीमित नहीं रह सकती। उस पर बदलती हुई राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का, समसामयिक परिवेश का प्रभाव पड़ना निश्चित है। वह भाषा व भाव के परिचित व सीमित क्षेत्र से निकलकर नये-नये भाव-क्षेत्रों का अन्वेषण करती है। साहित्य में प्राचीन मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों की खोज की जाती है। अतः परिवर्तन और प्रयोग का यह कार्य साहित्य में निरन्तर चलता है। आधुनिक हिन्दी-काव्य में भी यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

आधुनिक युग नवजागरण और पुनरुत्थान का युग है। इस काल तक आते-आते रीतिकालीन भाषा और भाव दोनों ही निरर्थक तथा प्रभावहीन हो गए थे। वे आधुनिक युग की समस्याओं तथा नवीन भाव-बोध को अभिव्यक्ति देने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हो रहे थे। अतः काव्य के क्षेत्र में क्रान्ति हुई और ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हुई। शृंगार के संकुचित दायरे से निकलकर कवियों की दृष्टि जीवन के व्यापक रूप तक गई तथा तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया। जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का संचार करने का प्रयास किया गया।

इस युग के कवि अतीत के गौरव और वर्तमान की दुर्दशा से प्रभावित हुए। अंग्रेजी राज्य में विदेशी माल यहाँ आकर बिकता था और भारत की धन-सम्पत्ति विदेशों में जा रही थी, इस बात का विरोध इस युग के कवियों ने किया अवश्य किन्तु दबे स्वरों में, राजभक्ति की ओट में—

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जाय यहै अति ख्वारी॥

स्वर्णिम अतीत का वर्णन करके इन कवियों ने समसामयिक उत्पादन की चेष्टा की। इन कवियों का उद्देश्य राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्रेरणा देने के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों, प्रशासनिक अव्यवस्था तथा अंग्रेजों की शोषण नीति की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करना भी था।

इतना होने पर भी 'भारतेन्दुयुगीन काव्यधारा में उस सूक्ष्म जीवन-दृष्टि का अभाव है जो समवेत मानव-नियति की सर्वव्यापी अभिव्यक्ति कर सके। इस युग के काव्य का महत्त्व जागरण की पुकार में है, पर यह उद्‌बोधन का स्वर भी संकीर्ण हिन्दू पुनरुत्थानवाद की ओर ही अधिक उन्मुख है, सम्पूर्ण सांस्कृतिक नवोत्थान से इसका लगाव कम है।"[1]

भारतेन्दुयुगीन अनेक कवियों ने ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ी बोली में काव्य-रचना प्रारम्भ की। किन्तु ये रचनाएँ मात्र तुकबन्दी हैं, इनमें खड़ी बोली का प्रौढ़ रूप देखने को नहीं मिलता। इस दृष्टि से द्विवेदी युग का विशेष महत्त्व है। इस युग के

१. काव्यधारा—शिवदानसिंह चौहान, पृ० ५

प्रवर्तक महावीरप्रसाद द्विवेदी जी हैं। 'द्विवेदीजी के आगमन से एक उच्चकोटि का नैसर्गिक बुद्धिवाद हिन्दी में प्रसारित हुआ। प्रेम और शृंगार नाम की वस्तुएँ साहित्य से लुप्त हो चलीं, भक्तिकाव्य, जो शृंगारिक पृष्ठभूमि पर आधारित था, उपेक्षित होने लगा। इन दोनों के बदले देश-भक्ति और नैतिक मानवता की भी प्रतिष्ठा होने लगी।'[1]

द्विवेदीयुगीन कविता में राष्ट्रीयता के स्वरों की प्रधानता है इसीलिए ऐहिक जीवन को महत्त्व दिया गया है। इस युग के अनेक गौरव-ग्रन्थ हैं जिनमें देशभक्ति की प्रधानता के साथ-साथ ईश्वर को मानवीय धतातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। गुप्तजी का 'साकेत', हरिऔधजी का 'प्रियप्रवास', सत्यनारायण कविरत्न का 'भ्रमर-दूत', 'रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिन्तामणि' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। देश की राजनीति परिस्थितियों तथा पौराणिक आख्यानों से इन कवियों ने विषयवस्तु का चुनाव किया है। गुप्तजी के काव्य में उपेक्षिताओं के प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट की गई है और उनके धूमिल चरित्र को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। इस युग के कवियों ने पौराणिक पात्र राम और कृष्ण को आधुनिक मानव के सम्पूर्ण गुण-दोषों के साथ प्रस्तुत किया है। उनके राम इस भूतल को स्वर्ग बनाने आए हैं--अपने श्रेष्ठ मानवीय गुणों के आधार पर। इस युग के काव्य में सर्वत्र कर्म का सन्देश मिलता है—

> **क्यों तुम यों निराश होते हो ?**
> **भारत हुआ श्मशान हाय—यह कहकर क्यों रोते हो ?**
> **यदि वह महाश्मशान बना है, तो भी शिव का श्मशान बना है।**
> **शिव है वहां शक्ति भी होगी, क्यों धीरज खोते हो ?**[2]

द्विवेदीयुगीन आदर्शवादिता के कारण शृंगार रस काव्य के क्षेत्र से लगभग बहिष्कृत-सा हो गया था। फलस्वरूप काव्य में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता हो गई। लक्षणा व व्यंजना के स्थान पर अभिधा की प्रधानता हो गई। उपदेशवृत्ति जोर पकड़ने लगी। नैतिकता का प्राधान्य हो गया था।

अतः 'द्विवेदी युग की कविता इतिवृत्तात्मक, भौतिकतापरक, उपदेशात्मक, कल्पनाहीन वस्तुओं की बाह्य पकड़ या सतही विवेचन, दैनिक जीवन के विषयों पर अधिक आश्रित होने के साथ-ही-साथ संस्कृतनिष्ठ एवं अनगढ़ भाषा में लिखी जा रही थी। इन विशेषताओं की प्रतिक्रियास्वरूप हिन्दी में छायावाद का प्रादुर्भाव हुआ।'[3] छायावाद ने सबसे पहले इतिवृत्तात्मकता व स्थूलता के प्रतिक्रियास्वरूप सूक्ष्मता को प्रश्रय दिया।

१. अपराजिता (भूमिका)—नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० १
२. स्वदेश संगीत—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ७२
३. नयी कविता और उसका मूल्यांकन—सुरेशचन्द्र 'सहल', पृ० १

छायावादी काव्य में सर्वप्रथम व्यक्ति की आन्तरिक मनोदशाओं का चित्रण किया गया। मानव को मानव-रूप में उसकी दुर्बलता और सबलता-सहित स्वीकार किया गया। व्यक्ति-प्रधान काव्य की रचना की गई। छायावादी कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी थी। उन्होंने आत्मपरक वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति काव्य में की। छायावादी कवि का दुःख-सुख प्रत्येक भारतवासी का दुःख-सुख है। उसका 'मैं' प्रत्येक भारतवासी का 'मैं' है। इस विषय में महादेवीजी ने लिखा है—'इस व्यक्ति-प्रधान युग में व्यक्तिगत सुख-दुःख, अपनी अभिव्यक्ति के लिये आकुल थे, अतः छायायुग का काव्य स्वानुभूति-प्रधान होने के कारण वैयक्तिक उल्लास-विषाद का सफल माध्यम बन सका।'[1]

छायावादी काव्य सौन्दर्यानुभूतियों का काव्य है। उसमें मानवीय सौन्दर्य तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। सौन्दर्य के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण रोमानी है। मानवीकरण के द्वारा प्रकृति पर मानवीय-व्यापारों का आरोप किया गया है। 'जूही की कली' को अति सुन्दर, कोमल नारी के रूप में इस प्रकार चित्रित किया है—

'विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली
दृग बन्द किये, शिथिल-पत्रांक में
बासंती निशा थी।'[2]

प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से मानव-जीवन के यथार्थ की भी सुन्दर अभिव्यक्ति की गई है। ऐसी कविताओं में कवि का चिन्तन-पक्ष प्रधान हो गया है—

'ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार
इस धारा-सा ही जग का क्रम,
शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत संगम।'[3]

छायावादी काव्य में प्रकृति का आधिक्य अवंध्य है किन्तु, उसे प्रकृतिवादी काव्य नहीं कहा जा सकता। छायावादी काव्य में नारी के सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। उसमें अश्लीलता व स्थूलता का सर्वथा अभाव है। स्थूल क्रिया-व्यापारों की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। उसने सूक्ष्म भावदशाओं का ही चित्रण किया है। कवियों ने नारी-सौन्दर्य की अतीन्द्रिय रूपरेखा ही बनाई है—

१. विवेचनात्मक गद्य—महादेवी वर्मा, पृ० ६७
२. रश्मिबन्ध—सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ६६
३. आधुनिक कवि (भाग २)—पन्त, पृ० ११

'तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान।'[1]

अतः अधिकांशतः छायावादी कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति और मानव-जीवन के सुन्दर पक्ष को ही अपने काव्य में स्थान दिया है। प्रकृति के भयावह रूप को इन्होंने स्वीकार नहीं किया है। नारी की लज्जा व सुकुमारता का जैसा अद्वितीय वर्णन प्रसाद की कामायनी में हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। नारी के प्रति जिज्ञासात्मक तथा कौतूहलपरक भाव की अभिव्यक्ति का एक उदाहरण—

नीरव निशीथ में लतिका-सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये-सी।
आलिंगन का जादू पढ़ती ?[2]

छायावाद की प्रारम्भिक रचनाओं में भावुकता व जिज्ञासा की प्रधानता है। किन्तु उत्तरोत्तर इस भावुकता का स्थान प्रौढ़ चिन्तन ने ले लिया है। किशोरावस्था की अमर्यादित भावनाएँ क्रमशः कम होती गई हैं। छायावादी काव्य में भावुकता व कल्पना का भी सांमजस्य दृष्टिगत होता है। निराला ने अपनी कविता को 'कल्पना के ये विह्वल बाल' कहा। इन कवियों ने केवल भाव पक्ष में ही नहीं कला पक्ष में और उसमें भी अप्रस्तुत योजना में कल्पना का आश्रय लिया गया है। कवि की ये कल्पनाएँ जब तक सहज संप्रेषीणय रहीं तब तक यह काव्य उच्चकोटि का रहा किन्तु जब इसमें गहन गूढ़ता, भाव अस्पष्टता आदि प्रवृत्तियों का आगमन हुआ तब यह काव्य निरन्तर पतन की ओर अग्रसर होने लगा। छायावादी कवि कल्पना की उड़ान में कभी-कभी इतने ऊँचे उठ जाया करते थे कि विषय-वस्तु अस्पष्ट हो जाती थी।

समसामयिक राष्ट्रीय आन्दोलनों का प्रभाव छायावाद पर अप्रत्यक्ष रूप से ही पड़ा है। छायावादी कवियों ने स्वर्णिम अतीत के चित्रण से वर्तमान स्थिति के सुधार का प्रयास किया है। भारत भूमि की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' आदि रचनाओं पर प्रत्येक भारतीय गर्व कर सकता है। राष्ट्रीय जनजागरण के साथ-साथ छायावादी काव्य ने सामंती रूढ़ियों के विरुद्ध भी विद्रोह किया है। 'नैतिकता की पुरानी सढ़ियों को तोड़कर उसने मानव-विवेक पर आधारित प्रेम-सम्बन्धी नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना की, सूखे सुधारवाद की जगह छायावाद ने रागात्मक आत्म-संकार का बीजारोपण किया, मध्यवर्ग को व्यावसायिक प्रयोगशीलता तथा अत्यन्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण से मुक्तकर आदर्श-

१. कामायनी—जयशंकर प्रसाद, पृ० ३०७
२. वही, पृष्ठ १०७

वाद के उच्च आकाश में विचरण करने की प्रेरणा दी।[1]

छायावादी कवियों ने अपनी सुकोमल भावव्यंजना के अनुकूल ही शब्दचयन, वाक्यविन्यास, प्रतीक-योजना तथा छन्द का गठन किया। खड़ी बोली की कर्णकटु शीघ्रता, रसहीनता समाप्त कर कोमलता व मार्दव का समावेश किया। छायावादी काव्य को प्रसाद ने प्रकृति के सौन्दर्य तथा भावकल्पना से सम्पन्न किया। निराला ने छन्द के बन्धनों को तोड़ा, पन्त ने शब्दों को नवीन भावबोध से सम्पन्न किया और महादेवी ने उसमें करुणा के नवस्पन्दन का संचार किया। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से छायावादी काव्य का स्थान अद्वितीय है। इन कवियों ने बोलचाल की भाषा को सौष्ठव-सम्पन्न बनाया। उसमें लाक्षणिकता व चित्रात्मकता का समावेश किया।

छायावादी कविता अपनी वैयक्तिता, अमर्यादित भावुकता, कल्पनाशीलता तथा पलायनवादी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे पतनोन्मुख होने लगी। फलस्वरूप काव्य के क्षेत्र में कुण्ठा और निराशा का साम्राज्य छाने लगा। छायावादी सूक्ष्मता साधारण पाठक की पहुँच के बाहर हो गई। कल्पना की क्लिष्टता के लक्षणा-व्यंजना के कवच के कारण काव्य में दुर्बोधता की प्रवृत्ति पनपने लगी। अतः छायावाद अपनी ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों के कारण समाप्तप्राय होने लगा और काव्य के क्षेत्र में वैयक्तिक गीतधारा का उदय हुआ।

वैयक्तिकता की प्रधानता छायावादी काव्य में भी थी किन्तु व्यक्ति के दुख-सुख, आशा-आकांक्षाओं की जितनी प्रत्यक्ष किन्तु सरल ढंग से अभिव्यक्ति इस गीति-धारा के काव्य में हुई वह अन्यत्र दुर्लभ है। व्यक्तिवादी कवियों ने अपने दुःख, वेदना व निराशा का चित्रण किया है। 'इस कविता का अपना पृथक् वैशिष्ट्य है। एक ओर जहाँ यह प्राचीन आत्मनिवेदन-पूर्ण काव्य से भिन्न है, दूसरी ओर छायावाद की प्रच्छन्न आत्माभिव्यक्ति से भी इसका पार्थक्य है।'[2]

इस काव्यधारा के प्रमुख कवि है—बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, भगवतीचरण वर्मा आदि। इन सभी कवियों ने मन को अतृप्ति, व्याकुलता तथा कसक का वर्णन किया है। अपने दुःख-सुखमयी अनुभूतियों की निश्छल अभिव्यक्ति की है उन्हें लक्षणा-व्यंजना के कृत्रिम आवरणों में नहीं लपेटा है। इसलिए कवि कहता है—

'छिपाने को छिपा लेता, विकल चीत्कार मैं सारा
मगर अभिव्यक्ति की मानव-सुलभ तृष्णा नहीं जाती।'[3]

प्रणय के क्षेत्र में आने वाले सामाजिक बन्धनों, नियमों का इन कवियों ने अपनी शक्ति भर विरोध प्रकट किया है। सामाजिक रीतियाँ इनकी अनुभूतियों के विपरीत पड़ती है इसीलिए उन्होंने उनका जमकर विरोध किया है।

१. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ—डा० नामवरसिंह, पृष्ठ २७
२. आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डा० नगेन्द्र, पृ० ६३
३. लाल चूनर—'अंचल', पृ० ११

'हाय रे,' ! निष्ठुर उपेक्षा,' क्या मुझे अधिकार
जो कहूँ मेरे लिए निष्ठुर बना संसार ।[1]

इन कवियों ने प्रणय के स्थूल और मांसल चित्र खींचे । यही कारण है कि इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गई है और चुम्बन और आलिंगन का यथातथ्य चित्रण किया है ।

वैयक्तिक कवियों में निराशा की भी प्रधानता है जिस पर स्पष्टतः तत्कालीन असफल राजनीतिक आन्दोलनों का प्रभाव है । निराशा की यह प्रवृत्ति बच्चन व नरेन्द्र शर्मा में अधिक देखी जा सकती है । अपने असफल प्रणय के कारण इन्हें मृत्यु ही सर्वश्रेष्ठ लगती है । जीवन की अपेक्षा इन्हें मृत्यु अधिक रुचिकर लगती है—

'कब समझोगे तुम जीवनधन, है
कितना उन्माद मरण में ।'[2]

जीवन के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण क्षणभंगुर है । वे अपने जीवन के छोटे-से-छोटे क्षण में भी पूर्ण तृप्ति प्राप्त करना चाहते हैं । ये कवि जीवन को 'दो दिन की माया' समझते हैं । ईश्वर और धर्म के प्रति इन्हें आस्था नहीं है । जीवन के संघर्ष से दूर-दूर भागना चाहते हैं । 'हाला' के नशे में जीवन की विषमताओं से दूर जाना चाहते हैं, अपनी स्थिति को भुला देना चाहते हैं—

'इस प्याले में थोड़ा सा मद जरा और भर देना साकी !
जिससे फिर पीने की दिल में रह न जाय कुछ हसरत बाकी ।'[3]

इन विशेषताओं के अतिरिक्त कविता की भाषा को बोलचाल के अधिक निकट लाने का प्रयास इन कवियों ने किया । बच्चन आदि ने सरल व मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया ।

इस धारा के मुख्य कवि हैं—बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा । बच्चन के गीतों ने हिन्दी कविता का एक नया रूप-संस्कार किया । भाषा सरल, मुहावरेदार और व्यक्तिगत वेदना की अनुभूति से मूर्त और भावसिक्त हो उठी ।[4] भगवतीचरण वर्मा ने भी प्रेम और यौवन के ही गीत गाए हैं । इनमें चिन्तन की प्रौढ़ता का सर्वथा अभाव पाया जाता है ।

'व्यक्तिपरक कवियों में नरेन्द्र शर्मा ही ऐसे है जिन्हें व्यक्ति के द्वन्द्व ने कदाचित सबसे अधिक पीडित किया है । इस द्वन्द्व का ही यह परिणाम है कि उन्होंने न केवल उत्तर छायावाद की विविध प्रवृत्तियों को वाणी दी है, प्रत्युत ईमानदारी और निष्ठा-पूर्वक मन के क्षय व ह्रास का सामना करते हुए युगनीवाद के क्षेत्र में प्रविष्ट होकर

१. प्रवासी के गीता—नरेन्द्र शर्मा, पृ० ६४
२. संचयिता—आरसी प्रसाद, पृ० ३१६
३. वही, पृ० १४१
४. काव्यधारा—शिवदानसिंह चौहान, पृ० ३७

उसकी भी अनेकानेक प्रवृत्तियों को साकार किया है।[१] नरेन्द्र शर्मा ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था तथा निराशा का संकेत 'प्रवासी के गीत' की भूमिका में दिया है।

वैयक्तिक गीत-धारा की व्यक्तिनिष्ठता निराशावाद व मांसलता के कारण हिन्दी में प्रगतिवाद का उदय हुआ। ये कवि पराजय, मृत्यु और अहंवाद की परिधि में ही सीमित रहे।

सन् १९३६ के आस-पास काव्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद का उदय हुआ जो अपने साथ सामाजिक यथार्थ और नवीन दृष्टिकोण लाया। इस वर्ग के कवियों के वैयक्तिक दु:ख-सुख को नहीं, समाज के हितों व अभावों को काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान की। वस्तुतः ये कवि समष्टि के हैं व्यष्टि के नहीं। इन्होंने युग की आवश्यकताओं को सीधी और सरल भाषा में प्रस्तुत किया। प्रगतिवादी काव्य में आस्था व विश्वास के स्वरों की प्रधानता है पलायन व निराश की नहीं।[२]

प्रगतिवादी आन्दोलन कोई विदेशी आन्दोलन नहीं है। सन् १९३६ के आस-पास देश के राजनीतिक व सामाजिक क्षितिज पर कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिनका व्यापक प्रभाव इस काव्य पर देखा जा सकता है। इन परिस्थितियों में प्रमुख हैं—"द्वितीय महायुद्ध, उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न आर्थिक-राजनीतिक संकट, मंहगाई, बेकारी, सन् १९४२ की क्रान्ति, उसका दमन, मजदूरों की ऐतिहासिक हड़तालें, किसानों के जागृत अभियान और सबसे बढ़कर बंगाल का अकाल।"[३] इन परिस्थितियों ने जहाँ राष्ट्रीय आन्दोलनों को गति प्रदान की वहीं साहित्यकारों को भी नवीन पथ का अनुसरण करने की प्रेरणा दी। समसामयिक युगजीवन का चित्रण करने की प्रेरणा दी।

हिन्दी में प्रगतिवाद का उदय 'रूपाभ' के प्रकाशन से हुआ। पन्त, जो सुकोमल भावनाओं के कवि कहलाते थे, काव्य में माधुर्य और सौंदर्य को ही अधिक स्थान देते थे, उन्होंने भी छायावाद की अतिशय रूमानियत, कल्पना व पलायनवादिता का विरोध किया। 'रूपाभ' के सम्पादकीय प्रसारण में उन्होंने कहा—'इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं—अतएव पोषण-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।'[४] यही कारण है कि प्रगतिवाद में व्यक्ति को नहीं समाज को महत्त्व मिला। निराशा व वेदना के स्थान पर आस्था व आशा के स्वर प्रधान हुए। ऊँचे रोमान्स के स्थान पर मांसलता को प्रधानता मिली। हिन्दी काव्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद एक व्यापक चेतनाओं को लेकर अवतीर्ण हुआ।

प्रगतिवादी विचारों को अभिव्यक्ति हमें सर्वप्रथम पन्त की रचनाओं में उपलब्ध होती है। उन्होंने छायावाद का 'युगान्त' कर नए युग को वाणी प्रदान की। प्रगतिवादी

१. नया हिन्दी काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० १३२
२. वही, पृ० १४७
३. रूपाभ (सम्पादकीय)—पन्त : अंक १, जुलाई १९३८
४. वही।

काव्य में उनके ग्रंथ 'युगवाणी का विशेष महत्त्व है। पन्त वस्तुतः परिवर्तनशील कवि हैं। छायावाद जब अपनी डावांडोल स्थिति पर आ गया और युग-जीवन की अभिव्यक्ति में असमर्थ हो गया तब पन्त ने प्रगतिवाद के लिए स्वस्थ धरातल की खोज की। छायावादी जीर्ण-शीर्ण के स्थान पर नूतनता का आवाहन किया—

'गा कोकिल बरसा पावक कण, नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।[1]

पन्त की 'युगवाणी' में नवमानवता व वर्ग-वैषम्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। उसमें मध्यवर्ग, कृषक, श्रमजीवी कलाकारों पर कविताएँ लिखी गई हैं जिनमें स्पष्टतः समाजवादी व गांधीवादी विचारधारा का समन्वय दृष्टिगत होता है। 'ग्राम्या' में ग्रामीण विषमता के साथ-साथ शोषितों का मार्मिक चित्रण किया है। धोबियों का नाच, चमारों का नाच आदि में ग्रामीणों के हर्ष और उल्लास को प्रकट किया गया है।

पन्त के साथ निराला भी प्रगतिवाद के प्रेरक के रूप में सामने आये हैं। निराला में यह परिवर्तन यकायक नहीं हुआ, क्योंकि वे तो बहुत पहले से ही कविता को 'जीवन की छवि' मानते हुए सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति कर रहे थे। उनके प्रथम काव्य-संग्रह 'परिमल' की 'विधवा', 'भिक्षुक', 'बादलराग' आदि कविताएँ इस दृष्टि से द्रष्टव्य है। 'निराला' ने ही सर्वप्रथम यह अनुभव किया कि भारत माता केवल ग्रामवासिनी कृषक-वधू ही नहीं है बल्कि वह इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई एक सामान्य मजदूर नारी भी है।[2]

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
× × ×
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार।[3]

'कुकुरमुता' वर्ग-वैषम्य को साकार करने वाली रचना है। कुकुरमुता को निम्न वर्ग के प्रतीक के रूप में देखा गया है। 'गर्म पकौड़ी', 'प्रेमसंगीत' आदि ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें सामाजिक पर नाना व्यंग किए गए हैं और यथार्थ का नग्न स्वरूप हमारे सामने चित्रित किया गया है।

अतः प्रगतिवादी विचारधारा का आरम्भिक स्वरूप हमें पन्त व निराला की रचनाओं में उपलब्ध होता है, किन्तु इसका व्यापक स्वरूप डॉ० रामविलास शर्मा 'सुमन'

१. युगान्त—पन्त, पृ० १२
२. नयी कविता और उसका मूल्यांकन—सुरेशचन्द्र सहल, पृ० ५
३. कविश्री—निराला, पृ० १६

रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल तथा नागार्जुन आदि की रचनाओं में मिलता है। प्रगतिवादी आन्दोलन कई रूपों में मिलता है—'विदेशी दासता के विरोध के रूप में, पूँजीवाद-सामंतवाद के विरोध के रूप में, साम्प्रदायिकता के विरोध के रूप में, सामाजिक सुधारों के आग्रह के रूप में और युद्ध-विरोध एवं शान्ति के प्रश्रय के रूप में।'[१]

देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते हुए वीरों को प्रत्यक्ष उद्बोधन इस धारा के कवियों ने बहुत कम दिया है। यत्र-तत्र ही ऐसे स्वर देखने को मिलते हैं—

वह शक्ति किसमें, बन्द रक्खे सैनिकों को
सन् बयालिस के तरुण बलिदानियों को।[२]

इन कवियों में वैसी हुँकार नहीं है जो माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर आदि की रचनाओं में उपलब्ध होती है।

पूँजीवाद का विरोध प्रगतिवादी काव्य में स्पष्टता से हुआ है। आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न यथार्थ चित्रण किया गया है। शोषण करने वाले साहूकारों व महाजनों के प्रति रोष प्रकट किया गया है—

ठहर जा जालिम महाजन
तनिक तू खोल वह मदिरा-विघूर्णित आंख अपनी
देख कहां से आया, बता सम्पत्ति, बता साम्राज्य ?[३]

मुट्ठीभर धनियों के नाश का इन कवियों ने आह्वान किया है। समाज में क्रान्ति उत्पन्न करके ये कवि नव-निर्माण करना चाहते हैं। शोषितों को एकत्र करके व्यापक क्रान्ति का सूत्रपात करना चाहते हैं जिसके द्वारा सामाजिक रूढ़ियां, वर्ग-वैषम्य तथा जीर्ण मर्यादाएँ समाप्त हो जाएँ और ऐसे समाज की स्थापना हो जिसमें किसी प्रकार का वैषम्य न हो। अमीरी-गरीबी समाप्त हो जाए, मानव-मानव में किसी प्रकार का भेदभाव न हो—

'युग की गंगा सब प्राचीन डुबोयेगी ही
नई बस्तियां, शान्ति-निकेतन नव संसार बसायेगी ही।'[४]

प्रगतिवादियों को भारतभूमि तथा भारत के निवासियों से अटूट प्रेम है। वे उस धरती से प्रेम करते हैं जिस पर कठिन परिश्रम करके किसान अन्न उगाता है। देश को धनधान्य सम्पन्न करता है। वस्तुतः यह धरती उसी की है जो मिट्टी के साथ स्वयं मिट्टी बनता है, अपना सुख और और ऐश्वर्य त्यागता है—

१. नया हिन्दी काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० १६७
२. रूप तरंग—डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० ८०
३. पिघलते पत्थर—रांगेय राघव, पृ० ११३-११४
४. युग की गंगा—केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ८

'यह धरती है उस किसान की
जो मिट्टी का पूर्ण पारखी, जो मिट्टी के संग साथ है।'[१]

प्रगतिवादी कवियों ने ग्रामीण जीवन के यथार्थ चित्र अंकित किए हैं। उनमें प्रचलित कुरीतियों, अन्धविश्वास का ज्यों-का-त्यों चित्रण किया गया है। उनके आचार-विचार, रहन-सहन का वर्णन किया है। कुछ कवियों का ध्यान नगर की कुरूपताओं की ओर भी गया है। इन कुरूपताओं ने नागरिक जीवन को असभ्य तथा स्वार्थी बना दिया है—

'घाट, धर्मशाला, अदालतें, विद्यालय, वेश्यालय सारे
श्रमजीवी की उस हड्डी से टिके हुए हैं
जिस हड्डी को सभ्य आदमी के
समाज ने टेढ़ी करके मोड़ दिया है।'[२]

वर्तमान युग की विषमता, दैन्यता से आक्रान्त होने पर भी प्रगतिवावादी कवि आस्थावान है। वह नागरिक व ग्रामीण जीवन की कुरूपताओं को दूर करने का सदैव प्रयास करता है और स्वर्णिम भविष्य में आस्था रखता है। निराशा व घुटन के कुहासे को दूर कर वह प्रकाश में आने का प्रयास करता है—

'इसी आँच से फसलों का इन्सान उठेगा
चांद चूम लेने को जीवन ज्वार उठेगा।'[३]

उसका दृढ़ विश्वास है कि शोषण और दासत्व का जब नाश होगा तभी मानवता का विकास होगा, अभावों की समाप्ति होगी और यह तभी होगा जब सभी व्यक्ति परिश्रमी होंगे, अपने स्वार्थों को भूल जाएँगे, समाज के हित में ही अपना हित समझेंगे।

प्रगतिवादी काव्य में प्रणय के स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों ही रूप देखने को मिलते हैं। इनकी प्रेमभावना विशुद्ध मांसल है। नारी उनके लिए न माया है और न पूज्या, वह सहगामिनी और चिरसंगिनी है। कवि प्रणय को जीवन का एक प्रबल सत्य मानते हैं—

'जानता हूँ तुम कभी पीछे नहीं हो,
सहचरी आओ धरो अपना चरण तुम
जय तुम्हारे नूपुरों में बंध गई है,
स्वस्थ जीवन की इकाई मैं नहीं था,
पूर्णता है मिलन में अपने सुहागिन
.........प्राण मेरी बात सुन लो।'[४]

---

१. युग की गंगा—केदारनाथ अग्रवाल, पृ० ४५
२. वही, पृ० ३५
३. विश्वास बढ़ता ही गया—शिवमंगलसिंह 'सुमन', पृ० १०३
४. प्रगति—रांगेय राघव, पृ० १०६

नारी का प्रेम सहज प्रेरणा का प्रतीक है, व्यक्तित्व के विकास का माध्यम है। वह मात्र शारीरिक तृप्ति करने वाला नहीं है वरन् जीवन की कठिन-से-कठिन बाधाओं को भी पार करने का सहज विश्वास है—

'मुझे जगत-जीवन का प्रेमी बना रहा है प्यार तुम्हारा
मेरी दुर्बलता को हर कर, नयी शक्ति नव शक्ति नव साहस भर कर
तुमने फिर उत्साह दिलाया, कर्म-क्षेत्र में बढ़ूं संभल कर।'[1]

प्रगतिवादी काव्य में जहाँ प्रणय के स्वस्थ चित्र मिलते हैं वहीं नारी का भोग्या-रूप भी चित्रित हुआ। कहीं-कहीं नारी मात्र पुरुष की वासना-तृप्ति का साधन रह गई है। ऐसे स्थलों पर चित्रण में अश्लीलता आ गई है।

प्रगतिवादी कवियों ने परम्परागत रूढियों का भी विरोध किया है। ईश्वर, भाग्य लोक-परलोक आदि पर उनका विश्वास नही है। वह मानव को ही सर्वश्रेष्ठ मानते है।

कला-पक्ष के क्षेत्र में इन कवियों ने कलात्मकता को नहीं सरलता को प्रश्रय दिया। भाषा को सरल, बोधगम्य व बोलचाल के शब्दों से सम्पन्न किया। जनजीवन से ही अप्रस्तुतों का विधान किया। मुक्तक छन्दों का प्रयोग किया।

उपर्युक्त विशेषताओं के बावजूद प्रगतिवादी काव्य में कुछ ऐसी न्यूनताएँ आ गई थीं जिनके कारण यह काव्यधारा अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकी। सबसे पहली बात तो यह है कि राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव इस धारा पर उतना नहीं पड़ा जितना रूस और चीन की विजय का। यह मार्क्सवाद के घेरे में ही चक्कर लगाते रहे। उसी के सिद्धान्तों की अपने काव्य में अभिव्यक्ति करते रहे, अतः बौद्धिकता प्रधान हो गई। इसीलिए कुछ आलोचकों ने प्रगतिवाद को मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण कहा है। दिनकर जी के शब्दों में—'प्रगतिवाद ने साहित्य पर ऐसा कोई प्रभाव नहीं डाला जिसे हम किसी भी दृष्टि से साहित्यिक प्रभाव कह सकें। यह मुख्यतः साहित्यिक आन्दोलन था जो साहित्य के भीतर केवल राजनीतिक उपयोग के लिए साहित्यिकों का शोषण करने को आया था।'[2]

प्रगतिवादी कवियों ने गिने-चुने विषयों पर ही कविताएँ लिखी हैं जिनमें शोषक और शोषित प्रमुख हैं। विषयों की संकीर्णता के कारण भी यह काव्यधारा अवरुद्ध हो गई। इसके अतिरिक्त इन कवियों का कलापक्ष उतना समृद्ध नहीं है जितना छायावादी कवियों का है। किन्तु काव्य को जन-जीवन के सम्पर्क में लाने का श्रेय इन्हीं कवियों को प्राप्त है।

प्रगतिवादियों ने मानव-समाज को पूँजीवादी और समाजवादी कटघरों में

१. धरती—त्रिलोचन शास्त्री, पृ० १
२. चक्रवाल (भूमिका)—दिनकर, पृ० ४१

बाँट कर देखा जिससे सामाजिक चेतना अवरुद्ध हो गई। अतः अपनी अतिवादी प्रवृत्तियों के कारण प्रगतिवाद का पतन हुआ। वह अब युगजीवन को अभिव्यक्त करने में असमर्थ सिद्ध हो रहा था। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण जीवन में सर्वत्र बिखराव जैसा आ गया था। मानव-मूल्य तेजी से बदल रहे थे। जीवन में सर्वत्र निराशा व कुण्ठा का साम्राज्य था जिसकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति प्रयोगवादी काव्य में मिलती है।

व्यक्ति के जीवन के साथ-ही-साथ समाज में भी विघटनकारी तत्त्वों से बिखराव उत्पन्न हो गया था। धर्मवीर भारती के शब्दों में—'यह बिखराव आधुनिक युग की समस्या थी और सबसे पहले आधुनिक कलाकारों कवियों, लेखकों और चिन्तकों ने इसे अनुभव किया। यह नया यथार्थ था जिसे मध्ययुगीन परम्पराओं से आक्रान्त रूमानी काव्य-दृष्टि ग्रहण कर सकने में असमर्थ थी। आधुनिक काव्य-दृष्टि ने इस नये यथार्थ को ग्रहण करने का आग्रह किया।'[१]

युग की बिखरी हुई प्रतिभा को साहित्यिक नेतृत्व प्रदान किया अज्ञेय ने। जीवन-दर्शन की खोज में भटकते हुए राहों के अन्वेषियों को सही नेतृत्व प्रदान किया। तारसप्तक (१९४३) के सम्पादन से हिन्दी में प्रयोगवादी काव्य का प्रादुर्भाव हुआ। अज्ञेयजी ने काव्य के वस्तु और शिल्प दोनों क्षेत्रों में प्रयोग को आवश्यक माना। अतः 'तारसप्तक' से ही प्रयोगवाद का आरम्भ माना जा सकता है। अतः इसमें अज्ञेय जी के अतिरिक्त गजानन माधव 'मुक्तिबोध', गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा आदि की रचनाएँ संगृहीत हैं।

प्रयोगवादी काव्य पर समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितयों का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव इस काव्य पर सर्वाधिक पड़ा है, किन्तु इसके साथ ही कुछ राष्ट्रीय कारण भी थे जिनसे यह कविता प्रभावित हुई है। सन् १९४२ के आन्दोलन को कुचला गया, कन्ट्रोल के कारण कपड़ा व अनाज मिलना दुर्लभ हो गया। मकानों की समस्या भी कम नहीं थी। चारों ओर जीवन में अभाव-ही-अभाव दृष्टिगत हो रहे थे। काले बाजार का सिक्का जोर पर था ? इस विरोधाभास, विद्रूपता और घिनौनेपन से स्वप्न-द्रष्टाओं का मोह भँग हुआ और उन्हें कटु यथार्थ का सामना करना पड़ा। युग-जीवन की ऐसी परिस्थिति में कुण्ठा व निराशा जन्म ले रही थी।[२] अतः प्रयोगवादी काव्य में पाई जाने वाली कुण्ठा व निराशा समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित है। यह किसी विदेशी प्रभाव से ग्रसित नहीं है।

अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद प्रयोगवाद की सर्वप्रथम विशेषता है आज का मानव सामाजिक परिवृत से कटकर एकदम एकाकी हो गया है। उसकी स्थिति 'त्रिशंकु' के समान हो गई है—मनुष्य के इसी एकाकीपन और असमर्थ स्थिति से उसमें

१. मानव मूल्य और साहित्य—धर्मवीर भारती, पृ० १७७

२. नयी कविता और उसका मूल्यांकन—सुरेशचन्द्र सहल, पृ० ९

अहं का प्राधान्य हो गया है। अहं के प्राधान्य के कारण ही इन कवियों का मन निराशा व अन्धकार से पीड़ित है। अज्ञेय ने, अपनी अनेक कविताओं में 'अन्तर्गुहावास' और 'स्वरति' को स्वीकार किया हैं। इन कवियों को अपने अहं पर पूर्ण विश्वास था, जिसके बल पर वे युगजीवन की विषमताओं को दूर करने का प्रयास करते हैं—

'गुरु मैं तुझसे सीखूं, पर अक्षुण्ण
रखूं अपना विश्वास,
बुझकर नहीं, दीप्त रहकर ही
मैं आ पाऊँ तेरे पास।'[1]

नयी कविता में आधुनिक परिवेश के प्रति अनास्था है। कवि ने परम्परागत मानव-मूल्य, साहित्यिक मूल्य तथा सामाजिक मूल्यों के प्रति अविश्वास प्रकट किया है। नयीं कविता स्वर्णिम अतीत की प्रेरणा व भविष्य के उत्साह से शून्य है—

'लगता है सारा अस्तित्व किसी झूट पर
टिका हुआ, जाता है आप ही बिखर-बिखर ?'[2]

किन्तु कहीं-कहीं अनास्था के नहीं आस्था और विश्वास के स्वर भी देखे जा सकते हैं। निराश मानव में चेतना का संचार किया गया है जब युग का सन्देश दिया गया है—

'नया इक संघर्ष, नयी दुनिया का
नये मूल्यों का, नये मानव का
एशिया का नया मानव उठ रहा है
एक नया युग ला रहा है।'[3]

समसामयिक 'परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप नये कवि की चेतना कुण्ठा, घुटन व निराशा से आवृत है। वह जगत् के प्रति क्षणवादी दृष्टिकोण के लिए है। कवि की दृष्टि में वर्तमान ही सब कुछ है और वह इस क्षण को पूर्णता से भोग लेना चाहता है, क्योंकि कल का पता नहीं क्या हो ? पग-पग पर आने वाली असफलताओं से कवि को लगता है कि कहीं उसके जीवन की साधना नष्ट न हो जाए—

'ऐसा लगता आज कि मेरा सारा जीवन नष्ट
ऐसा लगता आज कि मेरी सभी साधना भ्रष्ट।'[4]

निराशा की प्रवृत्ति से घिरा होने के कारण नया कवि अपने विचारों में संतुलित नहीं रह गया है। दैनिक जीवन की विवशता से उसके मन में घुटन उत्पन्न हो

१. इत्यलम्—अज्ञेय, पृ० ८५
२. नाव के पांव—जगदीश गुप्त, पृ० ७८
३. नया साहित्य (नवम्बर १९५०)—शमशेर बहादुर सिंह।
४. ठंडा लोहा—धर्मवीर भारती, पृ० ६३

गई है जिससे बाहर आने की वह बार-बार चेष्टा करता है।

'पंख दो, पंख दो
अरे मेरे पंख दो।'[१]

प्रयोगवाद में वेदना को एक प्रमुख उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया है। वेदना का तिरस्कार इन कवियों ने नहीं किया। जीवन के विशाल कर्मक्षेत्र में वह वेदना से प्रेरणा ग्रहण करता है, 'दुख सबको भींज' कर कर्म को ओर प्रेरित करता है।

नयी कविता में मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। उनके रहन-सहन, आचार-विचार तथा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं का यथातथ्य अंकन किया गया है। मध्यवर्गीय विपन्नता का चित्रण—

मां ने कहा—'पिता को देखो
बोझ करो हल्का उनका।
बहन सयानी पड़ी हुई है
हंसी पड़ोसी उड़ाता है
कैसे होगा ?···तुम्हीं विचारो।
कानी कौडी पास नहीं है।'[२]

जीवन के कटु यथार्थ पर इन कवियों ने तीव्र व्यंग किए हैं। नया कवि स्वयं से तथा समाज से असंतुष्ट है। शहरी जीवन की कृत्रिमता से वह क्षुब्ध है इसीलिए कवि आधुनिक सभ्यता पर तरह-तरह के व्यंग करता है। अज्ञेय ने 'साँप' नामक कविता में नागरिक सभ्यता पर तरह-तरह के व्यंग किए हैं। आज के सौन्दर्य-बोध पर कवि ने कुछ व्यंग्योक्तियाँ कही हैं जो अत्यन्त तीखी हैं—

'आज की दुनिया में
विवशता
भूख
मृत्यु
सब सजाने के बाद ही
पहचानी जा सकती है।'[३]

नयी कविता में बौद्धिकता की प्रधानता है। यही कारण है कि काव्य में अस्पष्टता, दुरूहता तथा बोझलता आ गई है। कविता के नाम पर अस्पष्ट गद्य ही उपलब्ध होता है और कविता के लिए बौद्धिक व्यायाम करना पड़ता है। अभिव्यक्ति की अस्पष्टता के कारण इन कवियों की रचनाओं में भदेसपन भी आ गया है और बीभत्सता भी। जैसे—

१. कल्पना (अक्टूबर, ५३)—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना।
२. नयी कविता (अंक ३)—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ० ८०
३. सौन्दर्य-बोध—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना।

'चाहत वह मजबूरी हो सकती
जिसे मरीज खाँस कर थूक न सके।'[१]

नया कवि क्षणवादी व भोगवादी है। उसके लिए जीवन का एक सुखद क्षण सम्पूर्ण जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्षणिक आनन्द की प्राप्ति के कारण ही इनमें भोग की भावना प्रबल है। अज्ञेय, शान्ता सिन्हा, विनोदचन्द्र पांडे तथा 'दूसरा सप्तक' की अधिकांश रचनाएँ इसी प्रकार की हैं। इन कवियों ने नारी को भोग्या के रूप में चित्रित किया है—

'आह, मेरा श्वास है उत्तप्त—
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार—
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारी।'[२]

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि नयी कविता में जहाँ एक ओर अहंनिष्ठ वैयक्तिकता, अनास्था, निराशा, कुण्ठा, नग्न यथार्थ चित्रण के साथ-साथ क्षण-वादी व भोगवादी प्रवृतियों को प्रश्रय दिया गया है वहीं कुछ ऐसे कवि भी हैं जिनकी कविताओं में आस्था व विश्वास के स्वर अधिक प्रबल हैं। वे विनाश में नहीं नव-निर्माण में अधिक विश्वास रखते हैं। उनका रोमाँस-चित्रण स्वस्थ और प्रेरणादायक है। उन्हें अपने वर्तमान से जितना लगाव है उतना ही अपने स्वर्णिम अतीत से। वे उन्हीं युगपुरुषों की सदव्रतियों को ग्रहण करना चाहते हैं। इन कवियों की दृष्टि में क्षणों का नहीं सम्पूर्ण जीवन का महत्त्व है। इन कवियों में प्रमुख हैं—गिरिजाकुमार माथुर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, अज्ञेय आदि।

इन कवियों की रचनाओं में वर्तमान परिवेश उपेक्षित नहीं रहा है अपितु मध्यवर्गीय चेतना अपनी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त हुई है। आधुनिक मानव का अन्तर्द्वन्द्व, उसकी आर्थिक विपन्नता, वर्ग-संघर्ष तथा उसकी रोमानी प्रवृत्ति का सफलतापूर्ण चित्रण किया है। नए कवियों ने जीवन से केवल कुण्ठा व निराशा को ही ग्रहण नहीं किया है अपितु 'दुःखों से युद्ध करके' जीवन की मिठास का रंग, लेना चाहा है। इन कवियों ने नये बिम्ब, नये प्रतीक तथा नये विषयों को चुना है। वस्तुतः विजय और शैली की दृष्टि तक इन कवियों ने हिन्दी के नये काव्य को समृद्ध किया है।

१. रसवन्ती (दिसम्बर, १९६०)—मुद्राराक्षस, पृ० ३२
२. तारसप्तक—अज्ञेय, पृ० ७७

२ | वैयक्तिक कविताधारा और गिरिजाकुमार माथुर

गिरजाकुमार माथुर उन प्रगतिशाली कवियों में से हैं जिन्होंने किसी एक काव्यधारा में आबद्ध होकर काव्य-रचना नहीं की। उनकी काव्यचेतना सतत् विकासोन्मुखी रही है। यद्यपि उनके काव्य का प्रधानस्वर रंग, रस और रोमान है किन्तु समसामयिक काव्यधाराओं के प्रभाव को उन्होंने यथास्थान आत्मसात किया है। वस्तुत: 'आगे बढ़ जाना, मुड़ जाना, उनके स्रष्टा की विवशता है। अपने कृतित्व में हर बार वे रिल्के की भांति एक मोड़ पर दृष्टिगत होते हैं, किन्तु इससे पूर्व कि पाठक की रागचेतना उनके कृतित्व का धरातल छू सके, वे आगे बढ़ गए होते हैं।'[1]

माथुरजी के काव्य में जहाँ जीवन के सौन्दर्यपक्ष के दर्शन होते हैं वहीं जीवन की कटुता व निराशा की भी सफल अभिव्यक्ति हुई है। उनके आरम्भिक काव्य-संग्रह 'मंजीर' में जहाँ प्रेम, सौन्दर्य और प्रणयजन्य विषाद का चित्रण है वहाँ 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान' आदि कृतियों में मध्यवर्गीय अन्तर्द्वन्द्व तथा मानवतावादी विचारों का प्राधान्य है। 'शिलापंख चमकीले' तथा 'जो बंध नहीं सका' में उनके चिंतन का प्रौढ़ रूप लक्षित होता है जिसमें नवीन वैज्ञानिक चेतना को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। कहने का अभिप्राय यह है कि उनके काव्य में सतत् विकसनशीलता की सहज प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। उनके काव्य में छायावाद का रंगीन रोमांस, बच्चन आदि वैयक्तिक कवियों की निश्छल आत्माभिव्यक्ति, प्रगतिवाद का सामाजिक यथार्थ और नयी कविता की नवीन बौद्धिक-वैज्ञानिक चेतना विद्यमान है।

हिन्दी काव्य की विभिन्न धाराएँ एक-दूसरे की विरोधी न होकर एक धारा दूसरी धारा का विकास ही अधिक प्रतीत होती है। छायावाद की भांति वैयक्तिक कविता में भी 'व्यक्ति' का प्राधान्य था, वहाँ कवि का 'स्व' अधिक महत्त्वपूर्ण था। प्रगतिवाद में कवियों की दृष्टि समाजपरक हो गई, 'पर' को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। नयी कविता में इन एकांकी दृष्टिकोणों में समन्वय स्थापित किया गया और जीवन के यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति तथा समाज दोनों को बराबर महत्त्व दिया गया। आधुनिक परिवेश में मानव की स्थिति का चित्रण किया गया। वस्तुतः यही दृष्टिकोण हमें

१. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—डा० कैलाश वाजपेयी, पृ० ५

माथुरजी की रचनाओं में उपलब्ध होता है। उनकी आरम्भिक कृतियों में जहाँ व्यक्तित्व का प्राधान्य है वहाँ मध्यवर्ती कृतियों में सामाजिक दृष्टिकोण का प्राधान्य है और नवीन काव्य-संग्रहों में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में हुई है।

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में व्यक्तिवादी गीत-कविता का भावबोध

द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक एवं नैतिक सुधारमूलक काव्य की प्रतिक्रियास्वरूप काव्य में छायावाद का प्रादुर्भाव हुआ। जिसमें व्यक्ति की अन्तर्मुखी मनोदशाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया। वस्तुतः द्विवेदीयुगीन कविता जहाँ नितान्त बहिर्मुखी थी वहाँ छायावादी रचनाएँ अन्तर्मुखी। इसमें प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तो की गई किन्तु उन्हें सूक्ष्म आवरणों से आच्छादित कर प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया गया। उनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए कवियों में साहस का नितान्त अभाव था। अतः प्रस्तुत काव्य में व्यक्ति की प्रधानता होने पर भी वैयक्तिक अनुभूतियों की तीव्र और स्पष्ट अभिव्यक्ति सम्भव न हो सकी। कवि शील-संकोच व नैतिक मर्यादाओं का अतिक्रमण नहीं कर सके। फलतः अभिव्यक्ति में अति सूक्ष्मता व अस्पष्टता का समावेश हो गया। कवि वैयक्तिक प्रणय, निराशा व विवाद को प्रतीकों व लक्षणा के माध्यम से व्यक्त करते थे। फलस्वरूप काव्य इतना अधिक सूक्ष्म हो गया कि साधारण पाठक की पहुँच उस तक सम्भव न हो सकी।

छायावादी आवरणप्रियता, अमूर्त्तता, वायवीयता तथा संकोच की प्रतिक्रिया-स्वरूप काव्य में 'वैयक्तिक कविता' का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें व्यक्ति की सुख-दुःखमयी अनुभूतियों को स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान की। 'यद्यपि छायावादी काव्य भी व्यक्तिपरक अथवा वैयक्तिक था, पूर्व अथवा पश्चात् की कतिपय अन्य काव्यधाराएँ भी वैयक्तिकता की ही नींव पर टिकी हैं, परन्तु व्यक्ति के अपने सुख-दुख, राग-द्वेष, अभाव और आकांक्षाओं आदि की इतनी स्थूल और प्रत्यक्ष तथा निस्संकोच अभिव्यक्ति न तो इससे पूर्व ही हुई थी और न इसके बाद।'[1]

व्यक्तिवादी कविता ने विषय और शैली के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। वस्तुततः 'व्यक्तिवाद ने रीतिकाल की रुचि, परम्परागत मान्यताओं तथा द्विवेदी-युग के स्थूल आचारवाद के विरुद्ध क्रान्ति की।'[2] वैयक्तिक गीतकविता का प्रधानविषय छायावाद की भाँति प्रेम और सौन्दर्य है, किन्तु इन कवियों ने अपनी रोमानी भावनाओं की स्पष्ट शब्दों मे स्थूल व माँसल अभिव्यक्ति की। उसे सूक्ष्मता के शत-शत आवरणों में लपेट कर प्रस्तुत नहीं किया। अपनी निजी प्रणय-अनुभूतियों को स्पष्टता से चित्रित किया। इन कवियों की अनुभूतियाँ न किसी अलौकिक आलम्बन के प्रति हैं, न आच्छादित अप्रत्यक्ष और न किसी काल्पनिक आदर्श पर आधारित है।

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डा० नगेन्द्र, पृ० ६३
२. आधुनिक हिन्दी कविता : सिद्धान्त और समीक्षा—डा० सम्पूर्णानन्द, पृ० २९५

वस्तुतः आधुनिक युग विज्ञान का युग है। काल्पनिक ईश्वरीय सत्ता के प्रति आत्मनिवेदन हास्यास्पद है। आज मनुष्य स्वयं को अपने सुख-दुख का कारण समझता है। 'धर्म, समाज, देश की भावना के नीचे दबा हुआ व्यक्ति का अहं जागरूक होकर अपने सुख-दुख को, अपनी कुण्ठा और प्रसादन को सबसे अधिक महत्त्व देने लगा और साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति की माँग करने लगा।'[1] वैयक्तिक कवियों ने अपने जीवनानुभवों को सरल और स्पष्ट भाषा में पूरी मांसलता के साथ अभिव्यक्त किया, जिसमें संकोच और थोड़ी मर्यादा को कहीं स्थान नहीं मिला है।

इस कविता के प्रादुर्भाव के अनेक कारण हैं। राजनीतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक कारणों ने इसे प्रभावित किया है। तत्कालीन युग में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा प्रमुख थी। 'दर्शन, राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था सभी में व्यक्तिवाद का युग था। अनेक स्वदेशी-विदेशी प्रभावों के कारण मानव-चेतना—अपनी सत्ता के प्रति जागरूक हो गयी थी। दर्शन के क्षेत्र में बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा, राजनीति में व्यक्ति का बढ़ता हुआ प्रभाव—अर्थव्यवस्था में—व्यक्ति के अपने पुरुषार्थ द्वारा अर्जित पूँजी का विकास तथा—समाज में मध्यवर्ग का महत्त्व'[2] व्यक्तिवाद के प्राधान्य की ओर संकेत करता है व्यक्ति के अपने सुख-दुख, राग-द्वेष प्रधान होने लगे। फलतः काव्य में आत्मतत्त्व को अधिक महत्त्व मिलने लगा। इस आत्मतत्त्व का प्राधान्य बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल तथा गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में सर्वाधिक है। इन कवियों ने अपने काव्य में मानव के ऐहिक संघर्ष की विजय और पराजय को महत्ता दी है।[3]

वैयक्तिक कविता के मूल आधारभूत भाव हैं—प्रणय और अर्थ। द्विवेदी-युग में काम को नैतिक रूप प्रदान किया गया। छायावादी युग में सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और प्रेम का स्वच्छ रूप ग्रहण किया गया, किंतु आर्थिक पक्ष वहाँ बिल्कुल गौण हो गया। छायावादी कवि एकान्त कल्पनालोक में अपने गीत गाने में निमग्न था। आर्थिक कठिनाइयाँ किस प्रकार मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग को प्रभावित कर रही हैं, इस ओर उनका ध्यान नहीं गया। किन्तु वैयक्तिक कवियों ने जहाँ प्रेम की स्थूल व मांसल अभिव्यक्ति की है वहीं ये अपने गिरते हुए आर्थिक परिवेश के प्रति भी उतने ही सजग हैं। इनका काम अर्थ द्वारा केन्द्रित है। जिन कविताओं में समाज और आर्थिक परिवेश अधिक प्रधान हो गया है वे रचनाएँ प्रगतिवादी काव्य के बहुत निकट आ जाती हैं और जिनमें आत्मतत्व की प्रधानता है वे व्यक्तिवादी गीत-कविता के अन्तर्गत। गिरिजाकुमार माथुर की आरम्भिक रचनाओं में वैयक्तिक हर्ष-उल्लास का महत्त्व है, प्रेमजन्य अतृप्ति तथा भोग का प्राधान्य है। उनकी ऐसी रचनाएँ छायावाद की आभा

१. आधुनिक हिन्दी कविता—सिद्धान्त और समीक्षा, डॉ० सम्पूर्णानन्द, पृ० २६५
२. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ८१-८२
३. वही, पृ० ६४

व रंगीनी से तथा वैयक्तिक कवियों की स्वच्छन्द आत्माभिव्यक्ति से प्रभावित हैं। उनकी वे रचनाएँ जिनमें आत्मतत्व प्राय: गौण होता गया और समाज तथा आर्थिक परिवेश अधिक प्रधान हो गया है उन्हें प्रगतिवादी रचनाओं के अन्तर्गत ही रखना उचित होगा तथा इसी सन्दर्भ में उनका विश्लेषण भी।

वैयक्तिक कविता की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे माथुर साहब प्रभावित हुए हैं, किन्तु कुछ तत्त्व जो उनकी प्रकृति के विरुद्ध पड़ते थे, उनकी उन्होंने पर्याप्त उपेक्षा की है। जहाँ तक प्रणय की स्थूल मांसल व ऐन्द्रिय अभिव्यक्ति का प्रश्न है, वह माथुरजी की रचनाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। किन्तु उनके काव्य में बच्चन आदि की भाँति निराशा, नियति व क्षणभंगुरता का प्राधान्य नहीं है। जीवन से पलायन की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। वस्तुत: माथुरजी आस्था और विश्वास के कवि हैं। उन्होंने हाला के प्याले में अपने गम को भुलाने का प्रयास नहीं किया। वे वर्तमान क्षण पर नहीं आगत भविष्य पर भी पूर्ण आस्था रखते हैं।

माथुर साहब ने अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से की है। गीतिकाव्य मूलत: वैयक्तिक काव्य होता है, क्योंकि उसमें हृदयगत भावों का सहज उच्छलन होता है। सुख-दु:खात्मक भावों की अभिव्यक्ति से भावावेश की लय के कारण कविता स्वत: गेय हो जाती है। कथा-साहित्य अथवा वस्तुपरक साहित्य में भी इसकी अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण स्वच्छन्दता रहती है। माथुरजी के आरम्भिक काव्य-संग्रह 'मंजीर' तथा 'नाश और निर्माण' में, बच्चन के निशा-निमंत्रण', 'एकान्त-संगीत' में तथा नरेन्द्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में संयोग और वियोग के सरल भावों की सहज अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी कविताएँ प्रतीकात्मकता की जटिलता से पूर्णत: मुक्त हैं। शिल्प की कृत्रिमता की अपेक्षा सरलता और सहजता इन कवियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन युवा कवियों ने जहाँ प्रेम के गीत गाए हैं वही समाज के आर्थिक परिवेश के प्रति भी पूर्ण सजग रहे हैं। इसी कारण इनके काव्य में जहाँ प्रेम का उन्मुक्त रूप मिलता है वहीं सामाजिक रूढियों के प्रति विद्रोह और आक्रोश की भावना भी दृष्टिगत होती है। आर्थिक वैषम्य के फलस्वरूप जो अत्याचार मानव पर हो रहे हैं उनका स्पष्ट चित्रांकन इनके काव्य में मिलता है।

वैयक्तिक कवियों की भाँति गिरिजाकुमार माथुर के काव्य की प्रमुख विशेषता है प्रेम और शृंगार। रंग, रस और रोमान की प्रवृत्ति उनके काव्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। माथुरजी ने स्वयं इसे अपने काव्य की मुख्य प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है और कुछ उदाहरण भी दिए हैं।'[1] प्रेम को इन्होंने लौकिक धरातल पर स्वीकार किया है और उसकी स्थूल और ऐन्द्रिय अभिव्यक्ति भी की। सामाजिक बन्धनों को अस्वीकार करते हुए वैयक्तिक पीड़ा, उल्लास, उदासी तथा असन्तोष के स्वरों को अपने

१- नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ८६-६०

काव्य में अभिव्यक्त किया। 'मंजीर' तथा 'नाश और निर्माण' ये दोनों रचनाएँ रोमानी रूप और आभा से मण्डित हैं। 'मंजीर' के गीतों में उन्होंने किशोर हृदय की रंगीन भावकल्पनाओं को स्वर प्रदान किया है। इन गीतों में छायावाद की रंगीनी तो है, किन्तु इनकी भाव-वस्तु वायवी नहीं है।······इन गीतों में छायावाद की आभा को इस नये कवि ने रूप प्रदान किया है।[१] अतः माथुरजी की इन प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी रूप और आभा के साथ-साथ बच्चन आदि की भाँति प्रेम का पूर्ण और स्वच्छन्द चित्रण मिलता है। यहाँ प्रणय के आलम्बन को स्पष्ट रूप से चित्रित करने का प्रयास किया है, उसे रहस्यमय बनाने का असफल प्रयास नहीं किया है। इनके प्रणय में आसक्ति है, मांसलता है और सबसे विशेष बात यह है कि वैयक्तिक कविता के दोष 'नग्नता' से वे मुक्त हैं। उनका चित्रण बहुत शिष्ट भाषा में किया गया है। 'मंजीर' की प्रथम कविता 'थोड़ी दूर और चलना है' की कुछ पंक्तियों सादगी, भाव और गेयत्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं—

थोड़ी दूर और चलना है
मुरझ चली प्राणों की गुंजन
थकती जाती स्वर की कम्पन
बीती सब जीवन की सिहरन
ओ गीतों के पथिक, इसी सुनसान विजन बन में रुकना है।'[२]

'मंजीर' के गीतों की इसी सरसता और सादगी को देखकर निरालाजी ने भूमिका में कहा है—'श्री गिरिजाकुमार माथुर निकलते ही हिन्दी की निगाह खींच लेने वाले तारे हैं।'[३]

'मंजीर' के अधिकांश गीतों की विशेषता है—निराशा, प्रणय-जन्य असफलता। प्रिय से दो क्षण के लिए मिलाप हुआ था किन्तु विदा-वेला निकट आ गई और प्रिय से विछोह हो गया। ऐसी अवस्था में वह अपने-आपको नितान्त असमर्थ पाता है—

'दो क्षण ही तो मिल पाये हम
और विदा की वेला आई
इतनी जल्दी तुम्हीं बताओ
कैसे दूँ मैं आज विदाई।'[४]

प्रेम की असफलता के कारण कवि के मन में विषाद की रेखाएँ घर कर गई हैं। इस भौतिक संसार में उसकी भावनाएँ अतृप्त रह जाती हैं जिन्हें वह कल्पना के माध्यम से रंगीन स्वप्नों में उन्हें पूर्ण करना चाहता है। इस प्रकार की कुछ पंक्तियों पर

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डॉ० नगेन्द्र, पृ० १२६
२. मंजीर—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० २
३. मंजीर (भूमिका)—निराला।
४. मंजीर, पृ० ६

स्पष्टतः छायावादी प्रभाव दृष्टिगत होता है—

मैं चला आज उस विश्व पार
स्वर्णिम सपनों की जहाँ भीर
बहती सुधि की मलयज समीर
मधु के झरने झरते अधीर
ऊषा बिखराती स्मित अबीर ।[1]

लगभग यही भाव 'बच्चन' की इस कविता में मिलता है—

देखेंगे ऐसे हैं लोक
एक नहीं है जिसमें शोक
मृदुल समीर जहाँ बहता है ।[2]

'मंजीर' के कुछ गीत भाव तथा चित्रण शैली की दृष्टि से स्पष्ट रूप में छायावादी प्रतीत होते हैं। इनके कुछ गीतों का भावसाम्य महादेवी के गीतों से ज्यों का त्यों देखा जा सकता है—

(१) **'हृदय के स्वप्निल गगन में हंस चली तुम चाँदनी बन**
सजल स्मृतियाँ चौंक जातीं मूक उर में रागिनी बन ।'[3]

(२) **फिर मिलन होगा वियोगिनि**
नयन-सुख मिल जायेंगे सब
सुमन-मुख खिल जायेंगे तब
शशि-किरण की बाह में फिर उर-गगन होगा वियोगिनि ।[4]

उपर्युक्त कविताओं में से प्रथम की तुलना महादेवी के गीत 'विरह की घड़ियां हुई अलि मधुर मधु की यामिनी सी' ('सांध्यगीत') से तथा द्वितीय कविता की तुलना 'नीरजा' के सुप्रसिद्ध गीत 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' से की जा सकती है।

प्रणय की स्थूल एवं मांसल अभिव्यक्ति

गिरिजाकुमार माथुर की अधिकांश रचनाओं का आधार मूर्त और मांसल है। जीवन की मधुर भावनाओं की अभिव्यक्ति पूर्णता के साथ की गई है। उनकी शृंगार-चेतना में शरीर आवश्यक रूप से समाविष्ट रहता है। उनके प्रणय का आलम्बन कल्पनागम्य नहीं है, वह इसी धरती का है, मूर्त है। 'अभी तो झूम रही है रात', 'चूड़ी का टुकड़ा,' 'रेडियम की छाया', 'देह की आवाज' आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। मिलन के चित्र इनकी रचनाओं में मिलते अवश्य हैं किन्तु सांकेतिक रूप में।

१. मंजीर—माथुर, पृ० १७
२. प्रारम्भिक रचनाएँ (भाग १)—बच्चन, पृ० ४५
३. मंजीर—माथुर, पृ० २२
४. वही, पृ० ७१

उनका नग्न रूप में चित्रण नहीं किया गया । इस दृष्टि से 'मंजीर' की यह रचना द्रष्टव्य है—

'बड़ा काजल आंजा है आज
भरी आँखों में हल्की लाज
तुम्हारे ही महलों में प्रान
जला क्या दीपक सारी रात
निशा का सा पलकों पर चिह्न
भागती नींद नयन में प्रात
सखी, लगता ऐसा है आज
रोज से जल्दी हुआ प्रभात ।'[१]

इस प्रकार के रूप-चित्रों की सृष्टि माथुरजी की रचनाओं में सर्वत्र देखी जा सकती हैं । यहाँ आँखों में लाज, पलकों पर निशा का-सा चिन्ह, दीपक का सारी रात जलना, ठीक से रात को सो न पाना और प्रभात का रोज से जल्दी होना मिलनवेला की ओर स्पष्ट संकेत करता है । रूप और रस के मांसल स्पर्श से पूर्ण परिष्कृत चित्रों को ध्यान में रखते हुए डॉ० नगेन्द्र ने कहा है—

'यह श्रृंगार न तो भूखे तन और भूखे मन का आहार है और न किसी अदृश्य आलम्बन के साथ कल्पना-विहार है । कवि ने जीवन की मधुर भावना को बड़े हल्के हाथों से, किन्तु पूरी गहराई के साथ, बिम्बित करने का सफल प्रयत्न किया है ।'[२] कवि ने सर्वत्र मांसल अभिव्यक्ति का चित्रण किया है । उसमें अनुभूति की प्रमाणिकता है । कल्पना द्वारा अनुभूतियों की सृष्टि नहीं की गई है वरन् जीवन के मधुर क्षणों की कोमल अनुभूतियों को सुन्दर रूप में चित्रित किया गया है । प्रिय-मिलन के क्षणों की स्मृति कवि के मन में सिहरन पैदा करती है और कवि के मन पर एक क्षणिक मिलन का चित्र अंकित हो जाता है—

'दूज-कोर से उस टुकड़े पर, तिरने लगी तुम्हारी सब सज्जित
तस्वीरें,
सेज सुनहली,
कसे हुए बन्धन में चूड़ी का झर जाना
निकल गई सपने जैसी वे मीठी रातें
याद दिलाने रहा
यही छोटा सा टुकड़ा ।'[३]

माथुरजी से पूर्व छायावाद में अनुभूति का इतनी सच्चाई और ईमानदारी

१. मंजीर—माथुर, पृ० ६६
२. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—डॉ० नगेन्द्र, पृ० २८
३. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ६५-६६

से चित्रण नहीं मिलता। मिलन के क्षण का कवि ने प्रतीक-रूप में चित्रण नहीं किया है। चूड़ी के टुकड़े के माध्यम से कवि ने संयत भाषा में पूर्व-स्मृति का ज्यों-का-त्यों चित्र अंकित कर दिया है। यहाँ किसी परकीया नायिका के प्रति प्रणय-निवेदन नहीं है। कवि ने अपने जीवन की सुखात्मक अनुभूति को पूरी सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है। मिलन का ऐसा ही एक अन्य चित्र जिसमें भोग की प्रवृत्ति का प्राधान्य है—

> **'उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर,**
> **दो छांहों का वह चुपचाप मिलन था,**
> **उसी रेडियम की हल्की छाया में**
> **चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था—**
> **कमरे की सारी छांहों के हल्के स्वर सा,**
> **पड़ती थी जो एक दूसरे से मिल-गुंथकर,**
> **सूनी सी उस आधी रात—।'[1]**

यहाँ संयोग का अत्यन्त शिष्ट और मांसल चित्रण किया गया है। रोमानी परिवेश की व्यंजना करने में कवि पूर्णत: सफल रहा है। निजी अनुभूतियों का बिना किसी दुराव-छिपाव के स्पष्ट चित्रण किया है। परस्पर आलिंगन और चुम्बन को सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त किया गया है। यहाँ कवि की रंग-रोमांस योजना छायावाद की अपेक्षा वैयक्तिक कवियों के अधिक निकट दिखाई देती है। माथुरजी ने अपनी भावनाओं को जहाँ संयत रूप में अभिव्यक्त किया है वहाँ नरेन्द्र शर्मा की प्रस्तुत कविता में यौवन का आकर्षण और शारीरिक भूख स्पष्ट शब्दों में प्रकट की गई है—

> **'बहुत दिनों तक दूर रह लिये आओ अंक मिलन कर लें,**
> **विरह व्यथा के दिन सुमिरन कर दृढ़तर आलिंगन भर लें।'[2]**

तुलना द्वारा स्पष्ट है कि माथुरजी के चित्रण में अधिक स्वच्छता है। डॉ० रांगेय राघव के शब्दों में—'गिरिजाकुमार माथुर, सजीली सुषमा का कवि, जो कभी-कभी बहुत मीठी कल्पना करता है, प्रिया के प्रति बहुत अनुरक्त रहता है। उसकी प्रिया कविप्रिया है।'[3]

वैयक्तिक कवियों की भाँति माथुरजी में भी भोगवादी तथा ऐन्द्रिय प्रवृत्ति का पुट दृष्टिगत होता है। ग्रन्थ के स्थूल और मांसल चित्र भी इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं—

> **'मिलन की लो खुलीं आज**
> **जवान रातें प्रान**
> **क्यों गुलाबों पर तुम्हारे**

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ५६
२. प्रभात फेरी—नरेन्द्र शर्मा, पृ० ५८
३. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और श्रृंगार—डॉ० रांगेय राघव, पृ० ३०

है लजी मुस्कान।'[१]

और बच्चन ने इसे इस रूप में चित्रित किया है—

'अब तुम्हें उर लाज किससे लग रही है
आंख केवल प्यार की अब जग रही है।'[२]

यहाँ नारी का वासानामय रूप चित्रित किया गया है। अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के चित्रण में कहीं-कहीं कवि अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है।

'नाश और निर्माण' की अनेक कविताओं में कवि ने अपनी प्रेयसी के साथ विताए रंगीन क्षणों का निस्संकोच चित्रण किया है। संयोग के वे नाजुक क्षण जिनमें प्रेयसी लजाती, शरमाती प्रिय के सम्मुख आई, उन क्षणों का सूक्ष्मता से चित्रण किया है। ऐसे स्थलों पर अनुभव की प्रामाणिकता सर्वत्र दृष्टिगत होती है—

'पिछली इसी बसंत रात की याद उमड़ जाती है।
जब तुम पहली बार मिली थीं
पीले रंग की चूनर पहिने
देख रही थी चोरी चोरी
मेरे मीठे गीत प्यार के
मेरे पास अचानक जाकर
छीन लिया था उन्हें तुम्हारे मेंहदी-रंगे हुए हाथों से
और लाल होकर क्वारी लज्जा से तुमने
मुख पर आंचल खींच लिया था
जल्दी से निज चांद छिपाने।'[३]

अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने न तो प्रकृति का आश्रय लिया है और न उन्हें लक्षणा-व्यंजना के माध्यम से व्यक्त करना चाहा है। छायावादी आवरणप्रियता के विरोध में इनकी कविता सुलझे और रुचिकर रूप में प्रस्तुत की गई है। यही कारण है कि इनकी कविताएँ कृत्रिम और आदर्शपरक अनुभूतियों पर आधारित न होकर यथार्थ और जीवन के अधिक निकट हैं। परिणामस्वरूप साधारण पाठक का तादात्म्य भी इन कवियों से हो जाता है।

अनेक स्थलों पर कवि ने पूर्वदीप्ति के रूप में अपनी प्रेयसी की आतुरता का सुन्दर, स्वच्छ और मार्मिक चित्रण किया है। रेडियो द्वारा कवि अपनी आवाज भेजने को प्रस्तुत है तभी उसे प्रेम में डूबी अपनी प्रेयसी का ध्यान आ जाता है जो कवि की आवाज को सुनने के लिए आतुर है—

'मैं भूला सा बैठा निज आवाज भेजने

× × ×

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ५९
२. मिलन यामिनी—बच्चन, पृ० ३३
३ नाश और निर्माण— ाथुर, पृ० ६२

आँखों में जाड़ों की छांहों सी कुछ धुंधली,
कहीं दूर की तसवीरें
मिट मिट कर जाती थीं।

× × ×

और चित्र सी आँखें बन्द किए तुम,
मेंहदी-रंजित गोरे हाथ टिकाए मुख पर
सोई सी सुनने को आतुर
मेरे लहर बने गीतों का
डूब-डूब स्वर के उतार में।[1]

पूर्वदीप्ति का एक अन्य प्रसंग जिसमें कवि को मिलन के क्षणों की बार-बार याद आ रही है। उन पूर्वघटित बातों को याद करके वह और भी दुःखी होता है। संयोग के क्षणों का स्थूल चित्रण—

'याद आए मिलन वे
मसली सुहागिन सेज पर के सुमन वे
फिर याद आए नत पलक
फिर बिछुड़ने के अश्रु डूबे नयन वे।[2]

कवि की सभी रोमानी कविताओं में शरीर आवश्यक रूप से निहित है फिर वे कविताएँ चाहे 'मंजीर' की हों, 'नाश और निर्माण' की या 'धूप के धान' की छायावादी वायवीयता व काल्पनिकता का सर्वथा अभाव है। उन्होंने अपना प्रणय, निवेदन किसी अलौकिक आलम्बन के प्रति नहीं किया है, वह वास्तव में इस स्थूल संसार का ही है। 'धूप के धान' की एक कविता 'देह की आवाज' में तो कवि ने स्पष्ट रूप से देह की महत्ता स्वीकार की है, जिसमें कवि का मांसल व भोगवादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। मन शरीर से पूछता है कि 'चिकने मांसल तमका', 'नोकीली रंगीन नजर का', 'चन्द्रानन का', 'हाड़ चाम' का इतना महत्त्व क्यों है? तन के प्रति इतना आकर्षण क्यों है? इसका उत्तर देह इस प्रकार देती है—

'ये बुद्धि, ज्ञान, आत्मा की सभी अदितियाँ
हैं देह-तेज की ज्योतित भावाकृतियां
खिलता है देह बीज-से
पंकज मन का

× × ×

है देह भोगहित सृष्टि मधुमती के वर
लालिम चरणों में बिछी प्रकृति की केसर

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ६३
२. वही, पृ० ६७

यह नील श्याम मानव जगती है मनहर
तन रचना में मानव तन सबसे सुन्दर ।'[१]

कवि देह का पूर्ण रूप से समर्थन करता है। संसार की नव रचना इसी देह के कारण होती है। देह तृष्णा व अशान्ति का कारण न होकर मानवीय संसृति के विकास में योग देती है। देह-शिखा देहों के दीप जलाती है। इसी के द्वारा प्रिय से परस्पर मिलन सम्भव है—

'धरती सिहरी
ज्यों उरजों छुई नवेली
नक्षत्र खिले चाँदनी नई मुसकाई
फिर वक्ष मिलन, चुंबन की बेला आई ।'[२]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने विदेह मन की तुलना में सृष्टि के नव विकास के लिए पंक्तियों में देह की महत्ता प्रतिपादित की है। देह के प्रति ऐसा वस्तुपरक दृष्टि-कोण वैयक्तिक कवियों की भाँति है। व्यक्तिवादी कवियों में यौवन की उद्दामता, अतृप्ति व तृष्णा अपनी चरम सीमा पर है। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के काव्य की कुछ पंक्तियाँ—

'मैं इच्छा के मरु-पथ का यात्री चंचल
प्रज्ज्वलित पिपासा से मेरा अन्तस्तल
मैं अर्थ बताता द्रोह भरे यौवन का
मैं नग्न वासना की गीता उच्छृंखल ।'[३]

और—

'बहुत दिनों तक दूर रह लिये आओ अंक मिलन कर लें' ।[४]

अंचल, नरेन्द्र शर्मा की भाँति माथुरजी ने शरीर की महत्ता प्रतिपादित की। भोग और वासना की इनमें प्रधानता है। अपनी अनुभूतियों को विभिन्न आवरणों की अपेक्षा स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किया है। हिन्दी काव्य में शुद्ध रोमांस की भावना सर्व-प्रथम इनमें मिलती है।

नारी के प्रति दृष्टिकोण

नारी के प्रति गिरिजाकुमार माथुर का दृष्टिकोण छायावाद से नितान्त भिन्न है। नारी के रूप-चित्रण में इनका स्वच्छ दृष्टिकोण है। बहुत हल्के रंग और रेखाओं द्वारा उसके रूप को उभारने का प्रयास किया है। यह छायावाद के पूज्य और आदर्शपरक दृष्टिकोण से भिन्न है। उसमें कवि की प्रेम-भावना व भोगवादी प्रवृत्ति का प्राधान्य है। नारी के रूप और सौन्दर्य के चित्रण में नवीन अप्रस्तुतों की योजना की गई है।

१. धूप के धान—माथुर, पृ० १०७
२. वही, पृ० १०६
३. मधूलिका—रामेश्वर शुक्ल अचंल (पृष्ठ सं० नहीं है)।
४. प्रभात फेरी—नरेन्द्र शर्मा पृ० ५८

'देह कुसुमित मृणाल
जैसे गेहूँ की बाल
जैसे उचकौहे बोरों से
रोमिल रसाल
किशमिशी चन्द्रलट
कसम से उर प्रियाल ।'[1]

मिलन की एक रंगीन शाम को उनकी प्रेयसी शृंगार के विभिन्न उपकरणों को धारण करके अपूर्व सुन्दरी लग रही थी । उसके सुन्दर रेशमी वस्त्र, गोरी कलाइयों में पहिनी सुन्दर चूड़ियाँ और उन सबके साथ उसका गौरवर्ण नायिका के सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहा है—

'इस रंगीन सांझ में तुमने
पहिने रेशम वस्त्र सजीले
केसर की तुम कुसुम कली सी
आई सिमटी सी लिपटी सी ।
भरी गोल गोरी कलाइयों में पहिनी थी,
नयन-डोर सी वे महीन रेशमी चूड़ियाँ ।'[2]

माथुरजी के नारी-चित्रण में जहाँ छायावादी आदर्श का अभाव है वहीं प्रगतिवादी स्थूल भौतिकता का, अश्लील वासना का सर्वथा अभाव है । मिलन के समय की सूक्ष्म मनोदशाओं का कवि ने सफलता-पूर्वक चित्रांकन किया है । ऐसे नाजुक समय में नारी की सम्पूर्ण लज्जा इन पंक्तियों में साकार हो गई है—

'बोलते में
मुसकराहट की कली
रह गई गड़कर
नहीं निकली अभी अनी
खेल से
पल्ला जो उंगली पर कसा
मन लिपट कर रह गया
छूटा वही

पर नहीं उत्तर मिला

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ५३
२. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ५७

हैं लजीले मौन
बातें अनगिनी।'[१]

प्रेयसी की एक अदा से कवि का मन बेचैन हो गया। ऐसा लगता है मानो नायिका ने अपनी उँगली पर पल्ला नहीं लपेटा वरन् कवि का मन लिपट गया। प्रिय के सब प्रश्नों का उत्तर उसका लजीला मौन है जिसके माध्यम से वह कुछ न कहकर सब कुछ कह देती है।

बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल आदि का दृष्टिकोण भी नारी के प्रति स्वच्छ रहा है। उसे सर्वत्र भोग की वस्तु के रूप में न अपनाकर यत्र-तत्र प्रेरक रूप में भी अपनाया है।

'तुम नहीं हो भोग की ही वस्तु मुझको, अस्तु तुमसे
भीख मधु की मांगता मन भी नहीं अलि ज्यों कुसुम से।'[२]

अतः नारी-सौन्दर्य के चित्रण में भी गिरिजाकुमार माथुर का दृष्टिकोण वैयक्तिक कवियों के अधिक निकट है। किन्तु सौन्दर्य-चित्रण में जिस रूप और आभा का समन्वय कवि ने किया है उस पर स्पष्टतः छायावाद का प्रभाव लक्षित होता है। एक स्थल पर कवि ने अपनी प्रिया का रूप-चित्रण प्रकृति पर आरोपित किया है। वह उसकी सुधि में लीन है। उसे हेमन्त की निस्तब्ध रात अपने कंत से लिपट कर सोई हुई कामिनी के समान लगती है। मिलन के ऐसे चित्रों में कवि की शुद्ध शृंगार-भावना के दर्शन होते हैं। अपनी अनुभूति की निश्छल अभिव्यक्ति के लिए कवि ने प्रकृति का आश्रय लिया है—

'कामिनी-सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की
दीप-तन बन ऊष्म करने
सेज अपने कंत की
नयन लालिम स्नेह-दीपित
भुज-मिलन तन गंध सुरभित
उस नुकीले वक्ष की
वह छुवन, उकसन, चुभन अलसित
इस अगर-सुधि से सलोनी हो गई है।'[३]

वैयक्तिक कवियों ने तथा गिरिजाकुमार माथर ने नारी के उसी स्वरूप को अंगीकार किया है जो जीवन में उन्नयन की प्रेरणा दे सके। जीवन के विशाल कर्म-

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ५१
२. मिट्टी और फूल—नरेन्द्र शर्मा, पृ० ८३
३. धूप के धान—माथुर, पृ० ५४

क्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा दे सके। प्रेयसी का प्रेम निष्क्रियता का परिचायक न होकर प्रेरणादायक होता है। वह जीवन की निराशा व दुःखों को दूर करने वाली है। बच्चन ने अपनी प्रेयसी को प्रेरक रूप में चित्रित किया है—

'प्रेरणाओं की सरस अधिकारिणी तुम,
आज मेरे प्राण को कर दो ऋणी तुम ?"

(मिलनयामिनी : बच्चन, पृ० २६)

अंचल ने भी प्रेयसी को जीवन-संघर्ष में नूतन शक्ति का संचार करने में समर्थ माना है। गिरिजाकुमार माथुर ने नारी को शक्ति का आधार माना है। वह मृत्यु से संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाली शक्ति है—

"शक्ति दो मुझको, सलोनी, प्यार से
लड़ सकूं मैं मौत की ललकार से।"

(धूप के धान : माथुर, पृ० ६३)

यहाँ 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' वाला रूप प्रधान नहीं है। प्रस्तुत पंक्तियों में वह जीवन की विरोधी परिस्थितियों से संघर्ष की ओर उन्मुख करने वाली शक्ति के प्रतीक-रूप में है।

आशक्ति भाव

गिरिजाकुमार माथुर उन विशेष कवियों में से हैं जो जीवन के प्रति आसक्त हैं। उनके काव्य का मूल स्वर निराशावादी या क्षणवादी नहीं है। वे जीवन को सम्पूर्ण रूप से भोगना चाहते हैं। उनके स्वप्न बहुत बड़े नहीं हैं। एक मध्यवर्गीय व्यक्ति की भांति उन्हें अपनी छोटी-सी दुनिया से विशेष लगाव है। अपने मन में विद्यमान अतृप्त इच्छाओं को कवि इस रूप में व्यक्त करता है—

मेरे सपने बहुत नहीं हैं
छोटी सी अपनी दुनिया हो,
दो उजले-उजले से कमरे

× × ×

छोटा लॉन स्वीट-सी जैसा
मौलसिरी की बिखरी छितरी छांहों डूबा
हम हों, वे हों।"[1]

कवि भविष्य के प्रति पूर्ण रूप से आस्थावान है। उसे विश्वास है कि आगत भविष्य में उसकी ये इच्छाएँ अवश्य तृप्त होंगी। उसके जीवन से जो सुख की मिठास

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृष्ठ ५१

चली गई थी वह अवश्य लौटेगी। उसका खोया हुआ प्यार अवश्य उसे प्राप्त होगा। जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है—

'जीवन में फिर लौटी मिठास है,
गीत की आखिरी मीठी लकीर सी,
प्यार भी डूबेगा गोरी-सी बाँहों में,
ओठों में आंखों में।'[1]

प्रणयजन्य पीड़ा

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में जहाँ जीवन के प्रति तीव्र आसक्ति तथा संयोगजन्य उल्लास का चित्रण हुआ है वहीं प्रणयजन्य विषाद का भी मार्मिक चित्रण किया गया है। पीडा का यह स्वर उनकी प्रारम्भिक रचनाओं (मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान) में विशेष रूप से देखा जा सकता है। इन काव्य-संग्रहों की अनेक कविताओं में प्रेम की असफलता की व्यथा का स्वर सुनाई पड़ता है। माथुर-जी के काव्य में जहाँ संयोग के मादक, मांसल और स्थूल चित्र मिलते हैं वहीं पीड़ा के स्वरों को भी कलात्मकता के साथ मुखरित किया गया है। विरह कवि को निष्क्रिय नहीं बनाता पर वह कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। इस दृष्टि से 'दूर की आशा', 'रूठ गए वरदान सभी', 'मैं कैसे आनन्द मनाऊँ', 'तुमने प्यार नहीं पहचाना', 'प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा', 'कौन थकान हरे जीवन की', 'प्यार हमारा मत लौटाओ', 'यह मुझको सुधि-सी क्या आती है', तथा 'आँसू तक न बचे नयनों में' आदि कविताएं महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रिय-विछोह की व्यथा से उत्पन्न उच्छ्वास स्वतः कविता का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी अवस्था में व्यक्ति स्वयं को भुला कर उद्वेलित हो अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। प्रकृति के कण-कण में उसे प्रिय का रूप दृष्टिगत होता है। उसका रुदन भी गान का रूप धारण कर लेता है। प्रियमिलन की मधुर स्मृतियाँ उसके हृदय को उद्वेलित कर देती हैं और यही उद्वेलन हृदय की कविता का रूप धारण कर लेता है। इसीलिए पन्तजी ने सत्य ही कहा है—'वियोगी होगा पहला कवि, आह ! से उपजा होगा गान।' गिरिजाकुमार माथुर भी चुप-चुप रुदन से गीत सीख रहे हैं। अपनी हृदयगत व्यथा का चित्रण उन्होंने इस प्रकार किया है—

'गीत में प्रिय सीखता मैं शून्य हूँ चुप-चुप रुदन से
इन उसासों का रहस्य मिला मुझे उस मधु-मिलन से
प्राण की टूटी हुई-सी
इक करुणा मुरली सजाकर
फूंक दी निःश्वास उसमें

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृष्ठ १११

शून्य हो चिर-साधना भर
अब व्यथा की मूक सरगम पूछता मैं अश्रु-कन से ।'[१]

अपनी प्रेयसी का वह मुस्कराता हुआ चेहरा कवि के मन को आज भी व्यथित कर रहा है । उसकी भोली-भाली सूरत, लज्जित आँखें, रक्तिम अधर तथा ग्रामबालिका का-सा अल्हड़पन कवि की विरही आँखों में आज भी इसी प्रकार विद्यमान है । शरीर से दूर होने पर भी मन से आज वह उतनी ही पास है—

'अब सूनी पलकों पर उतरा
वही तुम्हारा सस्मित आनन
वे काली सलज्ज-सी आँखें
मटकी, भोली-सी नत चितवन
आज भूल जाऊँ मैं कैसे—
ग्राम-बालिका सा अल्हड़पन

× × ×

होने पर भी दूर आज
तुम कितने निकट हो गई मेरे ।'[२]

प्रसाद ने भी कुछ इसी प्रकार का भाव इन पंक्तियों में व्यक्त किया है—

तुम्हारी आँखों का बचपन,
खेलता था जब अल्हड़ खेल,
अजिर के उर में भरा कुलेल,
हारता था हंस-हंस कर मन,
आह रे, वह व्यतीत जीवन ।'[३]

कवि को अपनी प्रेयसी से यही शिकायत है कि जिस पर उसने अपना सम्पूर्ण ऐश्वर्य न्योछावर कर दिया, अपने जीवन की समस्त खुशियों को कुछ नहीं समझा । उसी निःस्वार्थ प्रेमी के प्रेम को वह निष्ठुर प्रेयसी नहीं पहचान सकी । उसके जीवन के मधुर स्वप्नों को नादानी कह कर टाल दिया । अश्रुकन में डूबे हुए उसके प्यार को पहचाना नहीं—

'मेरे जीवन के सपनों को
तुमने सदा कहा नादानी

× × ×

१. मंजीर,—माथुर, पृष्ठ ८
२. वही, पृष्ठ १५
३. लहर—प्रसाद, पृष्ठ २३

जिस आँसू में डूब गया मेरा संसार, नहीं पहिचाना
तुमने प्यार नहीं पहिचाना ।'[१]

कवि को इसी बात का दुःख अत्यधिक है कि उसकी प्रेयसी ने उसके प्रेम का प्रत्युत्तर नहीं दिया । प्रेम के स्थान पर उसे सदैव निराशा ही हाथ लगी । उसका मन विरह की ज्वाला में सदैव दग्ध रहा । सावन की बदली के समान प्रिय मिलन के क्षण बहुत कम मिलते हैं । फलस्वरूप वही अतृप्ति, वही निराशा अपना घेरा चारों ओर डाल लेती है—

'प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा
कोटि दीप जलते थे मन में
कितने मरु तपते यौवन में
रस बरसाने वाले आकर—
विष ही छोड़ गये जीवन में
जल की जगह ज्वाल ही बरसी
सदा प्यार के लघु सावन में ।'[२]

विरह का यह ज्वार धीरे-धीरे शान्त हो जाता है । मन की उथल-पुथल भी मन्द पड़ गई है । रुदन और गान का क्रम क्रमशः समाप्त हो गया है । जीवन में केवल वीरानी रह गई है । कवि का मन न गाने को करता है और न प्रणय की असफलता पर रोने को । अब वह ऐसी स्थिति में आ गया है, जहाँ जीवन के स्वप्न धूमिल पड़ गए हैं—

'गाने रोने बन्द हुए
अब जीवन में सुनसान रह गया
चला गया तूफान
एक पीछे ऊजड़ वीरान रह गया ।'[३]

बच्चन की एक कविता में प्रणयजन्य निराशा और वेदना का चित्रण इस रूप में हुआ है—

'अब वे मेरे गान कहाँ हैं
किस पर अपना प्यार चढ़ाऊँ ?
यौवन का उद्गार चढ़ाऊँ ?
मेरी पूजा को सह लेने वाले वे पाषाण कहाँ हैं ?'[४]

प्रणयजन्य असफलता से कवि इतना अधिक निराश हो गया है उसकी

१. मंजीर—माथुर, पृष्ठ ५१
२. वही, पृष्ठ ५६
३. वही, पृष्ठ ५८
४ निशा निमन्त्रण—बच्चन, पृष्ठ ९३

हिम्मत बिल्कुल टूट गई है। उसमें अब इतना साहस नहीं रहा कि फिर से उन अरमानों को सजा कर पुनः प्यार कर—

'अब वह दिन ही नहीं रहा
जो फिर से कुछ अरमान बनाऊँ
अब हिम्मत ही रही नहीं
जो एक नया पाषाण सजाऊँ।'[१]

विरह-वेदना की दृष्टि से वैयक्तिक कवियों में तथा गिरिजाकुमार माथुर में काफी साम्य दृष्टिगत होता है। लगभग एक जैसी शब्दावली में इन कवियों के विरहाकुल भाव व्यंजित हुए हैं। प्रेम के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों से इनमें निराशा का भाव आ गया है। यही कारण है कि माथुरजी की प्रारम्भिक रचनाओं में विरह-भावना जीवन से कटी हुई मालूम होती है। यहाँ प्रिय की स्मृति जीवन-संघर्ष की प्रेरणा नहीं देती। कवि स्वयं में इतना लीन है कि उसे समाज की, अपने से अलग किसी और को फिकर नहीं है। यह भी सत्य है कि इनकी विरहभावना छायावाद से नितान्त भिन्न है। वैयक्तिक अनुभूतियों को इतनी समग्रता के साथ छायावाद में अभिव्यक्त नहीं किया गया। वहाँ प्रकृति के उपकरणों को माध्यम बनाकर कल्पना का आश्रय लेकर अपनी पीड़ा व्यक्त की गई है। किन्तु गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में कल्पना की दूरी कम और अनुभूति की निकटता अधिक है। 'नाश और निर्माण' की पहली कविता के प्रारम्भ में जहाँ रोमानी आभा का मिश्रण है वहीं अनुभूति की निकटता भी है जिसमें प्रवासी के मन की उदासी व व्यथा को व्यक्त किया है—

'कौन थकान हरे जीवन की ?
बीत गया संगीत प्यार का
रूठ गई कविता भी मन की।

× × ×

रात हुई पंछी घर आए
पथ के सारे स्वर सकुचाये
म्लान दिया—बत्ती की बेला
थके प्रवासी की आँखों में
आंसू आ-आकर कुम्हलाये।'[२]

'धूप के धान' गिरिजाकुमार माथुर की प्रौढ काव्य-कृति है। जिसमें उनके प्रेम का प्रौढ रूप देखने को मिलता है। यहाँ विरही कवि जीवन से सर्वदा असम्पृक्त

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृष्ठ ७
२. वही, पृ० १, २

व एकांकी नही है। वह प्रणय की असफलता पर केवल आँसू नहीं बहाता। अपने जीवन की मधुर स्मृतियों में ही नहीं खोया रहता। वह चुपचाप व्यथा का भार ढोता है। प्रेम के दुःख को वह अपने हृदय में छिपाते हुए जीवन के कटु संघर्षों से जूझने का हर सम्भव प्रयास करता है। जीवन में जिसे वह नहीं पा सका; जो उसके लिए अप्राप्य रहा है, उसे वह भूल जाना चाहता है। यहाँ तक आते-आते उसकी दृष्टि केवल वर्तमान पर न रहकर सुनहर भविष्य की ओर भी लगी है—

'जो न मिला भूल उसे
कर तू भविष्य वरण
छाया मत छूना, मन
होगा दुःख दूना, मन।'[1]

प्रेम के क्षेत्र में आने वाली कटुताओं से जूझते हुए कवि ने यह देख लिया है कि मन के कोमल भाव अधिक मूल्यवान होते हैं, किन्तु वे भाव मनुष्य को अकर्मण्य बना देते हैं। यही कारण है कि मन के संघर्षों से समाज के संघर्ष अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। विरह-व्यथा मनुष्य को अन्तर्मुखी बना देती है किन्तु सच्चा विरही नहीं है जो संयोग और वियोग की स्मृतियों को मन में रटता हुआ कर्मशील रहे। केवल अपनी समस्याओं से घिरा न रहकर समाज और देश के विषय में भी सोचे। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर ध्यान दे। 'प्रौढ रोमांस' नामक कविता इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

'हमको भी है ज्ञान बिरह का
और मिलन का
यह मत समझो बरफ बन गया हृदय हमारा
× × ×
पर हम तुमसे बहुत भिन्न हैं
हम मन में सुधि रखकर भी
हैं कर्मशील
हैं संघर्षों में डूबे भूले
हम डटकर जीवन से युद्ध कर रहे प्रतिपल
आज हमारे सम्मुख और समस्याएँ हैं
प्रश्न दूसरे
घर के, बाहर के, समाज के
मुल्क और दीगर मुल्कों के
अब हमको सुधि की पीड़ा है नहीं सताती।'[2]

१. धूप के धान—माथुर, पृ० १०२
२. वही, पृ० २४

आज कवि ने उस अवस्था को प्राप्त कर लिया है जहाँ उसे 'सुधि की पीड़ा' भी नहीं सताती, क्योंकि उसे विश्वास है कि प्रिय के वियोग की पीड़ा को सहते-सहते उसके मन के सारे खोटे सिक्के गल जाएँगे। माथुरजी ऐसा मानते हैं कि विरह की पीड़ा के पीछे एक रहस्य छिपा है—शरीर की भूख। इसी कारण मनुष्य को प्रिय से बिछुड़ने पर दु:ख की अनुभूति होती है, किन्तु जब मन के ये विचार (खोटे सिक्के) समाप्त हो जाएँगे तभी प्रेम के आदर्शों की सच्चाई का पता लग सकता है। अर्थात् प्रिय का सान्निध्य ही प्रेम नहीं है। प्रेम जीवन में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। संघर्षों से जूझने को ललकारता है—

'पर मुझको है पता
कि बिछुड़न की इन तीखी पीड़ाओं में
ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की इन बातों में
छिपा हुआ है भेद कौन सा

× × ×

वह सारा वेदान्त फलसफर
केवल शारीरिक है
आज नहीं मानोगे तुम मेरी बातों को

× × ×

जब दैनिक जीवन की भट्टी में
गल जाएँगे खोटे सिक्के सारे मन के
तब जानोगे इन आदर्शों की सच्चाई।[1]

गिरिजाकुमार माथुर की विरह-भावना में क्रमश: विकास दृष्टिगत होता है। इनकी आरम्भिक कृतियों में जहाँ शारीरिक दूरी के होने से प्रेमी का मन दु:खी हो जाता है, वह अपने-अपको सर्वथा निस्सहाय पाता है। वह अपनी ही भावनाओं में डूबता-उतरता दिखाई देता है। 'धूप के धान' में प्रेम का उज्ज्वल व गार्हस्थिक रूप है, जहाँ प्रेयसी परकीया नहीं है वरन् पत्नी है। कवि को अपनी पत्नी का वियोग और बच्चों का नटखटपन ('आज न बच्चे घर में हैं कूड़ा करने को') याद आता है। गिरिजा-कुमार माथुर के काव्य में काल्पनिक विरह (यथा—गोपी-कृष्ण विरह) का चित्रण नहीं हुआ है। विरह-भावना के लिए उन्होंने जीवन से सामग्री ग्रहण की है जिसमें अनुभूति की प्रामाणिकता प्रधान रूप से विद्यमान है। वस्तुत: 'आधुनिक युग से पहले विरह-भावना जीवन की बहुमुखी अभिव्यंजना से दूर थी किन्तु, अब वह उसके अत्यन्त समीप आ गई है। (माथुरजी के काव्य में) पत्नी के वियोग के साथ बच्चों के अभाव की अनुभूति विरह-वेदना को यथार्थ रूप प्रदान कर रही है।'[2]

१. धूप के पान—माथुर, पृ० २३
२. आधुनिक हिन्दी काव्य में विरह भावना—डॉ० मधुरमालती सिंह, पृ० ४७६

प्रणय के क्षेत्र में माथुरजी उन आशावादी कवियों मे से एक हैं जो अतीत के मधुर मिलन की स्मृति में वर्तमान के सब कष्टों को भुला देना चाहते हैं। वैयक्तिक कवियों की भाँति प्रेम का प्रत्युत्तर न पाने पर एकदम हताश नहीं हो जाते। पूर्व मिलन की मादक स्मृतियाँ ही इन्हें कर्मशील बनाती हैं। इनके रोमानी काव्य का मूल मन्त्र सम्भवतः यही प्रतीत होता है—

'वियोगी, मिलन याद में दुख भुला चल।'[१]

निराशा के स्वर

काव्य में निराशा की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है किन्तु इस निराशा का आधार वैयक्तिक नहीं था वहाँ दार्शनिक तत्त्व की प्रधानता थी। कवि संसार के नश्वर तत्त्वों को देखकर चिन्तित हो जाते थे। वैयक्तिक प्रणयजन्य असफलता का चित्रण वहाँ बहुत कम हुआ है, यद्यपि प्रसाद का 'आँसू' और पन्त की 'ग्रन्थि' आदि रचनाएँ इसका अपवाद हैं। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, गिरिजाकुमार माथुर आदि में प्रणयजन्य निराशा का चित्रण हुआ है। निराशा और अवसाद की अभिव्यक्ति व्यक्तिवादी गीत-कविता की एक प्रधान विशेषता है। प्रस्तुत काव्य में निराशा का आविर्भाव प्रणयजन्य असफलता तथा तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों के कारण हुआ। सन् १९३०-३५ में देश की ऐसी स्थिति थी जिससे काल्पनिक स्वप्न टूट रहे थे। बाह्य संघर्षों से जूझने में कवि स्वयं को असमर्थ पा रहे थे। अतः आन्तरिक व बाह्य दोनों परिस्थितियों के फलस्वरूप काव्य में निराशा और पराजय के भाव अधिक मुखरित होने लगे। यह प्रवृत्ति गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में भी मिलती है। उनकी पुस्तक 'नाश और निर्माण' के पूर्वार्द्ध (नाश) में पराजय, निराशा और विवाद आदि का ही चित्रण हुआ है। 'मंजीर' की कुछ कविताओं में भी इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति हुई है। घोर पराजय के भावों के मध्य आशा की क्षीण किरण भी यत्र-तत्र दिखाई देती है—

**'राजमहल तो उजड़ गया
पर खंडहर में सपने बाकी हैं
फूल वहाँ के नहीं किन्तु फूलों जैसे पाषाण लिए हूँ
रूठ गए वरदान सभी फिर भी मैं मीठे गान लिये हूँ।'[२]**

कवि ने अपनी असफलता का चित्रण कहीं-कहीं प्रकृति के नश्वर उपादानों के माध्यम से किया है। ऐसे स्थलों पर उनका साम्य छायावादी कविता से देखा जा सकता है। अन्धकार के बादलों के मध्य कवि का जीवन-दीप धुन्धला पड़ता जा रहा है—

---

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ४१
२. मंजीर—माथुर, पृ० १९, २०

'मुरझाये पत्तों के ऊपर
अपना जीवन लिखता जाता
× × ×
धूल-कणों से मिला रहा हूँ
ठोकर खाई हुई साधना
× × ×
धुंधला जीवन दीप हो रहा
घिरते जाते काजल के कन।"[1]

प्रेयसी से प्रेम न पाने पर कवि स्वयं को ही पापी कहकर सम्बोधित करता है—

'प्यार हाय मैं पाता कैसे, मैं तो चिर पापी हूँ रानी।'[2]

दूसरी ओर आरसी प्रसाद सिंह भी कुछ इसी प्रकार के भाव व्यक्त करते है—

'मैं प्रेम प्यार से वंचित हूँ, मैं अपने भावी से निराश

नए प्यार के बलिदान हो जाने पर कवि इतना अधिक हताश हो गया है कि उसे उल्लासवर्धक वस्तुएँ भी निस्सार प्रतीत होती हैं। प्यार के जिन स्वप्नों को वह भूल चुका है उन्हें फिर से साकार करना उसके वश की बात नहीं है। वह जीवन जो प्रेम से वंचित होकर चिता बन गया था उसे फिर से सुख-चांदनी से हरा-भरा नहीं किया जा सकता। प्रणय के क्षेत्र में मिलने वाली असफलता ने कवि के जीवन की खुशियों को कुचल दिया है। जीवन में फिर से उल्लास और रंगीनी आना नितान्त असम्भव प्रतीत होता है :—

'गरम भस्म माथे पर लिपटी
कैसे उसको चन्दन कर लूँ
प्याला जो भर गया जहर से
सुधा कहाँ से उसमें भर लूँ
कैसे उसको महल बना दूँ
धूल बन चुका है जो खण्डहर
चिता बने जीवन को आज
सुहाग-चांदनी कैसे कर दूँ
कैसे हंसकर आशाओं के मरघट पर बिखराऊँ रोली
होली के छन्दों में कैसे दीपावली के बन्द बनाऊँ।'[4]

१. मंजीर—माथुर, पृ० १६, २०
२. वही, पृ० २१
३. संचयिता—आरसी प्रसाद सिंह, पृ० ३२१
४. मंजीर—माथुर, पृ० २६

जीवन के संघर्षों में कवि के मन में निराशा का भाव इतना अधिक घनीभूत हो गया है कि उसे अपने जीवन से ही विराग हो गया है। प्रिय से मिलन न होने के कारण उसके जीवन में केवल पीडा और तड़प रह गई है। तड़पन ही अब उसका जीवन बन गया है—

जीवन में तड़प, तड़प जीवन, अब मुझको जीवन से विराग।[१]

मंजीर के गीतों में जहाँ यह निराशा भाव बिखरे रूप में मिलता है वहाँ 'नाश और निर्माण' के पहले भाग की कविताओं में अधिकांशतः निराशा, पराजय, उदासी तथा घुटन आदि भावों को अभिव्यक्ति मिली है। निर्माण पक्ष में आशा और उल्लास का चित्रण हुआ है। 'नाश और निर्माण' के वक्तव्य में माथुरजी ने स्वयं लिखा है— "विकास का यह पथ पहिली और अन्तिम कविता की दूरी से स्पष्ट हो जाएगा। इन दोनों कविताओं के बीच दो युगों का अन्तर है—एक अन्धकार का दूसरा प्रकाश का।"[२]

'नाश और निर्माण' के 'नाश' पक्ष में पराजय भावों की अधिक प्रधानता है। प्रेम की असफलता के कारण सभी स्वप्न मिथ्या जान पड़ते हैं। बीते हुए प्यार की सुधि उसे केवल रुलाती है, उसमें उल्लास और स्फूर्ति का संचरण नहीं करती अब तो 'कवि का मन प्यार करने से भी डरता है, क्योंकि अब तो उसके पास कुछ भी नहीं है जिसे वह प्रिय पर न्योछावर कर सके—

यह मुझको सुधि सी क्या आती।
अब यह किसके लिए मचलकर
कहती न्योछावर होने को
× × ×
अब वह दिन ही नहीं रहा
जो फिर से कुछ अरमान बनाऊँ
अब हिम्मत ही रही नहीं
जो एक नया पाषाण सजाऊँ
मेरी बची हुई पूजा अब
पूजन करने से घबराती।'[३]

प्रेम के अभाव में इन वैयक्तिक कवियों ने स्वयं को ही हतभागी माना है बार-बार असफलता के कारण उनमें अत्यधिक निराशा और जड़ता आ गई है—

तुमको कैसे प्यार करूँ ?
मेरी विफल तपस्या, किस विधि श्रीपद अंगीकार करूँ ?

---

१. मंजीर—माथुर, पृ० ३६
२. नाश और निर्माण (वक्तव्य)—माथुर।
३. वही, पृ० ७, ८

लो मेरा दुर्भाग्य ! और क्या दूँगा मैं शाश्वत हतभागी ।'[1]

कभी-कभी प्रिय को सन्देह होने लगता है कि वस्तुतः जिसे वह प्यार समझता था वह प्यार नहीं सपना था । पलभर का खेल था । उस झूठे भुलावे से उसका जीवन नष्ट हो गया । जिस हृदय-रूपी पुष्प ने कभी ओस के कण तक सहन नहीं किए थे उसी को विरह के पाषाण सहने पड़ रहे हैं । जिस प्रणय के लिए वह वर्षों से साधना कर रहा था उस तपस्या का फल उसे शाप, रंज और आंसू के कणों के रूप में मिला ।'[2] और अब तो वह प्रेम कच्ची डोर से बन्धे हुए सपने के समान ही लगता है, जो क्षण-भर में ही विलीन हो गया—प्रेम की विफलता से कवि में विषाद और विफलता के स्वरों का प्राधान्य हो गया है

'हम जिस पर बरबाद हुए वह सपना ही निकला आखिर में
प्यार हमारा टूट गया, जब कच्चे डोरे सा छिन भर में ।'[3]

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में यद्यपि निराशा की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है किन्तु निराशा का स्वर इनके काव्य का प्रधान स्वर नहीं है । इनके काव्य में मुख्यतः आस्था और विश्वास के स्वरों की अभिव्यक्ति हुई है । प्रेम की असफलता के कारण सारे जीवन अश्रु बहाना कवि को रुचिकर नहीं है । जीवन-पथ के संघर्षों में आने वाली असफलता, निराशा और दुख को एकत्र करके कवि पर्वत का रूप नहीं देना चाहता । वह तो दुःखों को प्रसन्नतापूर्वक अंगीकार करके जीने में विश्वास रखता है । प्रेम तो बलिदान है और बलिदान को शाप समझना मृत्यु के समान है—

'बना चलूं क्यों एक हिमालय,
दुख के कन को बढ़ा चढ़ा कर,
विष तो अमृत बन न सकेगा जीवन भर आँसू बरसा कर ।
पाषाणों में हंसकर जीना
हंस-कर मरना ही जीवन है
बलिदानों को शाप समझना मरने से भी प्रथम मरण है'[4]

आगे चलकर कवि यह स्वीकार करता है कि वह क्षणिक असफलता को देखकर विचलित हो गया था, क्योंकि प्रेम ऐसा अस्थायी भाव नहीं है जो आज है और कल नहीं । वस्तुतः मिलन की मधुर स्मृतियाँ ही मनुष्य को प्रेरित करने में पूर्णतः समर्थ हैं और फिर अच्छाई के साथ-साथ बुराई भी अवश्य विद्यमान रहती है । जहाँ कोमल फूल होते हैं वहीं कठोर कांटे भी अवश्य होते हैं अतः प्रिय से मिलन हुआ है तो विछोह

१. मिट्टी और फूल—नरेन्द्र शर्मा, पृ० २६
२. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १६
३. वही, पृ० २३
४. वही, पृ० ३८

की भी पूर्ण सम्भावना रहती है। फिर वियोग के क्षणों में ही प्रेम का वास्तविक स्वरूप सामने आ सकता है—

'फूलों का मुस्काना सुनकर देख रहा मैं कांटों का बल।
डर क्या है जो जीवन के
अमृत पर लगी गरल की छापें,
जहां स्वर्ग की सुधियाँ होंगी बन जाएगा स्वर्ग वहीं पर।'[१]

उद्वेलन की स्थिति से बाहर निकल कर कवि ऐसी भाव-भूमि पर आ गया है जहाँ सुख और दुख की अभिव्यक्ति उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखती अब वह अपनी प्रेयसी से प्रेम की नही जीवन के संघर्षों और तूफानों की याचना करता है। जीवन के जिन संघर्षों से मुख मोड़कर उसने काल्पनिक स्वप्न बनाए थे उन्हीं संघर्षों को वह अंगीकार करना चाहता है। असम्भव से असम्भव कार्य को कर सकने की शक्ति माँग रहा है—

'धूल के रंगीन बन्धन तोड़ने को,
और जो बाकी बचे तूफान दे दो,
जिस असम्भव में मिटे हैं स्वप्न मेरे,
उस असम्भव का मुझे अभिमान दे दो।'[२]

पलायन वृत्ति

गिरिजाकुमार माथुर के आरम्भिक काव्य में पलायनवादी प्रवृत्ति के दर्शन भी होते हैं। वस्तुतः यह छायावाद का प्रभाव है। छायावादी कवि वैयक्तिक प्रणय की विफलता तथा जीवन के अन्य संघर्षों से निराश होकर दूर कहीं एकान्त स्थान पर जाने की चेष्टा करता रहा है। संसार की नश्वरता तथा विषमता उसे बार-बार उस ओर आने का संकेत देती रही। जीवन के संघर्षों से मुख मोड़कर प्रकृति के माध्यम से इन कवियों में काल्पनिक सुख की खोज की। 'उस पार' का तीव्र आकर्षण इनकी रचनाओं में मिलता है—

''जहाँ के निर्झर नीरव गान
सुना करते अमरत्व प्रदान
सुनाता है नभ अनन्त झंकार,
बजा देता उर के सब तार
भरा जिसमें असीम सा प्यार,
कौन पहुँचा देगा उस पार?'[३]

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ३९
२. वही, पृ० ४१
३. आधुनिक कवि (भाग १)—महादेवी वर्मा, पृ० १३

माथुरजी भी विश्व के उस पार जाना चाहते हैं जहाँ चिर स्वर्ग विद्यमान है। सुख-रूपी कोमल परियों का नित्य विलास है। अर्थात् जहाँ सांसारिक दुःखों का नितान्त अभाव है। जहाँ केवल प्यार है : केवल प्रकाश है। कवि ऐसे लोक में जाने का इच्छुक है जहाँ स्वर्णिम स्वप्नों की अपार भीड़ लगी है तथा निराशा और पराजय के भाव नाममात्र को भी नहीं हैं—

'स्वर्णिम सपनों की जहां भीर
बहती सुधि की मलयज समीर
× × ×
चिर स्वर्ग जहां करते निवास
सुख परियों का कोमल विलास
नव-नव किरणों का मृदुल हास
खिल-खिल पड़ता चिन्मय प्रकाश
है जिस क्षितिजा में मिला प्यार
मैं चला आज उस विश्व पार।'[1]

कवि देश के उस पावन पुलिन पर जाने का इच्छुक है जहाँ शहनाइयाँ बज रही हैं। कला के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। जहाँ नूतन सौन्दर्य का सर्वत्र साम्राज्य है। माथुरजी कवि के गान को जगाने का आह्वान देते हुए कहते हैं कि मुझे अपने स्वरों के यान पर बैठाकर रूप के नवदेश में ले चल—

'निज स्वरों के यान पर ले चल मुझे भी तो उठाकर
रूप के नवदेश में तू आज मुझको छोड़ जाकर
दूर पर नवलोक में शहनाइयां जो बज रही हैं
चिर-कला-मन्दिर-तले नव आरती जो सज रही है
नाचता आलोक चंचल उस सुनहले-से शिखर पर
नाम नव सौन्दर्य का लघु ओस कनियां भज रही हैं
आज वह चल उधर ही उस देश के पावन पुलिन पर।'[2]

बहुत कुछ ऐसी ही ध्वनि प्रसाद की प्रस्तुत कविता में अनुगुंजित हुई है। कवि संसार के कोलाहल से दूर, शान्त और निश्छल लोक में जाना चाहता है—

'ले चल वहां भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर के कानों में गहरी—

१. मंजीर—माथुर, पृ० १७
२. वही, पृ० ४१

निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे ।[1]

छायावाद की जिस पलायनवादिता का वैयक्तिक कवियों ने विरोध किया था कालान्तर में उसी प्रवृत्ति का इनमें प्राधान्य मिलता है । इन कवियों ने जीवन के समस्त अभावों व असफलता को हाला के प्याले में भुलाने की चेष्टा की । हाला की मादकता में ये कवि अपनी स्मृतियों को भुला देना चाहते हैं, स्वयं को विस्मृत करना चाहते हैं—

'अभी बहुत पीना है मुझको, तुमको बहुत पिलाना
इस स्मृति के तिमिर लोक में भटक भटक रह जाना ।'[2]

माथुरजी भी अपनी प्रेयसी के 'व्योम के उस पार' नशीले जगत् में जाना चाहते हैं जहाँ चिर-मिलन है, सुख-स्वप्न और नवयौवन है । जहाँ चांदनी की छत्र-छाया में सुधि-रूपी कमलिनी का नित्य विकास होता है । जहाँ संसार के दुःखों व क्लेशों के स्थान पर सदैव बसन्त छाया रहता है—

'व्योम के उस पार सजनी
उस नशीले जग चले हैं जहाँ मधु की मिलन रजनी
स्वप्न सुमनों में जहाँ हो अमर नवयौवन समाया
मधुर जीवन पर जहाँ नित नित नया मधुमास छाया
फूलती हो चांदनी में जहाँ चुप चुप सुधि कमलिनी ।'[3]

परन्तु पलायनवादिता माथुरजी के काव्य की प्रधान प्रवृत्ति नहीं है । आरम्भिक कविताओं में कुछ स्थलों पर ही इस प्रवृत्ति का आभाव मिलता है । वस्तुतः माथुरजी संघर्ष के कवि हैं । जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए स्वर्णिम भविष्य की आस्था इनकी रचनाओं में मिलती है । विकास-पथ की ओर अग्रसर होते हुए उनकी रचनाओं में सुख स्वप्नों के स्थान पर जन-जागरण की अभिव्यक्ति हुई है । कवि ने दृढ़ शब्दों में कहा है कि आज उसके गीत सत्य के सन्देशवाहक तथा जागरण का सन्देश देने वाले हैं—

'मुंद चुका है कुमुद बन हो शीर्ण पिछली भावना का
मिट चुके आलस भरे अब स्वप्न सारे यामिनी के
आज मेरे स्वर बनेंगे सत्य के सन्देशवाहक
आज मेरे गीत होंगे जागरण की रागिनी के ?'[4]

१. लहर—प्रसाद, पृ० १४
२. मधूलिका—रामेश्वर शुक्ल अंचल (पृ० सं० नहीं है) ।
३. मंजीर—माथुर, पृ० ३४
४. वही, पृ० ६७

गिरिजा का रहस्य-लोक

रहस्यवादी भावों की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रधान विशेषता है। सामाजिक बन्धनों का अतिक्रमण न कर सकने के कारण छायावादी कवियों ने अपने भावों को रहस्य तथा आध्यात्मिक के आवरण में छिपाकर अभिव्यक्त किया। प्रकृति के प्रत्येक उपकरण के प्रति उन्होंने जिज्ञासा भाव व्यक्त किया तथा प्रकृति का रहस्यात्मक चित्रांकन किया। छायावाद की यह अवशेष प्रवृत्ति गिरिजाकुमार माथुर के आरम्भिक काव्य-संग्रह 'मंजीर' में भी कहीं-कहीं दृष्टिगत होती है। कुछ स्थलों पर कवि ने पन्त जी की भाँति अपने जिज्ञासा भाव को रहस्यवादी ढंग से अभिव्यक्त किया है। ऐसी रचनाओं में कवि का भाव सौन्दर्य, शैली और शब्दचयन बिल्कुल छायावादी प्रतीत होता है। कवि अपनी प्रेयसी को छाया-रूप में सम्बोधित करता हुआ कहता है—

'कौन तुम छाया-सी अनजान।
भटक कर उस सीमा पर थके
समझ पाए न आज तक प्राण
स्वप्न-सी तुम परिचिता-अजान
कौन हो मैं सोचा करता
तुम्हारी रूप-कल्पना, देवि
हमारे सपने रंग जाती।'[1]

उपर्युक्त कविता में रहस्य की अपेक्षा जिज्ञासात्मक भावों को संप्रेषित किया गया है और यह जिज्ञासा भाव भी अज्ञात की अपेक्षा ज्ञात के प्रति निवेदित किया गया है। रूप और आभा से युक्त जिस 'देवि' का चित्रण किया गया है वह कोई अलौकिक सत्ता न होकर कवि की प्रेयसी ही है। यह चित्रण लगभग वैसा ही है जैसा पन्त की 'शिशु' नामक कविता में हुआ है इसमें भी रहस्य के स्थान पर जिज्ञासा की प्रधानता है—

'कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम ?
अले अभिनव, अभिराम।
मृदुलता ही है बस आकार।'[2]

इसी प्रकार के जिज्ञासा भावों को एक अन्य कविता में अभिव्यक्त किया गया है कवि प्रश्न करता है कि उसके हृदय में करुण पीड़ा को जगाने वाला कौन है ? किसकी सुधि उसके हृदय में समा गई है ?

'कौन ने वीणा बजाई
आज इस एकांत-तट पर करुण वागीश्वरी गाई

× × × ×

१. मंजीर—माथुर, पृ० २३, १४
२ रश्मिबन्ध—पन्त, पृ० ४८

स्वप्न में भी कौन ने है
करुण-पीड़ा को जगाया
आज भरने कोष आहों का हृदय में सुधि समाई ।'[१]

इन जिज्ञासात्मक प्रश्नों का उत्तर कवि ने स्वयं ही दिया है और स्पष्ट किया है कि उसे किसी अज्ञात लोक के सौन्दर्य की अपेक्षा इसी शून्य संसार के प्रति आकर्षण है। इस संसार का इतिहास सुख-स्वप्नों से नहीं दुःखों और आंसुओं से लिखा गया है इसके अतिरिक्त कवि के गीतों की प्राण-शक्ति कोई अज्ञात शक्ति नहीं बल्कि उसकी प्रेयसी है—

'देवि मैं क्या समझूँ वह बात
मुझे तो यही शून्य संसार
लिखा जिसका सारा इतिहास
एक आँसू से कितनी बार

× × ×

तुम्हीं बन बन जाती हो प्राण—
हमारे रूखे-फीके गान ।'[२]

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-चित्रण छायावाद की एक अन्य प्रधान विशेषता है। प्रकृति-सौन्दर्य के अनेक भव्यचित्र छायावादी काव्य में उपलब्ध होते हैं और यही कारण है कि इसे प्रकृति-प्रधान काव्य भी कहा जाता है। छायावाद की यह विशेषता माथुरजी के काव्य में भी उपलब्ध होती है। कवि के अनेक सुकोमल भावनाओं की भांति उन्होंने प्रकृति के माध्यम से न तो रहस्यभावों की अभिव्यक्ति की है और न किसी अज्ञात सत्ता की ओर संकेत किया है। प्रकृति का आलम्बन रूप में यथार्थ दृष्टि से चित्रण किया है।

आलम्बन रूप

गिरिजाकुमार माथुर की आरम्भिक काव्य-रचना 'मंजीर' में आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण हुआ है। ऐसे स्थलों पर कवि ने प्रकृति को निकट से देखा है, उसके विभिन्न तत्त्वों की ओर आकृष्ट होकर उनकी अभिव्यक्ति की है। यह चित्रण छायामत्क न होकर यथार्थ प्रतीत होता है। अपनी एक कविता में कवि ने प्रातःकाल का चित्रण इतना सरल और सजीव रूप में किया है कि पूरा चित्र आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। प्रभात का समय है, पूर्व दिशा में लाली छाई है ऐसा प्रतीत होता है कि ऊषा सोना लुटा रही है। पुष्प मुस्करा रहे हैं। उन पर ओस बिन्दु पड़े हैं, ऐसा

१. मंजीर—माथुर, पृ० ७७
२. वही, पृ० २५

लगता है कि पुष्प ओसकनों की अंजली भर कर अर्घ्य चढ़ा रहे हैं। सारे वन में सुख और शान्ति का मधुमास छा गया है—

'यह सुनहला दिवस आया
गगन ने मोती लुटाये उषा ने सोना लुटाया
झुरमुटों से झांक कर
ये फूल भी हैं मुसकराते
अर्घ्य देने को तुहिन-कन
अंजली में भरे लाते
हंस उठी वनराजि फिर सुख-शान्ति का मधुमास आया।'[1]

प्रकृति का एक अन्य मूर्त चित्र जिसमें कोयल का श्यामल स्वर भीगी अमराई, साँवली बदलियों का उड़ता हुआ घूँघट-पट, वर्षा से भीगी अलकें तथा उनसे गिरता हुआ पानी, आँखों के समक्ष वर्षा के पूर्व और पश्चात् का पूरा चित्र आ जाता है—

'कोयल सा श्यामल स्वर
भीगी अमराई से आता है पल-पल भर
सुरमीली आंखों को ढांक रही श्याम-अलक
सांवली बदलियों का उड़ता-सा घूँघट-पट
× × × ×
आई बरसात आज
गीली अलकों से वारि बूँदें चुआती हुई।'[2]

पतीकों का आश्रय लिए बिना कवि ने सर्वत्र प्राकृतिक उल्लास का चित्रण किया है। मधुवन का प्रत्येक उपकरण उल्लसित है, आनंदित है। मयूर नाच रहे हैं, भ्रमर एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर गुंजार करते हुए जा रहे हैं, रस के झरने झर रहे हैं। प्रकृति का ऐसा स्वच्छ और सरल चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है—

'फूला रे फिर से ये मधुवन।
छिटका कन-कन में हंसती कलियों का मुसकाता यौवन
नीचे मतवाले मयूर डाली डाली पर पागल बन
खेल रहे हैं आंख-मिचौनी गाने गाकर मधुर अली
× × × ×
तरु भी गाते सुख का मर्मर
रस के झरने झरते झर-झर।'[3]

१. मंजीर—माथुर, पृ० ३६
२. वही, पृ० ३२
३. वही, पृ० ७३

'मंजीर' काव्य-संग्रह में इसी प्रकार की कुछ अन्य रचनाएँ 'मां', 'संध्या' तथा 'प्रभात' आदि हैं जिनमें प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया गया है। इनमें सांध्यकालीन तथा प्रभातकालीन प्राकृतिक सुषमा के भव्य चित्र अंकित किए गए हैं। 'मंजीर' के अतिरिक्त 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', 'शिलापंख चमकीले' तथा 'जो बंध नहीं सका' आदि संग्रहों में भी कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूप से प्रकृति-चित्रण किया गया है जहाँ कवि का उद्देश्य केवल प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रांकन करना है। 'नाश और निर्माण' की एक कविता है।

'आज शरद की पूरनमासी' जिसमें शरद्पूर्णिमा का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। नीले आकाश में चाँद खिल रहा है, श्वेत चाँदनी चारों ओर बिखरी है, ओसकन मोतियों की भाँति दृष्टिगत हो रहे हैं और इन सबके साथ गुलाबी ठंडक वातावरण को मादक बना रही है—

'आज शरद की पूरनमासी।
लिए गुलाबी ठण्डक फैली
श्वेत चांदनी धुली डगर में
ओसकनी सी हंसी खिली है
मोती के इस राजनगर में।'[१]

पृथ्वी के स्वर्ग काश्मीर के अद्भुत सौन्दर्य का चित्रण कवि ने बड़े मनोयोग से किया है वहाँ के सौन्दर्य को चार चाँद लगाने वाले हिमशैलों, केसर की क्यारियों, चिनार व देवदार के वृक्षों तथा झील का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है—

'यह कमल धरा का बरफीला
यह झील कटोरा चमकीला
केसर की झांई से पीला
लालिम चिनार के पेड़
× × ×
है स्वर्ग एक कल्पना
सत्य है काशमीर।'[२]

इसी प्रकार 'जो बंध नहीं सका' में 'एक टुकड़ा चाँद' तथा 'कटा हुआ आसमान' आदि कविताएँ भी ऐसी हैं जहाँ कवि का उद्देश्य केवल प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण करना है।

प्रकृति के माध्यम से कवि ने कहीं-कहीं विरह भावों को भी निवेदित किया है। ऐसे स्थलों पर प्रकृति उद्दीपन रूप में न आकर पुरानी स्मृति की सुधि दिलाती

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ४६
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ४८, ४६

है। मिलन के क्षणों में प्राकृतिक उपादान आह्लादक थे, एकाएक वस्तु कितनी भली लगती थी, आज वे सब चीजें पुरानी याद बनकर रह गई हैं—

'याद यह हो आई मुझको पुरानी
इसी ऊनी सी पतली चांदनी में
तरल चन्दन-सी चढ़ते ही उजेली
खेलते धूप-छांह हम यामिनी में।'[१]

सुख-स्वप्नों की अरुणिमा पर संध्या की निराशा ने अपना सूनापन फैला दिया है जिससे चारों ओर अन्धकार छा गया है—

'संध्या आई बनकर निराश
बिखरा सूनापन आसपास
निशि ने सुख-स्वप्न अरुणिमा पर
फैलाया तिमिरांचल महान्।'[२]

पृष्ठाधार

पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति-चित्रण भी व्यापक रूप से इनकी रचनाओं में मिलता है। किसी भाव या वस्तु विशेष की अभिव्यक्ति करने से पूर्व उसके परिवेश को सम्पूर्णता से चित्रित करना माथुरजी की विशेषता है। परिवेश की सजीवता इनकी रचनाओं में मुख्य रूप से पाई जाती है। 'कुतुब के खण्डहर' नामक कविता में कवि ने खण्डहरों से अधिक वातावरण को महत्त्व दिया है। प्राकृतिक परिवेश के चित्रांकन के पश्चात् ही 'कवि ने काई से काले से पडे ध्वंस राजमहलों, पत्थर के ढेर बने मंदिर और मजारों' का चित्रण किया है—

'सेमल की गर्मीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में
झाड़ी-झुरमुटों से उठे लम्बे मैदान में।
रूखे पतझर भरे जंगल के टीलों पर
कांपकर चलती समीर हेमन्त की।'[३]

रोमानी भावों की अभिव्यक्ति में भी कवि ने प्रकृति को पृष्ठभूमि-रूप में रखा। इन भावों को उद्दीप्त करने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। 'रेडियम की छाया' कविता में पृष्ठभूमि रूप में सूनी रात का चित्रण किया गया है जिसमें सिमटा कोहरा चाँद-कटोरे की सिकुड़ी कोरों के माध्यम से मंद चाँदनी पी रहा है। चित्रांकन के इस परिप्रेक्ष्य में कवि प्रथम मिलन का चित्र अंकित करना चाहता है। वातावरण

१. मंजीर—माथुर, पृष्ठ २
२ वही, पृ० १८
३. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ५३

का निर्माण इस रूप में किया गया है कि मिलन की उत्कंठा स्पष्टतः दृष्टिगत होती है—

'सूनी आधी रात ।
चांद कटोरे की सिकुड़ी कोरों से,
मंद चांदनी पीता लम्बा कुहरा,
सिमट लिपट कर ।'[१]

उसी प्रकार के रोमानी भावों को अभिव्यक्त करने वाली एक अन्य कविता है 'आज हैं केसर रग रंगे वन ।' इसमें परस्पर आलिंगन, प्रेम व मिलन-समय की लज्जा को कपोलों की ललाई व अन्य प्राकृतिक संकेतों के माध्यम से व्यक्त किया है। प्रस्तुत पंक्तियों में प्राकृतिक वातावरण का निर्माण रोमानी भावों के सर्वथा अनुरूप है—

'आज है केसर रंग रंगे वन
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी,
केसर के वसनों में छिपा तन
सोने की छाँह-सा
× × ×
गोरे कपोलों पै हौले से आ जाती
पहिले ही पहिले के
रंगीन चुंबन की सी ललाई ।'[२]

'नया वसन्त' कविता में कवि को वसन्त का मौसम मोरपंख की भाँति हल्का लग रहा है, क्योंकि इस ऋतु में दिशाएँ कवि की भाँति स्वतः रोमानी रंगों में डूबी हैं राते सुन्दर नंगी बाहों के समान और मन कोमल गुलाबी रुई समान बन गया है । कुल मिलाकर वसन्त की रात का वातावरण मादक और रंगीन है—

'अब वसंत के प्रथम दिनों की
मंद चाँदनी रात खिल गई ।
चोरी चोरी खिले चमेली के फूलों सी
× × ×
खुली दिशाएँ रोमानी रंगों में डूबी
नंगी सुन्दर बाँहों सी
हल्का चीर
मोर-पंख,.

१. नाश और निर्माण—
२. वही, पृ० ११०
३. वही, पृ० १३१

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि माथुरजी ने प्रकृति के विविध रूपों को चित्रित किया है। उसमें छायावादी रूपों के साथ-साथ कुछ नए रूपों में भी प्रकृति को प्रस्तुत किया है। विरह के उद्दीपन-रूप में तथा स्वतन्त्र रूप से प्रकृति-चित्रण छायावाद की कुछ विशेषताएँ हैं जिन्हें कुछ अंश तक माथुरजी ने भी अपनाया है। आलम्बन-रूप में अंकित प्रकृति-चित्र बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। प्रकृति का सर्वाधिक प्रयोग कर कवि ने वातावरण-निर्माण के परिप्रेक्ष्य में रोमानी अनुभूतियों को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। कुल मिलाकर माथुरजी की प्रारम्भिक रचनाओं में प्रकृति के प्रति रोमानी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। छायावादी काव्य की भाँति इनकी रचनाओं में भी प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

उपर्युक्त विशेषताओं (निराशा, पलायनवादी प्रवृत्ति, जिज्ञासावृत्ति) को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि माथुरजी की आरम्भिक रचनाओं पर छायावाद का प्रभाव है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। ये प्रवृत्तियाँ छुटपुट रूप मे कहीं-कहीं अनायास अभिव्यक्त हो गई हैं। वस्तुतः ये उनके काव्य की प्रतिनिधि विशेषताएँ नहीं हैं। गिरिजाकुमार माथुर न तो निराशावादी कवि हैं और न ही वे इस संसार के संघर्षों से दूर किसी एकांत निर्जन स्थान में जाना चाहते हैं, इसके साथ ही किसी अज्ञात सत्ता का आकर्षण भी उन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं करता। वास्तव में वे आशावादी कवि हैं जो जीवन के संघर्षों से जूझने में ही विश्वास रखते हैं। वे भोगवादी तथा मांसलताप्रिय कवि हैं जिनकी दृष्टि में यह दृश्यजगत अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्हें प्रेरणा देने वाली कोई अज्ञात शक्ति नहीं वरन् उनकी प्रेयसी ही है। अतः छायावाद की आवरणप्रियता तथा वायवीयता से उनका काव्य अछूता है। इनमें मांसलता तथा स्थूलता की प्रधानता है, काल्पनिकता की नहीं। चूँकि माथुरजी रोमानी कवि हैं अतः अधिक गहराई से न देखने पर ऐसा लगता है कि माथुरजी ने भी लगभग वही सामग्री-प्रस्तुत की है जो छायावादियों ने की थी। इस दृष्टि से बालकृष्णराव का मत द्रष्टव्य है—

"मंजीर में गिरिजाकुमार माथुर मुख्यतः एक कोमल, भावप्रवण गीतकार के रूप में हिन्दी संसार के सामने आए थे। छायावाद के तीसरे पहर में जो शब्द, जो अर्थस्फुट ध्वनियाँ, जो संकेत, जो स्वर, जो लय हिन्दी काव्य के भावक वर्ग द्वारा स्वीकृत हो चुके थे, गहराई तक न देखने से लगता है कि वही सामग्री गिरिजाकुमार माथुर भी देने आए थे।"[१]

संक्षेप में गिरिजाकुमार माथुर की आरम्भिक रचनाओं पर छायावाद का प्रभाव होने पर भी प्रधानता निश्छल आत्मभिव्यक्ति की है। वैयक्तिक सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों का कवि ने सूक्ष्मता से चित्रण किया है। जितने प्रभावशाली ढंग से कवि ने मिलन के चित्रों को उतारा उतने ही कौशल से विछोह के मार्मिक चित्रों को प्रस्तुत

१. विवेक के रंग—बालकृष्ण राव, पृ० ३६

किया है। वैयक्तिक काव्यधारा के दो प्रमुख आधार हैं—'काम' और 'अर्थ'। 'काम' के विविध रूपों की अभिव्यक्ति माथुरजी की प्रारम्भिक रचनाओं में प्रचुरता से हुई है और प्रस्तुत अध्याय में इसी का विवेचन किया गया है। समाज के 'आर्थिक' परिवेश को लक्ष्य बनाकर लिखी गई अधिकांश कविताएँ प्रगतिवाद के अन्तर्गत आ सकती हैं। सामाजिक यथार्थ से सम्बन्धित माथुरजी की रचनाएँ उनके प्रगतिवादी विवेचन के अन्तर्गत आती हैं। माथुरजी सर्वप्रचलित अर्थ में प्रगतिवादी नहीं प्रगतिशील कवि हैं। इन कविताओं में वैयक्तिक प्रणय से अधिक समाज में व्यक्ति की विषम स्थिति का ही उद्घाटन किया गया है। कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में जहाँ वैयक्तिकता की प्रधानता थी वहाँ प्रगतिशील रचनाओं में सामाजिकता का आग्रह भी उतना ही स्पष्ट है। वैयक्तिक अनुभूतियों के माध्यम से कवि क्रमशः सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति देने का प्रयास करता चला गया है। इसीलिए 'मंजीर' की अन्तिम कविता में कवि ने स्पष्टतः घोषित किया है कि आज उसकी पिछली भावनाओं के जीर्ण कुमुद वन समाप्त हो गये हैं। आलस से भरे स्वप्न सब नष्ट हो गए। उसके आज के गीत जागरण की रागिनी का सन्देश देने वाले हैं। स्पष्टतः यहाँ कवि अपनी पिछली रोमनी भावना से अलग होता हुआ प्रतीत होता है—

'मुंद चुका है कुमुद वन हो शीर्ण पिछली भावना का
मिट चुके आलस भरे अब स्वप्न सारे यामिनी के
आज मेरे स्वर बनेंगे सत्य के सन्देशवाहक
आज मेरे गीत होंगे जागरण की रागिनी के।'[१]

आगे कवि कहता है कि वह कला में नए स्वरों को भरने का प्रयास कर रहा है? वे नए स्वर हैं—मनुजता के आह्वान के—

'मैं कला के कण्ठ में अब भर रहा हूँ नित नए स्वर,
कर रहा हूँ मनुजता के प्रात का आह्वान प्रतिपल।'[२]

१. मंजीर—माथुर, पृ० ९७
२. वही, पृ० ९६

३ गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में प्रगतिशील चेतना

साहित्य के क्षेत्र में दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं—प्रगतिशील और प्रगतिवादी। व्यापक रूप में प्रगतिशीलता का अर्थ है—आगे बढ़ना, नवीनता की ओर विकास। प्रगतिशील रचनाओं का दृष्टिकोण यथार्थवादी होता है। इस प्रकार की रचनाएँ देश की सांस्कृतिक परम्पराओं तथा मानवतावाद पर आधारित होती हैं। उनका उद्देश्य सामाजिक व आर्थिक सुधार करना होता है किन्तु क्रान्तिकारी रूप में नहीं। धीरे-धीरे अथक प्रयास से सुधारात्मक दृष्टिकोण द्वारा राष्ट्र को उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर करना ही इसका प्रधान लक्ष्य होता है। अतः ऐसी रचनाएँ किसी वाद के संकुचित दायरे में सीमित नहीं रहतीं। प्रगतिवाद का जो रूप सीमित अर्थ में हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित है उसका लक्ष्य मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्तों के आधार पर साहित्य की रचना करना है। 'मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित रचनाओं के अन्तर्गत वे समस्त रचनाएँ आ जाती हैं जिनमें समाज में तब तक चली आती आर्थिक व्यवस्था के प्रति घोर असन्तोष प्रकट किया गया है। साथ-ही-साथ जो मार्क्स और मार्क्सवादी आर्थिक व्यवस्था वाले देशों की प्रशंसा में लिखी गई है।'[1]

प्रगतिवाद के उद्भव के अनेक देशी व विदेशी कारण हैं। प्रगतिवादी आंदोलन का प्रभाव योरोपीय देशों पर पहले पड़ा। फ्रांस तथा रूस आदि देशों में पूँजीवाद की जड़ें काफी मजबूत थीं। पूँजीपतियों के शोषण की चक्की में मजदूर बुरी तरह पिस रहे थे, फलस्वरूप किसानों व मजदूरों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। धार्मिक व सामाजिक परम्पराएँ अत्यन्त रूढ़ हो गई थीं। ऐसे घुटन-भरे वातावरण से बाहर निकलने का प्रयास किया जाने लगा। काव्य के माध्यम से जनमानस की आशाओं व आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति दी जाने लगी और इस अभिव्यक्ति का आधार बना कार्ल मार्क्स व एन्जिल जैसे मनीषियों का जीवन-दर्शन। सामाजिक आक्रोश की प्रतिक्रियास्वरूप पूँजीवाद की जड़ें हिलने लगीं।

भारतवर्ष में भी सन् १९३६ के आसपास राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में इस प्रकार की परिस्थितियों का प्राधान्य हो गया जिनकी प्रतिक्रिया दोनों ही क्षेत्रों

१. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प—डॉ कैलाश वाजपेयी, पृ० २००

में देखी जा सकती है। इन परिस्थितियों के कारण राजनीतिक क्षेत्र में समाजवादी तथा साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवादी विचारधारा जोर पकड़ने लगी। छायावाद की वायवीय प्रवृत्ति, काल्पनिकता, सुकुमारता तथा रहस्यवादिता के कारण काव्य जीवन से बहुत दूर हो गया। वैयक्तिक कवियों ने सामाजिक जीवन की ओर ध्यान न देकर वैयक्तिक दुःख-सुख की ही अभिव्यक्ति की। इन साहित्यिक कारणों के अतिरिक्त 'दूसरा महायुद्ध, उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न आर्थिक-राजनीतिक संकट, मंहगाई, बेकारी, सन् १९४२ की क्रांति, उसका दमन, मजदूरों की ऐतिहासिक हड़तालें, किसानों के जागृत अभियान और सबसे बढ़कर बंगाल का अकाल--आदि वे कारण हैं जिन्होंने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को ही नयी गति देकर उसे अधिक सचेष्टता से मात्र राजनीतिक ही नहीं प्रत्युत आर्थिक स्वाधीनता के लिए भी सक्रिय रूप से प्रयत्नशील होने को बाध्य किया। उन्होंने हमारे साहित्यकारों को भी एक ऐसे पथ की ओर अग्रसर होने को प्रेरित किया जिस पर चलकर वे अपने साहित्य को इन युगीन परिस्थितियों को प्रतिबिम्ब बनाते हुए, जन-मानस की आशाओं-आकांक्षाओं को मूर्तरूप दे सके।'[१]

तत्कालीन परिस्थितियों के ध्यान में रखते हुए सन् १९३५ ई० में पेरिस में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की गई जिसमें साहित्य के माध्यम से सामाजिक प्रगति को ही साहित्यकार का लक्ष्य बताया गया। इस संस्था से प्रभावित होकर सन् १९३६ में डा० मुल्कराज 'आनन्द', सज्जाद जहीर आदि लेखकों ने लखनऊ में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक-संघ' की स्थापना की। सभापति-पद से मुन्शी प्रेमचन्द ने उसी साहित्य को उत्तम बताया जो जीवन की वास्तविकताओं को प्रकट करने वाला हो, जो जड़ता का नहीं संघर्ष का आह्वान करने वाला हो। इस संघ के विभिन्न अधिवेशनों में छायावादी कल्पना और आदर्श के स्थान पर यथार्थ को अधिक प्रश्रय दिया गया। कवियों ने जीवन के सौन्दर्य और सुकोमल पक्ष को ही नहीं कटु यथार्थ को भी देखने का प्रयास किया। प्रगतिवादी कवियों ने कल्पना के आकाश में उड़ने के स्थान पर 'जीव प्रसु' की वास्तविकताओं को देखना चाहा—

> **'ताक रहे हो गगन-मृत्यु नीलिमा-गहन गगन।**
> **देखो भू को, जीव प्रसू के।'[२]**

प्रगतिवाद का मूल सिद्धान्त है—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। भावार्थ के अनुसार इस दृश्य-जगत् के प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति भौतिक शक्तियों के द्वन्द्व द्वारा होती है। द्वन्द की इस प्रक्रिया में अस्वस्थ पदार्थों का लय हो जाता है और शक्तिशाली ज्यों-के-त्यों रहते हैं। विकास की इस प्रक्रिया के पीछे मार्क्सवादी किसी ईश्वरीय सत्ता को नहीं मानते। उनके अनुसार इस संसार की उत्पत्ति नहीं विकास हुआ है। डा०

१. नया हिन्दी काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० १४७
२. वही, पृ० १४८

नगेन्द्र के अनुसार 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वह दर्शन है जो जीवन को एक ऐसी प्रगतिशील भौतिक वास्तविकता मानता है जिसके मूल में विरोधी शक्तियों का संघर्ष चल रहा है। इन विरोधी शक्तियों में निश्चय ही एक विनाश के पथ पर होगी, दूसरी उत्थान के पथ पर। चेतन मस्तिष्क का कार्य यही है कि इस तथ्य को ढूँढ़ निकाले और प्रगतिशील शक्तियों को सहायता दे।'[१]

मार्क्सवादी पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर साम्यवादी व्यवस्था को प्रतिष्ठित करके ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जहाँ सम्पूर्ण शक्ति किसानों और मजदूरों के हाथों में हो। पूँजीपतियों व जमींदारों को वे शोषक-वर्ग का प्रतिनिधि मानते हैं जिन्होंने आज तक दलित वर्ग का शोषण किया है। प्रगतिवाद की पूरी सहानुभूति इस दलित वर्ग के प्रति है। प्रगतिवाद आन्दोलन का उद्देश्य किसानों व मजदूरों को संगठित करना, उनके दुख-दर्द को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करना तथा पूँजीपतियों के विरुद्ध उनमें आक्रोश उत्पन्न करना है।

प्रगतिवाद के माध्यम से हिन्दी में पहली बार ऐसी काव्यधारा का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें पारलौकिक जीवन का नहीं भौतिक जीवन को महत्त्व दिया गया। यह काव्य पलायनवादी नहीं है, काल्पनिक सुखों के वाग्जाल में फंसाने वाला भी नहीं है केवल भौतिक जीवन के सुख-दुःख को महत्त्व देने वाला है। इस काव्य का उद्देश्य न तो भक्ति-काव्य की भाँति मोक्ष प्राप्त करना है और न छायावादियों की भाँति प्रेम और सौन्दर्य के गीत गाना है। प्रगतिवादियों का मूल ध्येय जन-सामान्य की आवाज को काव्य के माध्यम से मुखरित करना है। अर्थ को इन्होंने प्रमुखता दी है और काम को भी अर्थ के ही अधीन माना है। प्रगतिवादियों ने माना कि आज की सभी समस्याओं के मूल में आर्थिक विषमता ही है।

प्रगतिवादी काव्य में 'स्व' की अपेक्षा 'पर' को अधिक महत्त्व दिया गया। इसमें व्यक्ति की नहीं समाज की प्रमुखता है। वैयक्तिक दुःख-सुख की अपेक्षा समाज दुःख-सुख की ओर अधिक ध्यान दिया है। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी काव्य में 'व्यक्ति के स्थान पर समाज और जन-जीवन के कल्याण की, निराशा, पराजय और क्षयी-रोमान्स के स्थान पर आशा, उत्साह और स्वस्थ प्रेम की दिशाओं में साहित्य को गतिशील किया। उसने हिन्दी कविता को एक नयी जीवन्त चेतना प्रदान की।'[२]

प्रगतिवाद के प्रमुख कवि हैं—केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांघेय राघव, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल तथा रामविलास शर्मा आदि। इनमें से एक कवि-वर्ग ऐसा है जिन्होंने मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को ज्यों-का-

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डॉ० नगेन्द्र, पृ० १००
२. नया हिन्दी काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० १५०

त्यों अपनाया और साम्यवादी देशों (चीन, रूस) की प्रशंसा की और कवियों का दूसरा वर्ग वह है, जिनमें गिरिजाकुमार माथुर प्रमुख हैं जिन्होंने प्रगतिशील तत्त्वों को ही अपनाया है। माथुरजी की प्रगतिवादी रचनाओं में—सामाजिक यथार्थ, मानवतावादी विचारधारा, यथार्थबोध तथा काव्य की सहज अभिव्यक्ति आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं। अतः उन्होंने प्रगतिवाद के प्रगतिशील तत्त्वों को ही मुख्य रूप से अपनाया है। माथुरजी काव्य भारतीय प्राचीन संस्कृति से पर्याप्त रूप में प्रभावित है उसमें आस्था और विश्वास के स्वरों की प्रमुखता है। मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं की पूर्व-अभिव्यक्ति उनके काव्य में मिलती है। छायावादी काल्पनिक आदर्श के स्थान पर यथार्थ बोध को अपनाया है, किन्तु यह यथार्थ नग्न यथार्थ नहीं है। वस्तुतः माथुरजी विकसनशील कवि हैं। युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप इनकी कविता में कई मोड़ दिखाई देते हैं। रंग, रस और रोमान के कवि ने जहाँ अपनी आरम्भिक रचनाओं में वैयक्तिक प्रणय और विवाद को ही अधिकाँशतः चित्रित किया है वहाँ अपनी आगामी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ-बोध को भी ग्रहण किया है। यहाँ तक आते-आते उनके अाहे का विलय समाज में हो गया। 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान' आदि में समाज का आर्थिक परिवेश तथा मानवतावादी विचारों की प्रधानता मिलती है। प्रगतिवादी काव्य तथा गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में कुछ अन्तर पाए जाते हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. गिरिजाकुमार माथुर प्रगतिवादियों की भांति नास्तिक कवि नहीं है। आत्मा व परमात्मा की सत्ता का वे निषेध नहीं करते ? किन्तु यह भी सत्य है कि वे पारलौकिक जीवन को नहीं भौतिक जीवन को महत्त्व देते हैं। मानव-जीवन के उत्थान और प्रगति की ओर ध्यान देते है।

२. कृषक मजदूरों और विशेषकर मध्यवर्ग की दयनीय स्थिति की ओर कवि जागरूक है किन्तु सुधारने के लिए क्रान्ति का आह्वान करना कवि का उद्देश्य नहीं है। वह हँसिया-हथौड़ा को अपना चिन्ह तथा मार्क्सवादी देशों को अपना आदर्श बनाना नहीं चाहता।

३. कवि ने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों का तिरस्कार न करके उन्हें महत्त्वपूर्ण समझा है। राष्ट्र की उन महान् विभूतियों को सम्मानपूर्वक स्मरण किया है जिन्होंने अन्याय, अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करके राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान किया। 'राम', 'बुद्ध' आदि उन महापुरुषों को कवि ने भुलाया नहीं जिन्होंने समाज में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा की।

४. मानवतावादी विचारों का प्राधान्य माथुरजी की प्रधान विशेषता है। समाज में शोषण और पीड़ा की अभिव्यक्ति कवि ने वर्ग-वैषम्य द्वारा दिखाई है।

५. यथार्थ-बोध माथुरजी की एक अन्य विशेषता है किन्तु यथार्थ के नाम पर नग्नता और कुरूपता को ही चित्रित नहीं किया गया है। कवि ने भावुकता व आदर्श को न अपना कर यथार्थवादी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया है।

६. प्रगतिवादी सभी समस्याओं के मूल में अर्थ को मानते हैं। आर्थिक उन्नति को ही वे सब कुछ मानते हैं किन्तु माथुरजी आर्थिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक, आत्मिक व सांस्कृतिक उन्नति को भी उतना भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गिरिजाकुमार माथुर प्रगतिवादी नहीं, प्रगतिशील कवि हैं। प्रगतिवाद की अच्छाइयों को उन्होंने प्रसन्नता से ग्रहण किया है किन्तु उसकी बुराइयों से यथास्थान बचने का प्रयास किया है। प्रगतिवाद की समष्टिगत मान्यता, यथार्थ-बोध तथा सहज अभिव्यक्ति का कवि ने सहर्ष स्वागत किया है किन्तु अश्लीलता, प्रचारात्मकता तथा राजनीतिक दांवपेचों से काव्य को अलग रखा है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कवि ने मध्यवर्ग की समस्याओं, आशाओं और आकांक्षाओं का प्रभावशाली चित्रण किया है। इसके साथ-ही-साथ लोकजीवन की सुन्दर व भव्य झाँकियां भी कवि ने प्रस्तुत की हैं जो मध्यप्रदेश के ग्रामीण जीवन को पाठक के समक्ष साकार करती हैं। माथुरजी ने अपने काव्य की विशेषताओं को इस प्रकार व्यक्त किया है, 'कि उनमें मानवता, आशावादिता, भविष्य में विश्वास का स्वर ज्यादा उभर कर रंग-रोमान के समन्वय के साथ आया।'[1]

अतीत की पुण्य स्मृतियों और भविष्य में आस्था व विश्वास होने पर भी कवि ने वर्तमान जीवन को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। आज के मध्यवर्ग की स्थिति की ओर कवि विशेष जागरूक है, क्योंकि वह स्वयं उच्च-मध्यवर्ग से सम्बन्धित है। मध्यवर्गीय जीवन की कटुता, घुटन, संघर्ष व पीड़ा को कवि ने स्वयं भोगा है और उन्हें पूरी तिक्तता से काव्य में व्यक्त किया है। इस दृष्टि से 'मशीन का पुर्जा', 'क्रानिक मरीज', 'शाम की धूप', 'व्यक्तित्व का मध्यान्तर' तथा 'पहिए' आदि रचनाएँ महत्त्व-पूर्ण हैं। कवि के आरम्भिक काव्य-संग्रह 'मंजीर' में जहाँ रोमानी भावों से युक्त अनेक सुन्दर कविताएँ मिलती हैं वहीं सामाजिक यथार्थ से सम्बन्धित रचनाओं का भी अभाव नहीं है। 'मंजीर' के उत्तरार्द्ध में व्यक्तिगत यथार्थ की परिणति सामाजिक यथार्थ में होती है। कवि का 'स्व' वहाँ समाज से निरपेक्ष नहीं है। 'मंजीर' के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की तुलना करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि में एक प्रकार का 'परिवर्तन' आ रहा है जो उसकी संवेदना की परिधि को व्यापक बना रहा है। ललकार-भरे स्वरों में कवि कह उठता है कि ऐसी जवानी व्यर्थ है जो कठिनाइयों की आग से न खेले—

'जो न खेले आग से तो
नष्ट हो ऐसी जवानी।'[2]

१. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—माथुर, पृ० ९२
२. मंजीर—माथुर, पृ० ४७

देश में जब सर्वत्र क्रान्ति और आक्रोश का वातावरण है। मानव अनेक संकटों से आ घिरा है, हम पर तरह-तरह के अत्याचार हो रहे हैं ऐसे संक्रान्तिकालीन वातावरण में केवल अपने विषय में सोचना अथवा शान्त होकर बैठे रहना लज्जास्पद है। प्रगतिवादियों की भान्ति उत्तेजना-भरे स्वर में कवि कहता है कि रक्त का बदला रक्त से लेकर हम अपने अपमानों का प्रतिशोध लेंगे—

'बर्छियों की नोक से
अपमान निज पूरे करेंगे
रक्त लेकर रक्त के बदले
हृदय अपना भरेंगे ।'[१]

वह यौवन जो कल तक प्रेयसी के चरणों पर समर्पित था आज आग से खेलने के लिए उतावला है। कवि के कोमल प्राण आज की दूषित समाज-व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहते हैं। अतः मधु पीकर वह अपने-आपको विस्मृत करना नहीं चाहता वरन हलाहल का पान करके स्वयं भी स्वप्न से जाग गया है और समाज को भी जगाना चाहता है—

'पूर्ण यौवन से भरा
मैं हूँ चढ़ा बन अग्नि बादल
प्राण कल के मृदुल मेरे
नाश में हैं आज पागल
मत दिखाओ मधु मुझे
जब पी चुका हूँ मैं हलाहल ।'[२]

गिरिजाकुमार माथुर यद्यपि रोमानी कवि हैं किन्तु व्यक्तिगत प्रेम के साथ-साथ वह युगीन घटनाओं के प्रति भी पूर्णतः सजग हैं। 'अदन पर बमवर्षा' होती है और कवि विचार करता है कि अत्याचारी जब सुन्दर-सुन्दर नगर और ग्रामों को ध्वस्त करने, उन्हें खंडहर करने आएँगे तब आँखों में रहने वालों को क्या होगा—

'यदि आयेंगे अत्याचारी
सुन्दर-सुन्दर ग्राम नगर को
खंडहर औ वीरान बनाने
क्यों होगा इन आँखों में रहने वालों का ।'[३]

आज मानव मानव का संहारक बन गया है। उसका दिल पत्थर का बन गया है। मानव मानव के रक्त का प्यासा हो गया है। रक्तपिपासु मानव को समझते हुए

१. मंजीर—माथुर, पृ० ४७
२. वही, पृ० ४७
३. वही, पृ० ६८

कवि कहता है कि हे मानव ! तुममें दिल है, स्पंदन है। अभिनय आशाएँ तुम्हारी आँखों में स्वर्णिम भविष्य के स्वप्न हैं—

'यह रक्त-प्यास, यह रक्त-प्यास !
दीवाने ! तुम तो मानव हो
तुममें भी दिल है, स्पंदन है
तुम आशाओं से अभिनव हो।'[१]

आर्थिक व सामाजिक वैषम्य के कारण मानव-जीवन में केवल दुःख, दर्द, छटपटाहट व पीड़ा रह गई है। मानव की उच्च आकांक्षाएँ, चिर-संचित आशाएँ धूमिल होती जा रही हैं। उसका जीवन अधिकाधिक अभावमय हो रहा है—

'यह आहें, यह तड़पन, कराह
यह पीड़ा, सिसकन, जलन, प्यास
दु:ख, दर्द, छटपटाहट, पुकार
× × ×
यह घूम रही है चिर व्याकुल
उफ, गरम उसांसें जीवन की।'[२]

दलित व पीड़ित मजदूरों ने अपने कठोर परिश्रम से वैभव-सम्पन्न प्रासादों का निर्माण किया। किन्तु ऐसे महल मानवता के मन्दिर बनने के स्थान पर मानव के रक्त से रंजित हैं। उच्च व सम्पन्न व्यक्तियों की दृष्टि में दुर्बल मजदूरों का स्थान नगण्य है—

'निबलों की क्षणि हड्डियों पर
यह वैभव का प्रासाद खड़ा
मानव के रंग-महल में क्यों
मानव का रक्त-रंग बिखरा।'[३]

कवि प्रश्न करता है कि आज मानव का इतना पतन क्यों हो रहा है ? वह मानव से दानव क्यों बन रहा है ? अपने पैशाचिक कार्यों से संसार में तांडव-नृत्य क्यों कर रहा है ?

'बतला दो कैसे हुआ आह
मानव का इतना घोर पतन
रे ! नर पिशाच क्यों बन कर तू
करता जग में तांडव नर्तन।'[४]

१. मंजीर—माथुर, पृ० ८५
२. वही, पृ० ८४
३. वही, पृ० ९०
४. वही, पृ० ९५

कवि अपनी काव्यचेतना को स्पष्ट करते हुए कहता है कि उसने जहाँ रंग, रस व रोमानी गीतों की सृष्टि की है, प्रेम व सौन्दर्य के गीत गाए हैं वही सामाजिक विद्रोह व मानव पर होने वाले अत्याचारों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'युग वैतालिक' नामक कविता में माथुरजी ने स्पष्ट किया है कि कवि अपनी कला के माध्यम से जहाँ रूप, यौवन व प्यार की कहानी सुना सकता है वहीं क्रान्ति के भावों को भी वाणी प्रदान कर सकता है। वह समाज की वस्तुस्थिति को सामने लाकर समाज में उथल-पुथल मचा सकता है। कला के माध्यम से कवि सब कुछ कर सकता है—

> **क्रान्ति की अनगिन कथाएँ आज भी मैं गा रहा हूं**
> **मैं कला के मंत्र से क्या क्या न कर सकता बताओ**
> **ला चुका नग-फूल यदि अंगार भी अब ला रहा हूँ।'[१]**

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गिरिजाकुमार माथुर के आरम्भिक काव्य-संग्रह 'मंजीर' के पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध की रचनाओं में पर्याप्त अन्तर है। यहाँ (उत्तरार्द्ध में) कवि की रोमानी भावना क्रमशः क्षीण होती गयी है और समाजिक यथार्थ प्रबल। इन कविताओं में क्रान्ति व विद्रोह के स्वरों की प्रधानता है। मानव का रक्त चूसने वालों के—प्रति कड़े स्वरों में कवि कहता है कि आज मानव मानव का रक्त चूसने का प्रयास क्यों कर रहा है? मानव को ललकारते हुए वह कहता है कि वही जवानी श्रेष्ठ है जो रक्त का बदला रक्त से ले।

प्रगतिशील तत्त्वों की दृष्टि से 'नाश और निर्माण' तथा 'धूप के धान' श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। इनमें मध्यवर्गीय व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट किया गया है। आर्थिक वैषम्य के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं, संघर्षों, कुण्ठा व अवसाद को वाणी प्रदान की है। विश्वबंधुत्व तथा मानवतावादी विचारों की दृष्टि से 'धूप के धान' सर्वश्रेष्ठ काव्य-संग्रह है।

सामाजिक सन्दर्भ में यथार्थ बोध

गिरिजाकुमार माथुर की प्रगतिशील कविताओं में यथार्थ बोध व सामाजिक दृष्टिकोण की प्रधानता है। व्यक्ति को समाज के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा गया है। वर्तमान समाज की आर्थिक विषमताओं को कवि ने यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किया है, उन्हें कृत्रिम आवरणों में छिपाने का प्रयास नहीं किया है। समाज के शोषित व तिरस्कृत लोगों के प्रति कवि की पूर्ण सहानुभूति है, क्योंकि वे बहुसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। गाँवों की शस्यश्यामला भूमि, किसानों, मजदूरों और इन सबसे बढ़कर मध्यवर्गीय क्लर्क के जीवन के अभावों व विषमताओं का चित्रण कवि के यथार्थ बोध का ही परिचायक है। 'नाश और निर्माण' की 'मशीन का पुर्जा' नामक कविता इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस कविता में एक ओर उच्च वैभव का चित्रण

१. मंजीर—माथुर, पृ० ६६,

है तो दूसरी ओर अल्प आमदनी वाले 'क्लर्क' की दिनचर्या का चित्रण है जो सरदी और गरमी की परवाह किए बिना सुबह यन्त्रवत् उठाता है, फटे कपड़ों से कड़कड़ी सरदी का सामना करता हुआ, बगल में मोटी फाइलें दबाए सड़क पर बढ़ता जाता है। जिन्दगी की मिठास उसके लिए समाप्त हो गई है। जीवन भावहीन मशीन बन गया है—

> 'शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं,
> ठिठुरन से सूरज की गरमी जमी हुई है,
> सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है,
> पर वह मजबूरी से कंपता उठ आया है
> × × ×
> रफू किया उसका वह स्वेटर
> तीन सर्दियाँ देख चुका है
> × × ×
> उसका जीवन जीवनहीन मशीन बन गया।
> जाड़ों के दिन की मिठास
> अब जहर हुई है।'[1]

'क्लर्क' की हड़बड़ाती जिन्दगी का एक चित्र उदयशंकर भट्ट ने इस रूप में प्रस्तुत किया है—

> 'नौ बजते-बजते चल देता
> आधा पौना पेट भरा यह
> प्राण समेट
> × × ×
> नंगे सिर
> गांधी टोपी या पगड़ी बाँधे
> × × ×
> लपझप लपझप
> धूल उड़ाता
> यह सरकारी क्लर्क नौ बजे।'[2]

वैषम्य द्वारा कवि यह दिखाना चाहता है कि एक ओर मोटरों में बैठे हुए सुखी उच्चवर्ग के व्यक्ति हैं और दूसरी ओर पथ के कुचले फूल की भाँति क्लर्क की अर्थहीन जिन्दगी है जिसमें प्यार के उच्च आदर्श समाप्त हो गए हैं। आर्थिक दरिद्रता

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ९२, ९३
२. यथार्थ और कल्पना (दफ्तर का बाबू)—उदयशंकर भट्ट।

ने उसकी आत्मा की आँखों को भी स्वार्थमय बना दिया है। अब उसके मन में विचारों की उथल-पुथल नहीं है—

'उसके मन में अब कुछ भाव विचार नहीं है—
प्यार मिट चुका
और सभी आदर्शों का बलिदान हुआ है,
अंधी कर दी गई आत्मा की भी आँखे
उसका भी तो फूल राह में कुचल गया है।'[१]

जीवन के विविध संघर्षों से उसने जाना कि विचारों के संघर्ष से बाह्य संघर्ष अधिक महत्त्वपूर्ण व प्रभावशाली है। जीवन के कटु अनुभवों से कवि ने यह अनुभव किया कि आज युग में पैसा प्रधान है। जहाँ अपार वैभव एवं ऐश्वर्य है वहीं जीवन के सुख-साधन होते हैं तथा प्यार फलता-फूलता है। तरह-तरह के उदाहरणों द्वारा कवि अमीरी और गरीबी के वैषम्य को दिखाना चाहता है। उसका उद्देश्य पूँजीपतियों के विरुद्ध क्रान्ति करना नहीं है वरन् वह पाठक-वर्ग को इस ओर सजग अवश्य करना चाहता है—

बंगला, मोटर, कौच, रेडियो,
रेशम की वह चमचम साड़ी,
बेफिक्री से जिसका छोर लहरता धीरे,
चाँदी की कीमत पर होती सभी कलाएँ,
प्यार और गीत भी पलते।'[२]

आर्थिक वैषम्य का एक उदाहरण। इसमें कवि अपनी लेखनी की कुशलता से यह दिखाना चाहता है कि उच्चवर्ग (पूँजीपति) के लोगों के पास अपार खाद्य-सामग्री है जिन्हें प्रयोग में लाने वालों की कमी है और दूसरी ओर फुटपाथों पर लोग भूख से तड़प-तड़प कर मर रहे हैं। उनके पास दो वक्त खाने के लिये भी नहीं है—

'उस खिड़की के रेशमी पर्दे में से आती
ड्रेस-बूट की गंध साड़ियों की मृदु सरसर
चम्मच-प्लेटों की हल्की मीठी टनकारें
× × ×
और मेल पर का वह दैनिक
जिसकी सुर्खी लौ सी उठकर
अविरल दुहराती जाती है
कलकत्ते के फुटपाथों पर

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ६४
२. वही, पृ० ८७

दो सौ भूखें और मर गए।'[1]

मध्यवर्गीय सरकारी कर्मचारियों के अभावमय जीवन का एक अन्य चित्र कवि ने 'शाम की धूप' कविता में उतारा है। कम आमदनी वाले लोगों की आर्थिक स्थिति इतनी जर्जर है कि जब वे अपने जीवन की भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में ही असमर्थ रहते हैं तब जीवन में सुख-साधनों की बात तो निरर्थक प्रतीत होती है। जीवन में पग-पग पर इन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मध्यवर्गीय लोगों का जीवन मशीन की भाँति निर्जीव बन गया है जिसमें अभावों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सारा दिन दफ्तर में काम करने के उपरान्त शाम को जब ये वापस घर लौटते हैं तब भी फाइलें इनका पीछा नहीं छोड़तीं। साइकिलों के कैरियर तथा टोकरियों में मौसमी फल-फूल तथा अन्य चीजों के स्थान पर कभी न खत्म होने वाली फाइलों का ढेर लगा रहता है—

'कैरियर, टोकरी हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बंधे
कुछ में हैं फाइलें हर छिन भूखी
जो न कभी खत्म हुईं दफ्तर में
है जरा कम ही टोकरी ऐसी
जिनमें आते हैं मौसमी फल-फूल।'[2]

जीवन इतना अभावमय तथा नाना क्लेशों से पूर्ण हो गया है कि दूध, घी आदि स्वास्थ्यवर्धक वस्तुओं की बात तो दूर चीनी-दाल-नमक आदि आवश्यक वस्तुएँ भी स्वप्नवत हो गई हैं—

'दूध घी का यहां पै चर्चा क्या
जब न चीनी, न गुड़, न दाल-नमक
हो गया स्वप्न किरासिन का तेल
इनका अब ख्याल है इतिहास की बात।'[3]

मध्यवर्गीय परिवारिक जीवन के अभावों को शकुन्त माथुर ने भी अपनी रचनाओं में यथास्थान व्यक्त किया है। अभावग्रस्त जीवन का एक चित्र—

'मेरे ही तीन बच्चे
रक्त के टुकड़े
निचोड़-रहे कपड़ा-सा मुझको
प्रतिपल दिन गिनता है
साँस छोड़ गहरी।'[4]

---

१. नाश और निर्माण— माथुर, पृ० ११६
२. धूप के धान—माथुर, पृ० २६
३. वही, पृ० ३१
४. कवितायें संकलन (१६५४)—शकुन्त माथुर—'मध्यवर्ग' शीर्षक कविता।

'नाश और निर्माण' की 'टाइफाइड' नामक कविता में चित्रित क्लेश और मानसिक तनाव मध्यवर्ग की ही हैं। बाह्य और आन्तरिक तनाव के कारण इस वर्ग के लोगों का जीवन 'क्रानिक मरीज' की तरह हो गया है जो लाख कोशिश करने पर भी जहाँ है वहाँ से आगे नहीं बढ़ पाता। अपने सीमित संसार में बार-बार हाथ-पैर मारने पर भी उसके हाथ सफलता के स्थान पर ऊब, बेचैनी, आशंका, तथा अनास्था ही हाथ लगती है। फलस्वरूप यह विश्वासहीन तथा बाह्यवादी बन गया है।

'अब, घबराहट
बेचैनी, बोरियत
× × ×
अपने में लीन
किन्तु आत्मविश्वासहीन
तबियत है काँटे पर
दोष सभी रखता है
किस्मत के माथे पर।'[१]

इस वर्ग के व्यक्ति अपने से अच्छों को देखकर तरसते हैं। अपने भाग्य तथा कर्मों को कोसते हैं। क्षणिक स्वार्थसिद्धि के लिए तरह-तरह के बहाने बनाकर अपने ईमान तक को बेचने के लिए तत्पर रहते हैं—

'अपने से अच्छों को देखकर तरसता है
अपने को, औरों को
किस्मत को, कर्मों को
कोसता कलपता है
तुरत मजे के लिए
× × ×
अपने ईमान का
दिवाला निकालता।'[२]

आधुनिक युग की यान्त्रिक सभ्यता ने मध्यवर्गीय व्यक्तियों को संवेदन हीन बना दिया है। व्यक्ति लोहे के दिल-दिमाग तथा इस्पात के हाथों के लिए समय के बन्धनों में बंधा हुआ है। उसका जीवन घड़ी की सुइयों से बंधा हुआ है जिसमें आत्मसंवेगों का पूर्णतः अभाव है। कृत्रिमता के मुलम्मे को चढ़ाए, ये चलते-फिरते पुतले दिखाई देते हैं—

'लोहे के दिल-दिमाग हाथ इस्पात के
निरवधि समय को जो अंकों में बाँधते

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० २२, २३
२. वही, पृ० २३

चलते हैं तार खिंचे मध्यवर्ग के पुतले
रोल्ड गोल्ड का कल्चर चमकते मुलम्मे-से ।'[1]

मध्यवर्गीय व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व, घुटन, पीड़ा तथा अवसाद को चित्रित करने के पश्चात् कवि यह स्पष्ट करता है कि समाज निम्न तथा मध्यवर्ग के जीवन को अभावग्रस्त बनाने का उत्तरदायित्व पूंजीवादी समाज पर है। अनेक स्थलों पर कवि ने पूँजीपतियों की शानुशौकत तथा मध्यवर्ग की दुख, पीड़ा व अभावों से भरी जिन्दगी की तुलना की है। ऊँचे बंगलों, मोटरों में घूमने वाले व्यक्तियों के शोषण के कारण ही लाखों व्यक्ति अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ हैं। उनके पसीने की कमाई पर उनका नहीं पूंजीपतियों का अधिकार है। क्लर्क, मजदूर, किसान कठिन-से-कठिन परिश्रम करने पर भी दो वक्त कठिनाई से भोजन कर पाते हैं। इसका कारण यही है कि शक्तिसम्पन्न लोग उनका शोषण कर रहे हैं। इस शोषण से हमारा समाज ही नहीं राष्ट्र भी निष्क्रिय व कमजोर बन जाता है—

'शोषण से मृत है समाज
कमजोर हमारा घर है ।'[2]

आर्थिक वैषम्य के फलस्वरूप मानव स्वार्थी और लालची हो गया है। मानव मानव में भेद की दीवार खड़ी करना चाहता है। धनवान की दृष्टि में गरीब का कोई मूल्य, कोई महत्व नहीं। लगातार गरीबी, भुखमरी व बीमारी सहते-सहते उसका जीवन इतना कठोर हो गया है कि उसे अपने मान-अपमान की तनिक भी चिन्ता नहीं—

'भूख, बीमारी, गरीबी, गंदगी
कौड़ियों के मोल बिकती जिन्दगी
आदमी का मिट गया सम्मान है
मनुजता का अब न गरिमा गान है ।'[3]

वर्ग-वैषम्य की ओर लक्ष्य करते हुए कवि कहता है कि आज के मानव का जीवन त्रिशंकु के समान हो गया है। सामाजिक विरमता पग-पग पर उसका मार्ग अवरुद्ध कर रही है। समाज में एक ओर उच्च वर्ग के लोग वैभवसम्पन्न और अपार सम्पत्ति के स्वामी हैं दूसरी ओर निम्नवर्ग तथा मध्यवर्ग को दिन-भर कड़ा संघर्ष करने पर भी चांदी के कुछ सिक्कों के लिए अपनी आत्मा बेचैनी पड़ती है, अपने आदर्शों का बलिदान करना पड़ता है। अमीरी और गरीबी की विषम चक्की में आज का मानव बुरी तरह पिस रहा है। उसकी कठिनाइयों का कोई अन्त नहीं है। उसका जीवन निरुद्देश्य तथा निस्सार है और इसका कारण है हमारी विषम अर्थव्यवस्था—

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ७२
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ४०
३. वही, पृ० ९२

'दो दुनियाँ के विषम शून्य में
बना त्रिशंकु आज का जीवन
× × ×
इनकी मंजिल है दिन भर का संघर्ष,
और चाँदी के टुकड़े,
या शरीर-आत्मा की बिक्री।'[१]

माथुरजी ने जहाँ अभावग्रस्त जीवन का चित्रण किया है वहीं यह आशा भी व्यक्त की है कि जीवन की विषम परिस्थिति को मानव-संघर्ष द्वारा अपने अनुकूल बना सकता है। अपने कठोर परिश्रम द्वारा जीवन को फिर सुखी और समृद्ध बना सकता है। वस्तुतः मानव-जीवन संघर्ष का जीवन है। अपने प्रयत्नों के द्वारा मनुष्य कमजोर तथा विषम अर्थव्यवस्था को भी अपने अनुकूल बना सकता है, क्योंकि इस भौतिक संसार में प्रतियोगिता की प्रधानता है। प्रतियोगिता में कमजोर नष्ट हो जाते हैं और साहसी तथा संघर्षरत विजयी होते हैं। संघर्ष को कवि ने अणुबम के रूप में माना है—

ज्वालामुखी के द्वीप-सा
संघर्ष का यह लोक है
हिलती हुई धरती यहाँ
हिलते हुए आधार हैं
× × ×
संघर्ष का अणुबम यहां जांचा गया।'[२]

कवि कोरे आदर्शों में नहीं भुजबल में विश्वास रखता है उसका दृढ़ निश्चय है कि वही मनुष्य अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है जो प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझता हुआ, जीवन के दुखों और कठिनाइयों से लड़ता हुआ अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है। जीवन का वास्तविक सुख वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जिसने कटुता से खुलकर संघर्ष किया हो। यहां कवि का उद्देश्य मार्क्सवाद पर आधारित वर्ग-संघर्ष को प्रेरित करना नहीं है। वह मानव को क्रियाशील बनाना चाहते हैं। भौतिक जीवन की विपरीत परिस्थितियों को शौर्य द्वारा मानव के अनुकूल बनाने में विश्वास रखते हैं—

'और क्योंकि हमने भुजबल से
अपना मार्ग प्रशस्त बनाया
दुखों से कर युद्ध

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १२७
२. धूप के धान--माथुर, पृ० ५१, ५२

परिस्थितियों से लड़कर
और जूझकर भारी से भारी अंधड़ से

किन्तु जिन्दगी की मिठास का रस लेने को
हमने कटुता से खुलकर संघर्ष किया है।'[1]

गिरिजाकुमार माथुर ने आर्थिक समता लाने के लिए, समाज को सुखी, सम्पन्न व वैभवशाली बनाने के लिए क्रान्ति व विध्वंस का आह्वान नहीं किया। उन्होंने निर्माण-पक्ष को अधिक महत्वपूर्ण समझा है। उनका विश्वास है कि शोषण, गरीबी व भुखमरी का नाश नारेबाजी तथा रक्तक्रान्ति से नहीं देश के नवनिर्माण से हो सकता है। देश का नवनिर्माण मानव के कठोर परिश्रम से ही सम्भव है। मानव अपने दृढ़संकल्प तथा कठोर परिश्रम द्वारा धरती को फिर से हरा-भरा बना सकता है। शस्यश्यामला भारतभूमि फिर से सोना उगल सकती है—आज के विध्वंसक तत्वों में से ही कवि नवयुग के निर्माण का सन्देश देता है,—

'फिर से धरती को फुल्ल ओक बनाओ।
फसलों की पकी गंध बनकर तुम छाओ
निर्माण बीज युग के पतझर से लेकर
तुम नवयुग का रंगोत्सव नया रचाओ।'[2]

कवि कहता है कि किसानों व मजदूरों की लगन तथा मेहनत से नए समाज का उदय होगा। कवि कामना करता है—देश में अच्छी फसल हो, कारखानों में अधिक उत्पादन हो जिससे घर, ग्राम ऋद्धि-सिद्धि से भर जाएँगे, नगर वैभव-सम्पन्न हो जाएँगे। धरती सोना उगलेगी। जब देश में अधिक अन्न उत्पन्न हो जाएँगे। धरती सोना उगलेगी। तब प्रत्येक भारतवासी का जीवन सुखी होगा, देश से दरिद्रता का नाश होगा। धरती के श्री वैभव को देखकर स्वर्ग भी तरसेगा—

'धूप उगे, फसलें फूले
अक्षय सुख का भंडार हो
× × ×
ऋद्धि सिद्धि से भरे ग्राम
नगरों में श्री सुख बिखरे
मेरी इस सांवर धरती पर
सोना चांदी बरसे।'[3]

१. धूप के धान—माथुर, पृ० २६
२. वही, पृ० ८९
३. वही, पृ० ४३

कवि का विश्वास है कि मनुष्य का वास्तविक सुख उसकी मेहनत में है। अपने खून-पसीने से ही वह अपना रास्ता बना सकता है। नयी पीढ़ी आज के दुख, दर्द व संघर्ष की मजबूत छाती पर ही संवर सकेगी—

'असल सुख के लिए मेहनत
पसीने से बनेगा पथ
× × ×
इसी से जिन्दगी को तिक्त
कड़वी, कटीली अनुभूति
मन में और पचने दो
हमारे दर्द, दुख, संघर्ष की
मजबूत छाती पर
नई पीढ़ी संवरने दो।'[१]

माथुरजी की रचनाओं में सर्वत्र आस्था व विश्वास के स्वरों की प्रधानता है। अभावग्रस्त जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ संघर्ष को कवि ने विशेष महत्व दिया है। कठोर परिश्रम को महत्व देते हुए कवि ने आशा व्यक्त की है कि संघर्ष की आग को तब तक नहीं बुझने देंगे जब तक संघर्ष का आलोक घर-घर में न फैल जाए, मिट्टी सोना उगलने लगे—

'उस समय तक आग को बुझने न देंगे
आयगा जब तक न मिट्टी से उजाला
सर्दियों की धूप का मृदु ऊन
फैलेगा न घर घर।'[२]

गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में जहाँ आज के मध्यवर्गीय समाज की कुण्ठा, पीड़ा तथा अवसाद का चित्रण हुआ है वहीं सुखद भविष्य की आकांक्षा का अंकन भी हुआ है। 'शिलापंख चमकीले' की 'खत' नामक कविता में मध्यवर्ग की आशाओं तथा आकाँक्षाओं का चित्रांकन किया है। मध्यवर्गीय व्यक्ति यह चाहता है कि घर में जब भी खत आए हंसी-खुशी की किरन लाए। उसके द्वारा दुखद समाचार न आए, क्योंकि आज जीवन में पहले ही अनेक विषमताएँ व विफलताएँ विद्यमान हैं। आज के कुत्सित जीवन की झलक खत में न हो तो श्रेष्ठ है। वस्तुतः खत को स्वस्थ जीवन तथा नवीन आलोक का नया पृष्ठ बनकर आना चाहिए—

'खत घरु संवाददाता है
हर घर में निजी सुख-दुख कहानी

---

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ११६, १२०
२. वही, पृ० ५८

लिए आता है
मगर मन चाहता है
वह जभी आए
हंसी लाए
खुशी लाए
चुटकी भर किरन लाये
न दुख की साक वह लाए
× × ×
खत नये आलोक का पन्ना बने ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि की प्रगतिशील रचनाओं में सामाजिकता का विशेष आग्रह है। यहाँ इनकी दृष्टि व्यक्तिगत दुख-सुख की ओर न जाकर सम्पूर्ण समाज को अपनी दृष्टि-परिधि में समाहित किए है। युगीन विषमताओं का कवि ने यथार्थ दृष्टि से चित्रण किया है। आज के अभावग्रस्त मानव के प्रति कवि की पूर्ण सहानुभूति है। यही कारण है कि स्थान-स्थान पर कवि ने उच्चवर्ग और मध्यवर्ग तथा निम्नवर्गीय व्यक्तियों के जीवन की तुलना की है और तुलना द्वारा वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उच्चवर्ग के शोषण द्वारा ही आज सर्वत्र गरीबी और भुखमरी का बोलबाला है। इसीलिए कवि ने मानव को संघर्ष के लिए, समष्टि के कल्याण के लिए प्रेरित किया है (यहाँ कवि का आशय मार्क्सवादी वर्ग-संघर्ष से नहीं है) अपने कठोर परिश्रम द्वारा मानव उन्नति के मार्ग की ओर जा सकेगा। कवि सुखद भविष्य की कल्पना करता हुआ कहता है कि खेतों में अधिक अन्न उत्पन्न होगा, कारखानों में अधिकाधिक उत्पादन होगा तब मानव तथा राष्ट्र दोनों ही उन्नति कर सकेंगे। अतः कवि आज की विषम परिस्थिति को देखकर दुखी नहीं होता वरन् भविष्य में भी पूर्ण आस्था व विश्वास रखता है। माथुरजी ने मानव को, उसके श्रम तथा कार्यक्षमता को महत्त्व दिया है।

विश्वबन्धुत्व और मानवतावाद

माथुरजी की प्रगतिशील कविता की दूसरी प्रधान विशेषता है—विश्वबन्धुत्व तथा मानवतावाद। वर्तमान युग में विज्ञान के नवीन आविष्कारों के फलस्वरूप संसार के विभिन्न राष्ट्र एक-दूसरे के निकट आ गए हैं। उनमें परस्पर दूरी बहुत कम रह गई है। यही कारण है कि कोई भी राष्ट्र आज अकेले रहकर अपना समुचित विकास नहीं कर सकता। आज की किसी भी समस्या (चाहे वह राजनीतिक स्वातन्त्र्य से सम्बन्धित हो अथवा युद्ध-सम्बन्धी) का समाधान कोई राष्ट्र अकेले नहीं कर सकता। पारस्परिक सहयोग के द्वारा ही अनेक सूक्ष्म समस्याओं का समाधान हो सकता है।

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० २८, २९

साधारण व्यक्ति की अपेक्षा आज का बुद्धिजीवी-वर्ग इस ओर विशेष सतर्क है। उसकी विचार-दृष्टि का दायरा काफी विस्तृत हो गया है। सर्जक कलाकार की दृष्टि किसी एक राष्ट्र तक सीमित न रहकर विश्वजनीन समस्याओं से प्रभावित रहती है। उसके काव्य में संकीर्ण राष्ट्रीयता के स्थान पर विश्वबन्धुत्व व विश्वकल्याण की भावना निहित रहती है, मानव-मात्र के त्राण का स्वर प्रमुख रहता है।

गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना के स्वरों की भी प्रधानता है। इस दृष्टि से 'एशिया का जागरण' नामक कविता बहुत महत्त्वपूर्ण है। एशिया के विभिन्न राष्ट्र जो पश्चिमी साम्राज्यवाद के अधीन थे, स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए संघर्षरत हैं। वे पश्चिमी उपनिवेशवाद के विरुद्ध प्रजातान्त्रिक स्वरों को मुखरित कर रहे हैं। समस्त एशिया राजनीतिक चेतना के प्रवाह से आप्लावित है। साम्राज्यवाद के शोषण, पीड़ा व अनाचार ने मानव की आत्मा का दमन किया है। उनके अत्याचारों ने मानव की आत्मा को कुचल दिया है। मानव-देह पराधीनता की जंजीरों में बन्ध गई है, उत्तरोत्तर विकास के सभी मार्ग अवरुद्ध हो गए है—

'मेरी मानवता पर रक्खा
गिरि-सा सत्ता का सिंहासन
× × ×
मेरी छाती पर रख हुआ
साम्राज्यवाद का रक्त कलश
× × ×
तेरी जंजीरों में बन्धकर
कंकाल हुई मेरी काया।'[१]

सदियों से धुँधला जंबुद्वीप आज अंगार बनकर विश्व के समक्ष आया है। चीन, भारत, ब्रह्मा, फिलिस्तीन आदि सभी छोटे-बड़े देश जिनकी स्वतन्त्रता की पवित्र भावना मर चुकी थी, पुनः नवीन जीवन की मशाल लेकर आगे बढ़े हैं—

'अंगार बन गया आदि पूर्व
सदियों का धुँधला जंबुद्वीप
× × ×
ये परम पुरातन महादेश
आये मशाल लेकर नवीन
जब, चीन, मलय, नवहिन्दचीन
ब्रह्मा, भारत दृढ़ फिलिस्तीन।'[२]

१. धूप के धान—माथुर, पृ० १०
२. वही, पृ० ८

पश्चिमी साम्राज्यवाद ने अपने कुकृत्यों से एशिया की सभ्यता व संस्कृति को मिटाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु एशिया के प्रत्येक घर, नगर तथा ग्राम में संघर्ष की लहर इतनी तीव्रगामी थी कि पराधीन राष्ट्रों में पुनः अपनी प्राचीन संस्कृतियों का मान जगा। अपने आदर्श राजाओं तथा बुद्ध, ईसा आदि महापुरुषों के जीवन से नवीन प्रेरणा लेकर एशिया के प्रत्येक जन के मन में क्रान्ति की भावना हिलोरें लेने लगी—

'मेरी गुलाब तलवारों का
है सामूहिक संकल्प जगा
× × ×
मेरे अन्तर में मान जगा
अपनी विराट् संस्कृतियों का
जागी विभूति सम्राटों की
तप जगा कर्मठ यतियों का।'[१]

समय के साथ-साथ हताश एशियावासियों के मन में पुनः आशा का संचार हुआ। स्वतन्त्रता के लिए सामूहिक संकल्प किया गया। सदियों से सोये हुए एशिया में फिर से मुक्ति की लहर दौड़ गई। एशिया का कण-कण नवीन स्फूर्ति से संचालित होकर आगे बढ़ा—

'मुड़ गये समय के चपल चरण
आया कृतान्त बन मुक्ति काल
मिट्टी का हर कन सुलग उठा
जल उठी एशिया की मशाल।'[२]

अन्तर्राष्ट्रीय जनजागरण से चीन से लेकर पाताल तक का सारा भूगोल एक संस्कृति की डोर में बन्ध गया। पूर्वी और पश्चिमी राष्ट्रों के बीच की द्वेष-भावना सहयोग और शान्ति में परिवर्तित हो गई है—

'चीन से पाताल तक भूगोल सारा
एक संस्कृति डोर में है बांध डाला।'[३]

माथुरजी ने अन्तर्राष्ट्रीय जनजागरण के साथ-ही-साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना को जगाने का प्रयास भी किया है। विदेशी शासन के अत्याचारों और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने वालों को उत्साहित किया है। वह अपनी लेखनी के द्वारा प्रत्येक भारतीय के मन में उस जोश को भरना चाहते हैं जिससे वे अत्याचारी के सम्मुख कभी न झुकें। 'बरफ का चिराग' नामक कविता प्रत्येक भारतीय के मन में संघर्ष की भावना को प्रोत्साहित करती है, दृढ़ रहने की शक्ति प्रदान करती है—

१. धूप के धान—माथुर, पृ० १६
२. वही, पृ० १६
३. वही, पृ० २

'बनकर शमशीर उठी जनता
बजता परबत का नक्कारा
नदियाँ बिजली बन उतर पड़ीं
हो गया लाल ध्रुव का तारा
धरती के यह जन—फूल उठे बनकर मशाल
हिम के सफेद दीपक की लौ अब हुई लाल।'[१]

इसी प्रकार राष्ट्रीय भावना पर लिखी हुई कवि की एक अन्य कविता '१५ अगस्त' है। इस कविता में स्वतन्त्रता के पश्चात् की स्वच्छन्दता व विदेशी शासन से मुक्ति का उल्लास चित्रित किया है। नव उल्लास के साथ-साथ कवि बार-बार सावधान रहने का भी संकेत करता है, क्योंकि विगत दुःखों की काली घटाएँ अभी पूर्णतः समाप्त नहीं हुई हैं—

'विषम श्रृंखलाएँ टूटी हैं
खुली समस्त दिशाएँ
आज प्रभंजन बनकर चलती
युग बंदिनी हवाएँ
प्रश्नचिन्ह बन खड़ी हो गई
यह सिमटी सीमाएँ
आज पुराने सिंहासन की
टूट रही प्रतिमाएँ
उठता है तूफान, इन्दु तुम
दीप्तिमान रहना
पहरुए, सावधान रहना।'[२]

कवि ने यथास्थान देश के उन वीरों के प्रति भी श्रद्धांजलि अर्पित की है जिन्होंने राष्ट्र तथा मानवता की उन्नति में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। उनके वीरोचित कार्यों का गौरवगान प्रशस्ति-रूप में किया गया है किन्तु ये प्रशस्तियाँ पारम्परिक प्रशस्तिगान से सर्वथा भिन्न हैं। इनमें नवयुग के निर्माण का स्वर प्रमुख है। इस दृष्टि से 'धूप के धान' की 'सायंकाल' और 'चरित्र की केसर' कविताएँ प्रमुख हैं। 'सायंकाल' कविता गाँधीजी के निधन पर लिखी गई है और 'चरित्र केसर' गाँधी-दिवस पर लिखी गई है। युगपुरुष के सुकृत्यों का गौरवगान करते हुए कवि कहता है कि धरती सदियों से पाप की जंजीरों में कसी हुई थी, रक्तपिपासु मानव के अत्याचारों से बुद्ध, ईसा आदि महापुरुष भी नहीं बच पाए। उन्हें भी नतशिर होकर अत्याचारों

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ३६, ४०
२. वही, पृ० ३६, ४०

को सहना पड़ा। किन्तु गाँधीजी ने अपनी आत्मा के तेज से, अपने हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त द्वारा धरती के माथे पर लगी रक्त-लकीर को पोंछा। उन्होंने मानव को हिंसा का नहीं अहिंसा का पाठ पढ़ाया, वैर-वैमनस्य के स्थान पर सहयोग और भाई-चारे की भावना को प्रोत्साहन दिया—

'रुग्ण धरा पर जमी हुई थी
सदियां बन प्राचीर
मानवता पर कसी युगों से
पापों की जंजीर
ईसा, बुद्ध खड़े नतशिर
थी खिचीं शक्ति शमशीर
तुमने धरती के माथे से
पोंछी रक्त लकीर।'[1]

गाँधीजी ने तप में रची हुई अपनी हड्डियों से नवयुग के निर्माण का वज्र तैयार किया जिससे मानव-मन से नृशंसता व पशुता समाप्तप्रायः हो गई है। उसकी प्रवृत्ति नाश की अपेक्षा निर्माण की ओर लग गई है। उन्होंने पशुता के स्थान पर मानवता की प्रतिष्ठा की। परस्पर-घृणा और विद्वेष के स्थान पर उन श्रेष्ठ भावों के बीज बोये जिनसे इंसान स्वयं ईश्वर बन सकता है, एक श्रेष्ठ मानव बन सकता है—

'तू बोये जो भी भाव बीज
वे सदियों तक उगते जाएँ
दुःख के दानव ग्रह बुझें सकल
सामाजिक ज्वाला रास बने
इंसान बने खुद ही ईश्वर
मानवता उजला पास बने।'[2]

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य का मूल स्वर मानतावादी है। उन्होंने अपने काव्य में मानव को उसकी सम्पूर्ण दुर्बलताओं व सबलताओं के साथ प्रस्तुत किया है। इनके काव्य में मानवमात्र के सर्वांगीण विकास की आकाँक्षा का चित्रण हुआ है। समाज के दलितों, पीड़ितों के प्रति कवि ने सच्ची सहानुभूति व्यक्त की है और शोषकों के नाश की कामना की है। मानव पर होने वाले अत्याचारों तथा युद्धों में होने वाले नर-संहार का कवि ने जहाँ विरोध किया है वहीं चारों ओर फैले हुए अन्धकार में मानव के नूतन विकास की आस्था भी व्यक्त की है। वर्षों के अत्याचारों को सहते रहने पर भी कवि का विश्वास है कि भविष्य में ऐसे शुभ दिन भी आएँगे जब समाज के दुःख-दर्द सब समाप्त हो जाएँगे और मानव के विकास का पथ प्रशस्त होगा।

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ४४, ४५
२. वही, पृ० ११५

मानव के विकासपथ को अवरुद्ध करने वाली साम्राज्यवादी व्यवस्था का कवि ने शक्तिभर विरोध किया है तथा मानव-मानव के मध्य सहयोग-भावना, विश्व-बंधुत्व की भावना का प्रबल समर्थन किया है। कवि ने उस मानवता का सहर्ष अभिनन्दन किया है जो सदियों के तिमिर को पारकर, खून-भरे चंगेजी न्यायों के घेरे से निकलकर नए विकास के लिए अवतरित हो रही है—

आदम का पुत्र बहुत
भटका अंधेरों में
चंगेजी न्यायों के
खून भरे घेरों में
किन्तु धरा मृत्युंजय
स्वर्ग नया पा गई
सदियों के तिमिर पार
मानवता आ गई।[1]

'धूप के धान' की 'भोर एक लैंडस्केप' नामक कविता में प्रातःकालीन दृश्य-छवि के माध्यम से संक्रान्तिकालीन अनास्था, अंधकार और निराशा की समाप्ति तथा आस्था, उल्लास और जनजागरण की सूचना दी है। ऐसे स्थलों पर प्रकृति भी सामाजिक कल्याण की भावना से ओतप्रोत दृष्टिगत होती है। प्रकृति के माध्यम से कवि ने मानव के नए विकास की आस्था व्यक्त की है—

'तामस के शासन का प्रतीक
बुझता है वह अन्तिम प्रदीप
अन्तिम तारा
तम गढ़ के ढहते भारी कोट कंगूरों से
यह प्रथम प्रदीप निमिष है नये उजेले का
जीवन के नये जागरण का
अब युग की अंधियारी रजनी मिटने को है
जनरवि का अग्र प्रकाश चरण
अंकित हो रहा धरा के मैले आँचल पर
जिसमें मानवता छिपी धूप बन सोती है।'[2]

कवि का विश्वास है कि रक्त स्पंजी सभ्यता के खण्डहरों के स्थान पर अब मानवता तथा बंधुत्व के नए भवनों का निर्माण होगा। दुःख, करुणा, अवसाद तथा परस्पर-वैमनस्य के स्थान पर सुख और शान्ति का साम्राज्य होगा। मानव मानव का शोषण न करके परस्पर-प्रेम और सौदाई से रहेगा।

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ७
२. वही, पृ० ३

'उस रक्त-स्पंजी घोर सभ्यता के जलबुझे खण्डहरों से
अब नए भवन उठते हैं जिनमें
सुख की चन्दन गंध उड़े ।'[१]

नवीन वैज्ञानिक सभ्यता के निरन्तर विकास को कवि मानव की अद्‌भुत शक्ति का प्रतीक मानते हैं। आज का मानव प्रस्तर-युग के मानव की भाँति अधिकार-हीन होकर, कातर नेत्रों से, गुलामों की भाँति दैवी सम्राटों के सिंहासन के नीचे हाथ बाँधे नहीं खड़ा है। अनेकों वर्षों के संघर्ष से वह नीरो, चंगेजों, तैमूरों के दानवी अत्याचारों के घेरे से बाहर निकल आया है। यह मानव की निरन्तर प्रगतिशीलता एवं साहस का ही परिणाम है—

'अधिकारहीन धरती का पुत्र निरीह नयन
कर बाँधे, अपलक दृष्टि, खड़ा जो पैरों में
उन दैवी सम्राटों के सिंहासन नीचे
फिर दिखते हैं वे दुर्ग, बुर्ज, गोलार्ध भीम
अत्याचारों के लौह कवच
सीजर की असि-गुंजों से ले क्रूसेडों तक
नीरो, चंगेजों, तैमूरों के अट्टहास ।'[२]

मानव की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए कवि ने उसकी बांहों को शक्ति का प्रतीक माना है। जिसके द्वारा वह सामाजिक ढाँचे को अपनी इच्छानुसार गढ़ सकता है, अपने स्वप्नों को साकार कर सकता है, कठोर परिश्रम से आकाश के स्वर्ग को धरती पर उतार सकता है—

'ये शक्तिवान मेहनत की बाँहों के प्रतीक
उन रूखे भारी हाथों के गतिमान चित्र
बढ़ते जाते हैं जो सामाजिक सूरत को
जीवन की मिट्टी को संवार
सच्चे कर देते हैं सपने
लेते हैं स्वर्ग उतार विचारों के नभ से ।'[३]

मानव के स्वर्णिम भविष्य की आस्था व्यक्त करता हुआ कवि कहता है कि संसार को वैभव-सम्पन्न करने वाले अणु-रूपी नाग को नाथने वाले मनुष्य का भविष्य कभी अन्धकारमय नहीं हो सकता। मनुष्य अपने जीवन में संघर्षों से जूझकर, कठिनाइयों को पार करके अपना मार्ग स्वयं बना लेता है। मानव के इस कठोर परिश्रम

१. नाश और निर्माण— माथुर, पृ० १३०
२. धूप के धान—माथुर, पृ० १६
३. वही, पृ० १८

के कारण ही मनु की धरती अजर है, अमर है—

'किन्तु नहीं
मिट सका कभी न भविष्य मनुज का
जग का वैभव रचने वाले ज्योति मनुज का
अणु का नाग नाथने वाले महामनुज का
अणु की अग्नि-गरज में भी
यह ध्वनि उठती है
जीवन में जीने का बल है
मनु की धरती अजर अमर है।'[१]

कवि मानव के दुहरे व्यक्तित्व के बनावटी चेहरों को समाप्त करके, संशय, भय, नफरत आदि के कृत्रिम भेद भावों को समूल नष्ट करना चाहता है। उसका विश्वास है कि मानव सूर्य के समान दीप्त व्यक्तित्व से सम्पन्न होगा, अन्याय और अत्याचारों के स्थान पर मानवीय मूल्यों में उसकी आस्था बढ़ेगी। इसलिए वह आधुनिक मानव को नया ताप, नयी तपन देना चाहते हैं—

दुहरे व्यक्तित्वों के
चेहरे कर भस्मसात
'संशय, भय, नफरत की
भेद झिल्लियाँ विराट्
निकलेगा व्यक्ति नया
सूरज के टुकड़े सा
तोड़ अन्यायों की
शीश पर खिंची दरांत
इन्सानी मूल्यों के डाल सोन-तार नए
जीवन को फिर विराट गीत का अलाप दो
अग्नि दो, तपन दो, नया ताप दो।'[२]

गिरिजा जी के काव्य का लोकपक्ष

गिरिजाकुमार माथुर मूलतः नगरीय जीवन के चितेरे हैं। उनके काव्य की मूल संवेदना नागरिक जीवन से सम्बन्धित है, क्योंकि इस जीवन को उन्होंने स्वयं भोगा है। इसी में वे पले, बड़े हुए और इसी नगरीय वातावरण में इनकी काव्य-प्रतिभा विकसित हुई। लेकिन माथुरजी ने प्रगतिशील कवियों से प्रभावित होकर शहरी जीवन के साथ-साथ लोकजीवन के भी अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। वहाँ के रहन-

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ६७
२. शिलापंख चमकीले— माथुर, पृ० ८५

सहन, आस्था और विश्वासों को प्रत्यक्षतः लेखनीबद्ध करने का प्रयास किया है। लोक में प्रचलित प्राचीन कथाओं को नया रूप दिया गया है। इस दृष्टि से 'दियाधरी' और 'ढाकवनी' कविताएँ प्रमुख है। 'मेरे लघु एकान्त ग्राम में 'विध्या के ऊँचे टीलों तथा झाड़ झंखाड से घिरे अपने छोटे-से ग्राम का संकेत करता हुआ कवि वहाँ के छोटे से साप्ताहिक हाट और उसमें दूर-दूर से बैलगाड़ियों में आने वाले नर-नारियों का चित्रांकन इस प्रकार करता है—

'विध्या के ऊँचे नीचे टीलों से घिरे देश में आकर,
वन हो गया और भी श्यामल।
उसी झाड़-झंखाड़ बीच
मेरा छोटा गाँव बसा है।
⊠ × ⊠
वहीं हरेक सनीचर के दिन,
हाट लगा करती है
दूर-दूर के गाँवों के नर नारी आते
अपनी बैलगाड़ियां लेकर।[1]

'ढाकवनी' कविता में प्रकृति का व्यापक रूप से चित्रण करने के पश्चात् कवि पास के एक गाँव के रहन-सहन, प्रतिदिन उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं का इस रूप में वर्णन करता है कि गाँव में रहने वाले लोगों के निम्न-स्तरीय जीवन का सहज ही आभास हो जाता है। किन्तु ऐसे स्थलों पर वस्तुपरिगणन शैली का ही बाहुल्य है, जिसमें अनुभूति की गहराई न होकर वर्णनात्मकता की प्रधानता ही लक्षित होती है—

'बीच पेड़ों को कटन में
हैं पड़े दो चार छप्पर
हाँडियां, माचिया, कठौते
लट्ठ, गूदड़, बैल, बक्खर
राख, गोबर, चर, आँगन
लेज, रस्सी, हल, कुल्हाड़ी
सूत की मोटी फतोई
चका हंसिया और गाड़ी।'[2]

भारतीय ग्राम यद्यपि प्राकृतिक वैभव से सम्पन्न हैं किन्तु यहाँ के निवासी गरीब हैं। दिन-भर कठोर परिश्रम करने पर भी ग्रामवासियों को दोनों समय भरपेट

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ६९, ७०
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ६८

भोजन भी प्राप्त नहीं होता, भूख की मनहूस छाया सदैव उनके जीवन पर छाई रहती है—

> **घन वनस्पति भरे जंगल**
> **और यह जीवन भिखारी**
> **शाप नल का घूमता है**
> **भौथरे हैं हल कुल्हाड़ी ।**[1]

'दियाधरी' कविता में कवि ने मालव प्लेटों की उत्तरी सीमा पर स्थित गाँव में प्रचलित प्राचीन लोककथा को कवि ने नये अर्थ में प्रस्तुत किया है। माथुरजी के अनुसार—हर रात पहाड़ी की चोटी पर एक दीप जल जाता है। गाँव वालों का विश्वास है कि उसे जिन्न जलाते हैं। इतिहास का सत्य किस प्रकार टूटकर कल्पना और भ्रम बनता है और किस प्रकार उसे भविष्य-रचना की ओर उन्मुख किया जा सकता है, यही प्रस्तुत कविता का कथ्य है।[2]

ग्रामीणों के अन्धविश्वास का चित्रांकन करते हुए कवि लिखता है कि गाँव के हर टीले का एक देवता होता है जिसे अज्ञानवश के सैकड़ों वर्षों से पूजते आ रहे हैं। चरवाहे प्रत्येक पत्थर को विक्रमादित्य का सिंहासन मानते हैं—

> **'हर टीले का एक देव**
> **हर दबी पुरी पर चौतरा**
> **हर पाताल-बावड़ी रमते**
> **राजा, रानी, अप्सरा**
> **चरवाहों का हर पत्थर**
> **सिंहासन विक्रम भान का**
> **रातों होता न्याय**
> **भोर पहरा पड़ता सुनसान का ।'**[3]

किन्तु वास्तविकता इन सब बातों से बहुत दूर है। उनका जीवन अनेकों अभावों से ग्रस्त है। महल, मंडप व अटारियों के स्थान पर टूटे मकान हैं। उनका जीवन दुःखों, रोगों व लाचारियों से पूर्ण है। अनगिनत विक्रम फटे चिथड़ों में अपने शरीर को लपेटे बैलों को चराते घूम रहे हैं—

> **'टूटे टपरों के सामने**
> **चिथड़ों में अनगिनत विक्रम**
> **फिरते बैलों को थामने**

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ६८
२. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ३
३. वही, पृ० ८

विजय खंभ है नहीं
नहीं है मंडप, महल, अटारियाँ
मिट्टी के घरगूलों में
दुख, रोग, रंज, लाचारियां।'[1]

अन्त में कवि यह विश्वास प्रकट करता है कि दियाधरी का दीप जहाँ ग्रामीणों के अन्धविश्वास व पिछड़ेपन का प्रतीक है वहीं एक मानव को उज्ज्वल भविष्य-रचना की ओर उन्मुख भी कर सकता है। समाज-रूपी सीप में नवयुग-रूपी मोती को लाने में सहायक सिद्ध हो सकता है—

'जलती उस विभूति की आत्मा
दियाधरी के दीप में
मोती जैसा युग लाने को
फिर समाज की सीप में।'[2]

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि माथुरजी ने अपनी काव्यकृतियों में यत्र-तत्र लोकजीवन के चित्रों को उतारने का प्रयास अवश्य किया है। 'मुक्तिबोध' आदि की भाँति उनमें व्यापकता, तल्लीनता, रम्यता तथा सूक्ष्मता का अभाव है। 'ढाकवनी' व 'दियाधरी' आदि कुछ कवितायें ही ऐसी हैं जिनमें भारतीय ग्रामों में रहने वाले निवासियों के रहन-सहन, अंधविश्वास व पिछड़ेपन आदि की झलक दिखाई देती है किन्तु ऐसे स्थलों पर वस्तुपरिगणन शैली की ही प्रधानता है। इसका कारण यह है कि लोक-जीवन का चित्रांकन उनके काव्य का मुख्य अंग नहीं है। शहरी परिवेश ही उनकी काव्यकृतियों में अधिक मार्मिकता से उभर कर आया है।

प्रकृतिचित्रण—प्रगतिशील दृष्टिकोण

माथुरजी के काव्य में प्रकृतिचित्रण के दृश्य विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। स्थूल यथार्थ चित्रण भी भदेस नहीं हो पाया है। प्रकृति के माध्यम से जहाँ कवि ने रोमानी भावों की अभिव्यक्ति की है वहीं नगरीय तथा ग्रामीण जीवन के भी अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। ऐसी दृश्य-छवियों में कवि ने छायावादी शब्दजाल का आश्रय नहीं लिया है। 'युगसांझ' कविता में ढलते हुए सूर्य का अंकन इस रूप में किया गया है—सांध्यकालीन ढलता हुआ सूर्य गोलरक्तिम पत्थर के टुकड़े के समान निष्प्राण है जिसका धुंधला प्रकाश भवनों, मिलों व पेड़ों पर पड़ रहा है। चारों दिशाओं में पवन की गति स्तब्ध हो गई है—

संध्या-बेला
अब छिन्न पुष्प सी छपी हुई लघु धूप हुई,

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ६
२. वही, पृ० ६

है ठिठक रहा धरती की रेख के ऊपर
वह गोल, रक्त पत्थर के टुकड़े सा सूरज
निष्प्राण, अंचल

× × ×

पड़ता है धुंध-भरा उजियाला दूर-दूर
भारी भवनों, मिल शिखरों, खम्भों, पेड़ों पर
सुनसान हवा, आच्छन्न हो रही सभी दिशा।"[1]

'मंजीर' की एक अन्य कविता में ग्रामीण क्षेत्रों के ग्रीष्मऋतु के एक दिन के तीसरे पहर का मूर्त चित्रण किया है। बछड़ों के रंभाने का स्वर, पानी की खोज में प्यासी चीलों का मंडराना तथा बीच-बीच के चरवाहों की हाँक ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है—

उतर रहा जलते दिन का तीसरा पहर हिलते पत्तों पर
बछड़ों के रंभाने की ध्वनि पवन चला आता था लेकर
प्यासी चीलें दूर कहीं, पानी के ऊपर मंडराती थीं
चरवाहों की हाक कभी उठ-उठ पड़ती थी दूर कहीं पर।[2]

ग्रीष्म ऋतु की सुनसान दोपहरी का चित्रण करता हुआ कवि जीवन के एकाकीपन की तुलना गरमी के सुनसान दिनों से करता है। जिस प्रकार ग्रीष्मऋतु की दोपहरी काफी लम्बी होती है उसी प्रकार जीवन का एकाकीपन भी अन्तहीन है। मन की तुलना शुष्क वनों से की गई है। धूप की तेजी के कारण आकाश में चीलों का उड़ना बन्द हो गया है। खेतों पर भी कामकाज नहीं हो रहा है। चित्रण की सजीवता के कारण ग्रामीण वातावरण स्वयं साकार हो गया है—

"थकी दुपहरी में पीपल पर
काग बोलता शून्य स्वरों में।
यह जीवन का एकाकीपन—
गरमी के सुनसान दिनों सा,
अन्तहीन दोपहरी डूबा
मन निश्चल है शुष्क वनों सा
ठहर गई है चीलें नभ में
ठहर गई है धूप छाँह भी।"[3]

१. नाश और निर्माण, माथुर, पृ० ३२८
२. मंजीर—माथुर, पृ० ८१
३. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ३२

'दियाधरी' में मालव-प्लेटों की उत्तरी सीमा के एक गाँव की प्राकृतिक सुषमा का भव्यचित्रण कवि ने किया है। साथ ही प्रकृति के प्रत्येक उपादान का (मिट्टी, वन सूर्य, पहाड़, फल, फलों आदि) वर्णन किया है। प्रकृति के ऐसे चित्रों में वर्णनात्मकता की प्रधानता हो गई है—

'काले जंगल' काले खेत
काली मिट्टी सांवरी
धूप फूल-दोना ले आती
रातें ओढे कामरी
सूरजमुखी हुआ दिन छूकर
मिट्टी लाल पठार की।'[1]

ग्राम्य प्रकृति के सरल और सजीव चित्र उतारने के साथ-साथ माथुरजी ने नगरीय जीवन के स्पर्श से युक्त प्रकृति के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। लोकजीवन की अपेक्षा नागर जीवन का चित्रण इन्होंने अधिक मनोयोग से किया है। ऐसे स्थलों पर कवि ने पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति का व्यापक चित्रांकन किया है। भाव विशेष की अभिव्यक्ति करने से पूर्व उसके परिवेश को सम्पूर्ण आयामों से अभिव्यक्त करना माथुरजी की निजी विशेषता है। अनेक स्थलों पर कवि ने सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करते समय प्रकृति को पृष्ठभूमि रूप में रखकर तत्सम्बन्धी वातावरण का निर्माण किया है। ऐसी कविताओं में तुलना द्वारा आर्थिक विपन्नता की ओर संकेत करना कवि का लक्ष्य है। आज मध्यवर्ग का सबसे दयनीय पात्र क्लर्क है जिसके जीवन में चन्दन रंग के महल, गोरे पार्क, मुलायम हरी घास का कोई महत्त्व नहीं है, नगर का यह सौन्दर्य उसे अपनी ओर तनिक भी आकृष्ट नहीं करता। उसकी आँखों में रंगीन स्वप्न नहीं कागज की मोटी रखी फाइलें रहती हैं। यहाँ कवि ने प्रकृति का इस रूप में चित्रण किया है कि क्लर्क के जीवन की दयनीयता और अधिक उभर कर पाठक के सामने आई है—

'नगर भरा है सुन्दरता से
ऊँचे ऊँचे चंदन रंग के महल खड़े हैं
फैली है काजल सी चिकनी चौड़ी सड़कें
दूर दूर तक,
बीच बीच में मोती के गुच्छों से
गोरे पार्क बने हैं
× × ×
लेकिन उसकी आँखों में तस्वीर न कोई,

1. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ३

केवल मिनट मिनट पर बढ़ती
कागज की मोटी रूखी दीवार खड़ी है ।'[१]

'ये दुनिया' नामक कविता में प्राकृतिक परिवेश के चित्रण के अनन्तर नगर की व्यस्त दुनिया का चित्र अंकित किया गया है । शाम की सलोनी धूप क्रमशः मद्धिम होती जा रही है । वह अब केवल इमारतों के शिखरों पर ही दिखाई दे रही है। प्रकृति के इस वातावरण को निरूपित करने के पश्चात् कवि ने नगर की सड़कों के शोरगुल, व्यावसायिक कार्यों की तेजी तथा कारखानों की चिमनियों से उठते धुएँ का उल्लेख किया है । सूर्य के अस्त होने के साथ-साथ बाहरी दुनिया की व्यस्तता इन शब्दों में व्यक्त की गई है—

'शाम की तिरछी, सलोनी
सुनैली धूप
दीपित है अब भी
इमारत के चेहरे पर
× × ×
सड़कें, शोरगुल, धूल
कारोबार का जुनून
पहिए, पैर, चिमनियाँ
बाहर की व्यस्त दुनियाँ ।'[२]

सांध्यकालीन प्रकृति का एक अन्य चित्र—

'पड़ गई मंद हवा
हो गई सुनहरी धूप
पेड़ के पास सूर्य जा पहुँचा
जिससे पत्तों का रंग लाल हुआ
शाम का झुटपुटा सा होता है
× × ×
क्योंकि अब बन्द हो गए दफ्तर
काम के केन्द्र कारखाने भी
और घर लौटने लगे पंछी
जा रहे काग भी बसेरे को ।'[३]

शाम के झुटपुटे के साथ-साथ कार्य करने के सभी केन्द्र भी बन्द हो गए हैं ।

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ६४
२. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ७४
३. धूप के धान—माथुर, पृ० २८, २६

दफ्तर व कारखानों के बन्द हो जाने के कारण उनमें काम करने वाले अपने घरों को उसी प्रकार लौट रहे हैं जैसे काग अपने बसेरों को।

माथुरजी ने जहाँ-जहाँ नागर प्रकृति का चित्रण किया है वहाँ मदमस्त करने वाली चाँदनी रात, कार, मोटर, बंगलों आदि की भरपूर चर्चा करके धनी व्यक्तियों के वैभवपूर्ण जीवन की ओर भी संकेत किया है। जहाँ एक ओर सम्पन्न व्यक्तियों का ऐश्वर्यमय जीवन है वहीं दूसरी ओर जीवन की कठिनाइयों तथा आर्थिक दारिद्रय के फलस्वरूप मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की प्रत्येक सांस हँसी उड़ाती हुई दृष्टिगत होती है। 'नाश और निर्माण' की 'एसोसिएशन्स' नामक कविता में प्रकृति का पृष्ठभूमि रूप में निरूपण करने के पश्चात् विपन्नता व सम्पन्नता के मध्य वैषम्य को स्पष्ट किया गया है—

'मंद चाँदनी रात, चाँदनी रात दूर तक,
हल्की सी मलमल में लिपटी।
× × ×
बंगला, मोटर, कौच, रेडियो
रेशम की वह चमचम साड़ी
× × ×
क्यों न चाँदनी केवल महलों पर ही उगती,
दूरी के ड्राइंग-रूमों पर,
खिड़की के रेशम पर्दों से
जिनकी रंगीनी की ज्योतित छांह झलकती—
× × ×
किन्तु यहाँ पर,
जीवन की प्रत्येक सांस है हँसी उड़ाती।'[1]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गिरिजाकुमार माथुर ने अपनी प्रगतिशील रचनाओं में सामाजिक यथार्थ सम्बन्धी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के नाना रूपों को अपनाया है। कहीं उन्होंने प्रकृति के माध्यम से लोक-जीवन के सरल व सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए है, कहीं, ग्राम्य प्रकृति के विभिन्न उपादानों को गिनाने में दत्तचित हो गए हैं जहाँ वर्णनात्मकता की प्रधानता भी हो गई है। किन्तु मुख्य रूप से सामाजिक वैषम्य को निरूपित करने के लिए प्रकृति का पृष्ठ-भूमि रूप में चित्रण किया गया है। ऐसे स्थलों पर भाव-सम्प्रेषण में प्रकृति काफी सहायक सिद्ध हुई है।

अभिव्यक्ति की सरलता

माथुरजी प्रगतिशील कवियों के सबसे अधिक निकट अभिव्यक्ति की सरलता

1. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ८६, ८७

व स्पष्टता की दृष्टि से दिखाई देते हैं। उनकी भाषा इतनी सरल है कि कविता का कथ्य आसानी से स्पष्ट हो जाता है। जनसाधारण की सामान्य भाषा का अपने काव्य में प्रयोग किया है। 'ढाकबनी', 'दियाधरी', 'चाँदनी गरबा' आदि कविताओं में लोक-भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। फलस्वरूप लोक-जीवन यथार्थ रूप में साकार हो गया है। भावानुरूप भाषा प्रयोग से सम्पूर्ण कविता चित्र की भाँति पाठक के समक्ष साकार हो जाती है। उनमें लक्षणा तथा व्यंजना की क्लिष्टता व दुरूहता नहीं है। छायावादी आवरणप्रियता तथा कृत्रिमता से भिन्न सरल व स्वच्छ भाषा का एक उदाहरण—

'माथे पर न रक्खो हाथ
जरा कुछ और तपने दो
आँखों में न पलकों की उतारो गात
श्रमजा नींद के अंकुर पनपने दो
हुई हैं लाल आँखें
इन्हें थोड़ा और जलने दो
दहन के खारे पानी से
समय की कोर सजने दो
सहज का सुख नहीं मंजूर
छोटी तृप्तियाँ बेकार
उठे जब तक न मिट्टी से नया संसार
तुरत की चैन रंगीनी सभी निस्सार।'[१]

उपर्युक्त प्रगतिवादी विवेचन से स्पष्ट है कि गिरिजाकुमार माथुर सैद्धान्तिक प्रगतिवादी (मार्क्सवादी विचारों में विश्वास रखने वाले) नहीं, प्रगतिशील कवि हैं। उनका काव्य समष्टि-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है। कवि ने यथास्थान ग्राम व नगर के अभावग्रस्त जीवन का चित्रण करके सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने मध्यवर्ग व निम्नवर्ग के अभावमय जीवन का मूल कारण माना है—साम्राज्यवादी तत्त्वों द्वारा शोषण। शोषण को दूर करने के लिए कवि ने रक्तक्रांति व वर्ग-संघर्ष आदि का आह्वान न करके दोनों स्थितियों (सम्पन्नता व अभावग्रस्तता) का चित्रण किया जिससे प्रबुद्ध पाठक स्वयं निर्णय करें, सोचें-विचारें। माथुरजी के काव्य में यथास्थान राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का भी चित्रांकन किया गया है। इस दृष्टि से 'एशिया का जागरण', '१५ अगस्त' आदि कविताएँ महत्त्वपूर्ण हैं। मानव-कल्याण, विश्वबन्धुत्व तथा मंगलमय भविष्य की आस्था व विश्वास इनके काव्य की प्रधान विशेषता है जिसे सरल व सुबोध भाषा में व्यक्त किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि माथुरजी की प्रारम्भिक रचनाओं में जहाँ वैयक्तिक सुख-दुःख की

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ११६

४ | नयी कविता : विकास और प्रसार

आधुनिक जीवन की तीव्रगति से संचालित कविता ने कुछ ही वर्षों में कितनी ही करवटें ली हैं। प्रत्येक दशक में उसके दृष्टिकोण, संवेदना तथा शिल्प सभी में बहुत भेद परिलक्षित होता है। गिरिजाकुमार माथुर नये युग के संवेदनशील कवि हैं अतः उनकी कविता में भी वे सारे परिवर्तन स्पंदित एवं प्रतिविम्बित हैं। आज की कविता वस्तुतः नयी कविता है और माथुरजी के काव्य की मूल-संवेदना नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में ही पूर्णतः जानी जा सकती है।

हिन्दी में जिस प्रकार छायावाद की वैयक्तिकता, सूक्ष्म काल्पनिकता व वायवीयता की प्रतिक्रियास्वरूप प्रगतिवाद का जन्म हुआ और 'व्यक्ति' के स्थान पर 'समाज' (समूह) की प्रतिष्ठा की गई उसी प्रकार प्रगतिवादी वस्तुपरकता तथा सामूहिकता की प्रतिक्रियास्वरूप प्रयोगवाद का उदय हुआ। 'प्रयोगवाद उस काव्य-प्रवृत्ति का नाम है जो छायावाद युग की समाप्ति के बाद प्रगतिवादी काव्य-प्रवृत्ति के समानान्तर या उसके साथ मिलकर नवीन और साहसपूर्ण काव्य-प्रयोगों को अपनाकर अग्रसर हुई थी।'[१] प्रगतिवादी कवि 'वाद' की संकीर्णता से मुक्त न होने के कारण मार्क्सवादी सिद्धान्तों को ही अपनी रचनाओं में लिपिबद्ध करने लगे। 'किसान' और 'मजदूर' ही उसके काव्य के रूढ़ विषय बन गये थे अतः सामूहिकता की भीड़ में 'व्यक्ति' की आवाज विलुप्त हो गई थी। ऐसी डाँवाडोल स्थिति में प्रयोगवाद का उदय हुआ जिसमें व्यक्ति को समष्टि-चेतना से युक्त किया गया। व्यक्ति को उसके कठोर सामाजिक परिवेश में (सम्पूर्ण दुर्बलताओं व सफलताओं सहित) रखकर देखा गया, जहाँ आर्थिक वैषम्य के कारण वह स्वयं को समाज से कटा हुआ अनुभव करता है। प्रयोगवादी कविता ऐकान्तिक रूप से न तो 'व्यक्ति' को महत्त्व देती है और न समाज को। उसमें व्यक्ति को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जहाँ समष्टि से कटकर व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है वहाँ व्यक्ति का अपना अस्तित्व, अपना अहं भी होता है जिसे सामूहिकता में विलीन नहीं किया जा सकता। इसी दृष्टि-बिन्दु का निर्वाह प्रयोगवादी काव्य में मिलता है। 'वस्तुतः नये कवि का व्यक्तित्व उस समग्र सामाजिक चेतना का प्रतीक अथवा प्रतिनिधि है, जिसके माध्यम से आधुनिकता के बोध से आन्दोलित और उद्दीप्त हमारी पूरी पीढ़ी का व्यक्तित्व साकार हुआ है।'[२]

१. प्रयोगवाद और नयी कविता—डॉ० शम्भूनाथ सिंह, पृ० ११
२. अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य—डॉ० कुमार विमल, पृ० ६६

प्रयोगवाद के उद्भव में अनेक भारतीय तथा अभारतीय विदेशी, प्रभावतत्त्वों तथा परिस्थितियों का सहयोग रहा है। स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय जनमानस ने जिन सुख-स्वप्नों को सँजोया था, उनके पूर्ण न होने के कारण देश के युवावर्ग में परम्परा और सामाजिकता के विरुद्ध विद्रोह की भावना का जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त द्वितीय 'महायुद्ध की विभीषिकाओं से भयत्रस्त मानव के जीवन में अनिश्चय, अनास्था, कुंठा, अतिवैयक्तिकता आदि जीवन की विघटनकारी प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। युद्ध जनित जीवन के प्रति अनिश्चय की भावना ने व्यक्ति को क्षणवादी बनाया। क्षण ही मूल्यवान् है अतः 'क्षण' को भोगो।'[१] इन अस्थिर जीवन-मूल्यों का सर्वाधिक प्रभाव नगरीय जीवन पर पड़ा, फलस्वरूप काल्पनिक सुख-स्वप्न तथा आदर्शों का स्थान कटु यथार्थ ने ले लिया। उसके अतिरिक्त वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि ने हमारे आध्यात्मिक मूल्यों को झकझोरा। शिक्षा के व्यापक प्रसार के कारण अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के प्रति चिन्तन के दृष्टिकोण का विकास हुआ और मानवतावादी दृष्टि का प्रसार हुआ।

उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बौद्धिक विचार-दृष्टि की अधिकाधिक संवर्द्धना हुई। इन परिस्थितियों से बुद्धिजीवी वर्ग भी अप्रभावित नहीं रह सका। आज का युग-सत्य है, मनुष्य को समग्र रूप में देखना, उसे एक महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में मानना। आधुनिक कवियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इस नवीन यथार्थ-बोध को काव्य में संप्रेषित किया। इस सामूहिक अभिव्यक्ति की प्रतीति सर्वप्रथम 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' में हुई है।

सन् १९४३ में 'अज्ञेय' के सम्पादकत्व में 'तारसप्तक' का प्रकाशन हुआ जिसने राहों के अन्वेषियों को साहित्यिक नेतृत्व प्रदान किया। इसमें वे रचनाएँ प्रकाशित हुईं जो वस्तु व शिल्प दोनों दृष्टियों से सर्वथा नवीन थीं। 'तारसप्तक' में अज्ञेय के अतिरिक्त गजाननमाधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल और रामविलास शर्मा की रचनाएँ संग्रहीत हैं। लगभग सभी कवियों ने अपने वक्तव्यों में प्रयोगों की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। 'तारसप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने कुछ आवश्यक तथ्यों की ओर संकेत किया है। 'तारसप्तक' के सातों कवि 'किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं। अभी राही हैं, राही नहीं राहों के अन्वेषी। उनमें मतैक्य नहीं है। सभी महत्त्वपूर्ण विषयों में उनकी राय अलग-अलग है। काव्य के प्रति अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें एकता के सूत्र में बाँधता है।'[२] इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि युग-जीवन के यथार्थ तथा बदलते परिवेश को नवीन अभिव्यंजना-शैली में निरूपित करने के कारण ही इन कवियों में एकता स्थापित की गई है। सम्पादकीय भूमिका के अतिरिक्त अज्ञेय ने

१. स्वातन्त्र्योतर हिन्दी-काव्य—डॉ० रामगोपालसिंह चौहान, पृ० ३७
२. तारसप्तक (भूमिका : द्वितीय संस्करण)—अज्ञेय।

अपने वक्तव्य में भी कुछ अन्य तथ्य स्पष्ट किए हैं प्रयोगशीलता को प्रेरित करने वाली मूल वृत्ति का विवेचन उन्होंने इस प्रकार किया है 'जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुंचाया जाय यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।'[1]

नवीन सौन्दर्य-बोध तथा युगीन-यथार्थ के संप्रेषण में पूर्ववर्ती अभिव्यंजना-शैली के प्रभावहीन हो जाने के कारण नया कवि 'भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है—और यह अहंकार के कारण नहीं, इसलिए कि उसके भीतर इसकी गहरी माँग स्पन्दित है इसलिए कि वह 'व्यक्तिसत्य' को 'व्यापक-सत्य' बनाने का सनातन उत्तरदायित्व अब भी निबाहना चाहता है।'[2]

सन् १९५१ में प्रकाशित 'दूसरा-सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने 'प्रयोग' को और अधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार—'प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे। नहीं हैं···प्रयोग अपने-आपमें इष्ट नहीं है वह साधन है और दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है दूसरे, वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद हो सकता है।'[3]

'अज्ञेय' के विभिन्न वक्तव्यों के अनुसार 'तारसप्तक' व 'दूसरा-सप्तक' के कवि 'राहों के अन्वेषी' हैं किन्तु सबकी 'राहें अलग-अलग' हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो इन संग्रहों में संग्रहीत विभिन्न कवियों की रचनाओं में दो प्रकार की समानता दृष्टिगत होती है। सर्वप्रथम तो भाषा, छन्द-प्रतीकों के माध्यम से शिल्प-विधान की एकता, जहां पूर्वप्रचलित परम्पराओं को अस्वीकार किया गया है दूसरे विशिष्ट क्षणों में व्यक्ति-अनुभूति को सरल ढंग से समष्टि तक पहुँचाना।

काव्यगत प्रयोगशीलता को श्री गिरिजाकुमार माथुर ने वैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। 'प्रयोग सभी कालों में होते आए हैं यह कहकर ही आधुनिक प्रयोगों की सार्थकता सिद्ध नहीं की जा सकती। उसके सम्बन्ध में आज हमें यह देखना भी जरूरी है कि किस सन्दर्भ में वे किए जा रहे हैं और उनका लक्ष्य क्या है, फिर पहले जो प्रयोग हुए थे उनमें और आज के इन प्रयोगों में परिस्थिति, प्रयोजन, दिशा और आग्रह का अन्तर है। इसके अलावा कवि या लेखक विशेष का शैली-वैशिष्ट्य भी अपनी नवीनता की उद्भावना के अर्थ में एक सीमा तक नया प्रयोग कहा जा

१. तारसप्तक (वक्तव्य)—अज्ञेय, पृ० २७७
२. वही, अज्ञेय—पृ० २७६
३. दूसरा सप्तक (भूमिका)—अज्ञेय, पृ० ६७

सकता है।…लेकिन आज हम सामूहिक रूप से प्रयोग इसलिए चाहते हैं कि वर्तमान जीवन की परिस्थितियाँ बदल गई हैं।…नवीन समस्याएँ पैदा हुई हैं और उनके समाधान के लिए संघर्ष। इसलिए पहली बात तो इस नए सत्य, नई विषय-वस्तु की है। दूसरी चीज यह है कि अभिव्यक्ति के पुराने माध्यम छन्द, उपमान, ध्वनि, रंग, प्रकारादि सभी मिट चुके हैं, उनके रंग उड़ चुके हैं, निश्चय ही उनके द्वारा नवीन वास्तविकता से उत्प्रेरित भावों की अभिव्यंजना नहीं हो सकती। तीसरी ओर भाषा की भी बात है जो प्रेषण और सूचीकरण का माध्यम है। प्रतिष्ठित साहित्यिक भाषा की शब्द-रचना और पदविन्यास का अर्थ-संकेत तथा छवि-संकेत भी सीमित हो गया है उसके भी पुनः संस्कार की आवश्यकता है। इन तीनों के सामंजस्य से ही आगे बढ़ना प्रयोगों का लक्ष्य है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रयोगवाद ने विषयवस्तु और रूपविधान में नवीनता लाने का प्रयास किया। कवि के अनुभूत सत्य को नवीन अभिव्यंजना-पद्धति के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया।

प्रयोगवादी कविता मध्यवर्गीय समाज के जीवन से सम्बन्धित है। इसमें समूह के स्थान पर 'व्यक्ति मानव' की महत्ता प्रतिपादित की गई है। 'अतिमानव' व बड़ी-बड़ी महान् घटनाओं से यह कविता-धारा भिन्न है। इसमें व्यक्ति-मन के संघर्षों को, सूक्ष्म व क्षणिक अनुभूतियों को पूरी गहराई के साथ प्रतिपादित किया है। 'मानव' को महान् बनाने का यत्न न करके उसे उसकी सम्पूर्ण दुर्बलताओं व सबलताओं सहित प्रस्तुत किया गया है।

सन् १९५० ई० के बाद की कविता को नयी कविता का नाम दिया जाने लगा। संगठित रूप से 'नई कविता' जगदीश गुप्त एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'नई कविता' के प्रकाशन से सर्वप्रथम सन् १९५४ में प्रकाश में आई। 'प्रयोगवाद' व 'नयी कविता' को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों इन दोनों को भिन्न काव्यधारा के रूप में स्वीकार करते हैं किन्तु अधिकांश का मत है कि नयी कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है। डॉ० रामदरश मिश्र के अनुसार 'नयी कविता नाम स्वतन्त्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं के लिए रूढ हो गया जो अपनी वस्तु-छवि और रूप-छवि दोनों में पूर्ववर्ती प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास होकर भी विशिष्ट है।'[2] डॉ० रामगोपाल चौहान ने भी 'नयी कविता' को प्रयोगशील काव्यधारा से आगे की उपलब्धि कहा है। 'नयी कविता' अपनी अभिव्यक्ति-प्रेषणीयता तथा उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोगशील कविता से आगे की स्थिति है। दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है, पर ऐतिहासिक दृष्टि एक-दूसरे का विकास है।'[3]

१. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प (से उद्धृत)—डॉ० कैलाश वाजपेयी, पृ० २६७-६८
२. हिन्दी कविता तीन दशक—डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० ९८
३. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य—डॉ० रामगोपाल चौहान, पृ० १०

श्री गिरिजाकुमार माथुर मानते हैं कि प्रयोगशीलता के साथ ही 'आधुनिकता' का समारम्भ हुआ था अतः पिछले काव्य-विकास को 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' के कृत्रिम वर्गों में देखना असंगत है। आधुनिकता की प्रक्रिया का प्रथम उन्मेष सन् १९४० से सन् १९५२ तक मानना चाहिए और द्वितीय चरण सन् १९५३ से अब तक। ......दूसरे चरण को 'नयी कविता' के नाम से अभिहित करने के बदले उसे आधुनिकता की विभिन्न प्रवृत्तियों के रूप में देखना अधिक संगत है।'[1]

अन्य कुछ विद्वानों ने 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' में सूक्ष्म अन्तर भी स्पष्ट किया है। 'नयी कविता एक सार्थक नाम है। वह प्रयोगवाद का पर्याय नहीं है जैसा प्रयोगवादियों ने चाहा था, बल्कि उससे भिन्न एक नवोदित काव्य-प्रवृत्ति है। प्रयोगवाद और नयी कविता में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि प्रयोगवाद द्वन्द्व और प्रतिक्रिया की कविता है किन्तु नयी कविता संश्लेषण और सामंजस्य की कविता है। × × नयी कविता समग्र दृष्टि तथा सामंजस्य चेतना की कविता है।'[2] डॉ० रवीन्द्र भ्रमर ने अपने एक लेख में नयी कविता और प्रयोगवाद के सूक्ष्म अन्तर को स्पष्ट करने की चेष्टा की। "स्थूल रूप से नयी कविता को प्रयोगवाद का अधिक विकसित तथा पुरिपुष्ट रूप मानना चाहिए। सैद्धान्तिक रूप से नई कविता प्रयोगवाद की अपेक्षा अधिक उदार तथा व्यापक दृष्टिकोण लेकर आई।...नई कविता के कवियों ने नई समस्याओं तथा बदलते हुए जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोगशीलता के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया, किन्तु प्रयोगशीलता के आग्रह का परित्याग कर दिया गया। केवल प्रयोग के लिए प्रयोग करना नई कविता के कवियों ने उचित नहीं माना।......नई कविता ने प्रयोगवाद द्वारा अन्वेषित तथा निर्दिष्ट रचना-पंथों का सदुपयोग करते हुए युग के नये काव्य की मंजिल को छू लिया।'[3]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रयोगवाद' व 'नयी कविता' के विषय में विद्वानों में परस्पर मत-वैषम्य अधिक नहीं है। सूक्ष्म अन्तरों के होते हुए भी 'नयी कविता' 'प्रयोगवाद' से भिन्न नहीं है, वरन् उसका ही विकसित-पल्लवित रूप है। प्रयोगवाद से प्ररणा प्राप्त करके नयी कविता अधिक व्यापक दृष्टिकोण को लेकर आई है। उसने समसामयिक युगजीवन से तादात्म्य स्थापित किया। नये मानव-व्यक्तित्व का समष्टि से सम्बन्ध स्थापित किया। शिल्प-सम्बन्धी परम्परागत उपादानों का त्याग किया। अतः 'वस्तु' और 'शिल्प' दोनों ही दृष्टियों से नयी कविता प्रयोगवाद का विकास ही अधिक प्रतीत होती है।

नयी कविता के स्वरूप को भली-भाँति जानने के लिए आवश्यक है कि उसके बिचारणीय पक्षों पर भी प्रकाश डाला जाये। नयी कविता की उल्लेखनीय बात है—'मानव-व्यक्तित्व' की प्रतिष्ठा। इससे पूर्व प्रगतिवाद में व्यक्ति सामाजिक जीवन का

१. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ८, ९
२. प्रयोगवाद और नयी कविता—डॉ० शम्भूनाथ सिंह, पृ० ३७, १४५, १४६
३. अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य—स० डॉ० कुमार विमल, पृ० ५५

प्रतीक बनकर आया। समूह के कोलाहल में उसकी आवाज मन्द पड़ती गई, उसका सही रूप सामने नहीं आ सका। नये कवि ने सामूहिकता व अतिमानव के अस्तित्व के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए सुख-दुख, राग-द्वेष दुर्बलता सबलता तथा आधुनिक परिवेश से संयुक्त मध्यवर्गीय मानव की प्रतिष्ठा की। नया कवि 'लघुमानव' की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहता है—'यद्यपि मानव तुच्छता, क्षुद्रता और विकृतियों के कर्दम मे पड़ा हुआ है और उसका व्यक्तित्व लघुता से कुंठित है, फिर भी उसका आत्मसम्मान मरा नहीं है, जीवित है और रह सकता है।'[1] वस्तुतः यह 'लघुमानव' ही आज का मध्यवर्गीय व्यक्ति है जो आधुनिक परिवेश की उपज है। समाज की महान् शक्तियों द्वारा जो तिरस्कृत होता रहा। नयी कविता जिस नये मानव-व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के लिए संकल्पबद्ध है, वह आधुनिकता, सामाजिक दायित्व, स्वाभिमान और विश्वबंधुत्व की दीप्ति से आलोकित है। उसकी आस्था, लघुता या महानता के प्रति उतनी नहीं है, जितनी कि सहजता के प्रति।······वह अत्यन्त सहज भाव से अन्याय, दमन, शोषण तथा रूढ़िग्रस्त जर्जर संस्कारों से जूझना चाहता है। नयी कविता में प्रतिष्ठित नया मानव-व्यक्तित्व विषम सामाजिक परिस्थितियों से जूझते रहने में ही देवत्व-मनुष्य के आदर्श प्रकृत रूप का अभिलाषी है—

> **'है मुझे स्वीकार**
> **मेरे वन, अकेलेपन, परिस्थिति के सभी काँटे।**
> **ये दधीची हड्डियां हर दाह में तप लें,**
> **न जाने कौन दैवी-आसुरी संघर्ष बाकी हो अभी**
> **जिसमें तपायी हड्डियाँ मेरी यशस्वी हों,**
> **न जाने किस घड़ी की देन से मेरी**
> **करोड़ों त्याग के आदर्श विजयी हों**
> × × ×
> **न जाने कौन सा उत्सर्ग**
> **बढ़ अमरत्व हो जाए।'**[2]

'व्यक्ति' समाज की इकाई है और मानव अपार शक्ति से सम्पन्न है जिसके आधार पर वह सर्जनात्मक कार्य कर सकता है जिसकी अभिव्यक्ति समाज में हो सकती है समाज से अलग होकर नहीं। अतः मानव-व्यक्तित्व में सामाजिकता तथा वैयक्तिकता की स्वीकृति ही नयी कविता की विशेषता है।

अनुभूति की सच्चाई, अनुभूति की विशेषता और विस्तार भी नयी कविता का प्रधान तत्त्व है। कवि-जीवन की वे सभी अनुभूतियाँ काव्य में रूपायित की जा सकती हैं जिनमें सच्चाई हो, जो कवि द्वारा स्वानूभूत हों, जिन्हें उसने स्वयं भोगा हो। अर्थात्

१. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १३४
२. अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य—सं० डॉ० कुमार विमल, पृ० ६०

अनुभव किया हुआ सत्य ही काव्य का 'कथ्य' बन सकता है। नया कवि न तो छायावादी कवि की भाँति लक्षण-प्रतीकों तथा प्रकृति के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को नाना अवरणों में लपेटकर व्यक्त करना चाहता है और न प्रगतिवादियों की भाँति स्वयं अनुभूत किए बिना सामाजिक जीवन की, किसी विशेष दर्शन (मार्क्सवाद आदि) के आधार पर रचना कराना चाहता है। वह तो अपने जीवन की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों को ज्यों-का-त्यों सहज रूप में अंकित करना चाहता है। फिर वह अनुभूति क्षण की हो या समूचे काल की, किसी सामान्य व्यक्ति की हो या विशिष्ट पुरुष की, आशा की हो या निराशा की, अपनी सच्चाई में कविता के लिए और जीवन के लिए भी अमूल्य है।[1] दूसरी बात यह है कि नयी कविता में अनुभूतियों को कोष्टियों में विभक्त नहीं किया गया है। अनुभूति चाहे वैंयक्तिक हो या सामाजिक, प्रेम से सम्बन्धित हो या सामाजिक क्रान्ति व परिवर्तन से, उसे पूरी तीव्रता के साथ वाणी देना ही नयी कवीता की विशेषता है। जीवन के छोटे-से-छोटे अनुभूति-सत्य को इतनी सहजता से हिन्दी में पहले कभी व्यक्त नहीं किया गया। श्री नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में—'हिन्दी कविता के पिछले युग या तो बड़ी-बड़ी भावनाओं और आदर्शों की परिकल्पना के युग थे या अधिक-से-अधिक व्यक्तिगत प्रेम और निराशा की अभिव्यक्ति के। आज जीवन के प्रत्येक पक्ष की, प्रत्येक स्तर की भावना के हलके उतार-चढ़ाव की काव्य में अभिव्यक्ति है। एक प्रकार से कविता का यह 'जनवादी-करण' ऊँचे सिंहासन से उतारकर उसे गली के मोड़ पर ला खड़ा करना आज की कविता की नवीनतम विशेषता है।'[2]

नयी कविता का तीसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है—लौकिक जीवन का सम्पूर्ण आयामों से उपभोग। अर्थात् जीवन के प्रत्येक क्षण की अनुभूति को सत्य मानकर उसका भोग करना। क्षण के महत्त्व का अर्थ यह नहीं है कि नया कवि जीवन को क्षणभंगुर या क्षणिक मानकर उससे पलायन करना चाहता है वरन् 'क्षणों को सत्य मान लेने का अर्थ होता है जीवन की एक-एक अनुभूति को, एक-एक व्यथा को, एक-एक सुख को सत्य मानकर जीवन को सघन रूप में स्वीकार करना।'[3] वस्तुतः जीवन विभिन्न क्षणों की संगठित इकाई का नाम है। इन लघु क्षणों की अनुभूतियों को कवि महान् सुअवसर की प्रतीक्षा में खोना नहीं चाहता। वह प्रत्येक क्षण को पूरी जीवन्तता से भोगना चाहता है—

'चाहता हूँ पा सकूँ
उस क्षण की
······नहीं······
क्षण के भी विभाजित

१. हिन्दी कविता तीन दशक—डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० १०६
२. बदलते परिप्रेक्ष्य—नेमिचन्द्र जैन, पृ० १०६
३. हिन्दी कविता : तीन दशक—डा० रामदरश मिश्र, पृ० ६६

मात्र उतने अंश की अनुभूति
जितने में अनाहत धार जीवन की
अचानक मौत की काली गुहा में डूब जाती है।'[१]

नयी कविता आधुनिक परिवेश की उपज है। उसमें समसामयिक जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों, समस्याओं, विचारों व मान्यताओं की अभिव्यक्ति हुई है। नए कवियों ने ग्रामीण व नगरीय जीवन दोनों को ही अपने काव्य का विषय बनाया है, किन्तु अधिकाँश कवियों ने (शमशेरबहादुर सिंह, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर तथा श्रीकान्त वर्मा आदि) शहरी परिवेश की ही कविताएँ लिखी हैं तथा जीवन के परिचित और सामान्य विषयों को काव्य का माध्यम बनाया। यथा—'चूड़ी का टुकड़ा', 'प्लेटफार्म', 'चा की प्याली' 'लिपिस्टिक' तथा बाजरे की कलगी' आदि। प्रभाकर माचवे ने 'मैं और खाली चा की प्याली' नामक कविता में सूक्ष्म चिन्तन के पश्चात् अन्य चीजों की निरर्थकता व चा की प्याली' की सार्थकता इस प्रकार सिद्ध की है—

जीवन धोखा है, तो हो, यह प्यार कभी जोखों से खाली ?
यह सब एक विराट् व्यंग्य है, मैं हूँ सच, औ चा की प्याली।'[२]

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक युग की विभिन्न वस्तुओं, मशीनों तथा अन्य कार्य-व्यापारों की अभिव्यक्ति भी नयी कविता में हुई है। युग-जीवन के अंकन में कवियों का दृष्टिकोण मुख्यतः यथार्थवादी रहा है। इसमें मानव-जीवन को उसके समग्र रूप में देखने की चेष्टा की गई है। जीवन के विभिन्न संघर्षों में मानव की जो मूर्ति उभरती है उसी का यथार्थ चित्रण नयी कविता में किया गया है। समाज की पतनोन्मुखी व्यवस्था तथा मध्यवर्गीय व्यक्ति की घुटन, छटपटाहट तथा संघर्ष को इसमें पूर्णतः उभारने का प्रयत्न किया है। आज के आर्थिक वैषम्य का एक यथार्थ चित्र—

सवेरे-साँझ चाय पीता है
डालडा खा खुशी से जीता है।
कौन जाने शरीर में क्या है—
दिल है खाली, दिमाग रीता है,
कलम से मन से काम करता है
यों ही हर दिन को शाम करता है।'[३]

नयी कविता का सौन्दर्य-बोध भी यथार्थ पर आधारित है। जो कुछ भी सत्य है, यथार्थ है, स्वानुभूत है, वह चाहे सुन्दर है या असुन्दर, काव्य में अभिव्यक्त किया जा सकता है। जो जैसा है उसी रूप में व्यक्त करना नयी कविता की विशेषता

१. शब्ददंश—जगदीश गुप्त, पृ० १५
२. तारसप्तक (द्वितीय संस्करण)—प्रभाकर माचवे, पृ० २१३
३. नई कविता (अंक १)—जगदीश गुप्त, पृ० ३२

है। इसमें जीवन के उज्ज्वल पक्ष के साथ-साथ अन्धकारमय यश को भी व्यंजित किया गया है। जीवन मे उल्लास के साथ-साथ दुःख व निराशा का अस्तित्व भी स्वीकार किया है। सौन्दर्य के प्रति नए कवि की दृष्टि वैज्ञानिक है जिसे वह सत्य व तथ्य की तुला पर तौलकर देखना चाहता है। नयी कविता में जीवन के कोमल और कठोर, सुन्दर व विकृत, श्लील तथा अश्लील दोनों ही पक्षों को सम दृष्टि से अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

नये कवि के अनुसार—'जो कुछ भी यथार्थ है, सच्चा है ईमानदारी की उपज है और हमारी भाव-सम्पदा को अधिक समृद्ध बनाता है, वह किसी भी रूप में, किसी भी शिल्प में, किसी भी पीढ़ी के कवि से क्यों न प्राप्त हो, हमारा उत्तराधिकार है और अपना है। इसीलिए सुविधादायक नारों और 'लेबिलों' से मुक्त करके कविता को अपने वास्तविक प्रकृत रूप में प्रतिष्ठा देना आज अत्यन्त ही आवश्यक है।'[1]

नये कवियों के सम्मुख साधारणीकरण व प्रेषणीयता की समस्या भी जटिल रूप में आई है। अपनी उलझी संवेदनाओं को पाठक तक पहुँचाने के लिए समर्थ भाषा की आवश्यकता होती है, किन्तु नये कवि ने अनुभव किया है कि अपनी अनुभूतियों को यथातथ्य रूप में पाठक तक पहुँचाने के लिए आवश्यक है कि भाषा को अधिक व्यापक और सारगर्भित बनाया जाए। ऐसी समर्थ भाषा के द्वारा ही व्यक्ति सत्य को समष्टि का सत्य बनाया जा सकता है। साधारणीकरण के सम्बन्ध में 'अज्ञेय' की मान्यता इस प्रकार है—'जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। उस अर्थ से रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित होता। तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुनः राग का संचार हो, पुनः रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है।[2]

नयी कविता ने रस-सिद्धान्त की अपर्याप्तता सिद्ध करके बौद्धिकता को महत्त्व दिया है। नये कवि ने कविता का लक्ष्य रसानुभूति को न मानकर बौद्धिकता को माना है जिसमें भावुकता का कोई स्थान नहीं है। अधिकांश नयी कविताओं में बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता पड़ती है और यह बौद्धिकता आई है—आज की उलझी संवेदनाओं, मानसिक द्वन्द्वों, कुण्ठाओं और सामाजिक संघर्षों के कारण। वस्तुतः 'रस उसी मनुष्य के लिए काव्य का अन्तिम समाधान हो सकता है जो आज के वैज्ञानिक युग की चेतना से सर्वथा असम्पृक्त रहा हो जिसे संवेग से आगे बौद्धिक व्यक्तित्व की पराजय से क्षोभ न होता हो, जो यथार्थ से विमुख होकर मात्र भावुकता के आदेश से कल्पना-लोक का प्राणी बनने में ही जीवन की सार्थकता समानता हो—उसे अब ऐसे सौन्दर्य-बोध की अपेक्षा होने लगी है जिसमें उसकी भावात्मक सत्ता के साथ-साथ

१. बदलते परिप्रेक्ष्य—नेमिचन्द्र जैन, पृ० ११०
२. दूसरा सप्तक (भूमिका)—'अज्ञेय', पृ० ११, १२

उसके बौद्धिक व्यक्तित्व का भी सन्तुलित समावेश हो।...इसे एक दृष्टि से नए स्तर पर रसास्वादन की प्रतिष्ठा कहा जा सकता है।"[१]

अधिकाँश स्थलों पर अति-बौद्धिकता को अपनाने के कारण क्लिस्टता व दुरूहता की प्रवृत्ति भी नयी कविता में मिलती है। कविता में दुरूहता का समावेश संकेतात्मक तथा प्रतीकवादी भाषा, शब्दों को नए अर्थ देने का प्रयास तथा शिल्प-विषयक अन्य प्रयोगों के कारण ही हुआ है।

उपर्युक्त विचार-बिन्दुओं के आधार पर नयी कविता का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। कथ्य और शैली दोनों ही दृष्टियों से प्रस्तुत काव्यधारा नवीन भाव-वैभव से सम्पन्न है। मानव-व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, क्षणिक अनुभूतियों की अभि-व्यक्ति, नवीन सौन्दर्य-बोध, यथार्थवादी दृष्टिकोण, बौद्धिकता व दुरूहता आदि नयी कविता के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं किन्तु इन सबसे बढ़कर है—शिल्पगत नवीन प्रयोग। नये भाव-बोध के संप्रेषण के लिए नये कवियों ने शिल्प के नये क्षेत्र में भी नये-नये प्रयोग किए हैं। छन्द, तुक, लय आदि की निरर्थकता प्रतिपादित करके भाषा व शब्द-समूह को नवीन भावबोध की अभिव्यक्ति के लिए समर्थ व सशक्त बनाया।

हमारे आलोच्य कवि गिरिजाकुमार माथुर की कविता की मूल संवेदना भी नयी कविता की संवेदना ही है, क्योंकि आज का बुद्धिशील कवि आज के परिप्रेक्ष्य में जो कुछ अनुभव करता है—व्यक्त करता है, वही नयी कविता है। किसी भी कवि को किसी 'वाद' अथवा 'प्रवृत्ति' में बाँधना है तो गलत, क्योंकि हर कवि का विशिष्ट व्यक्तित्व होता है—परन्तु अध्ययन तथा विश्लेषण की सुविधा के लिए ऐसा आवश्यक हो जाता है। माथुरजी की कविता नयी कविता होते हुए भी विशेष भंगिमा की कविता है, क्योंकि नयी कविता का विवेचन करते हुए उसका जो स्वरूप हमारे समक्ष आता है—नयी कविता का वही रूप माथुरजी के काव्य में ज्यों-का-त्यों उपलब्ध नहीं होता इनके काव्य की अपनी ही विशेषता है। अन्य नये कवियों में जहाँ बौद्धिकता, अहं, कुण्ठा, निराशा आदि प्रवृत्तियों की प्रधानता है वहां माथुरजी का दृष्टिकोण मूलतः रोमानी है। उनके काव्य में सरसता, सरलता व मार्दव का सहज सम्मिश्रण है। अतः नयी कविता की सर्वप्रचलित विशेषताएँ उसी रूप में माथुरजी के काव्य में उपलब्ध नहीं होतीं, उनके काव्य की कुछ निजी विशेषताएँ हैं जो नयी कविता-क्षेत्र में उनका विशिष्ट स्थान बना देती हैं, नये कवियों की बाढ़ में उन्हें खोने नहीं देतीं।

मानव की प्रतिष्ठा

व्यक्ति-मानव की प्रतिष्ठा माथुरजी के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। उन्होंने अपने काव्य में लघुमानव की प्रतिष्ठा की है और न अति मानव की। एक साधारण मध्यवर्गीय मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं, सबलताओं सहित काव्य में प्रस्तुत किया गया

१. नई कविता (अंक ३)—जगदीश गुप्त, पृ० ४

है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकारा है, क्योंकि सामाजिक चेतना और व्यक्ति-चेतना को अलग-अलग रख कर नहीं देखा जा सकता। इस विषय में माथुरजी के विचार प्रस्तुत हैं—नयी कविता का क्रमशः विकसित स्वर व्यक्ति की पावनता और सामाजिक गरिमा की आकांक्षा का ही स्वर है। उसने निराकार 'समूह-समष्टि' का पक्ष ग्रहण नहीं किया, यद्यपि 'इकाई' को सामाजिक सन्दर्भ से अलग नहीं देखा, और न दूसरी ओर आत्मलीन ऐकान्तिक व्यक्तिवादिता को ही स्वीकार किया।—वह केवल एक चीज का पक्ष लेती है, इकाई-रूपी 'आदमी का।'[1] उपर्युक्त मान्यता का कवि ने यथास्थान पालन भी किया है। 'अर्ध-आधुनिकों की बातचीत' कविता द्वारा उसने मानव के सही रूप को चित्रित करने का प्रयास किया है। विषम सामाजिक परिवेश की प्रतिक्रिया-स्वरूप आज मानव की स्थिति रेजगारी की भाँति हो गई है जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य कोई भावात्मक सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में व्यस्त है, अपनी समस्याओं में लीन है—

'विकृत हो गये हैं सभी मूल्यमान
सिर्फ घूमता है
रेजगारी-सा इन्सान।'[2]

मानव युग-युग से शक्ति-सम्पन्न सामाजिक शक्तियों द्वारा तिरस्कृत तथा उपेक्षित रहा। उसे 'समूह' के रूप में ही देखा गया (यथा आन्दोलन की भीड़ के रूप में, क्लर्क, मजदूर व नेताओं के पिछलग्गुओं के रूप में) परिणामस्वरूप साधारण मानव मन, मस्तिष्क, भावना व चेतना सभी दृष्टियों से बौने हैं, कुंठित हैं। वैयक्तिक स्वर पर उन्हें चिन्तन-मनन करने का अवसर ही नहीं दिया गया। आज के लघु मानव की स्थिति का एक चित्र—

हम सब बौने हैं
मन से, मस्तिष्क से भी
भावना से, चेतना से भी
बुद्धि से, विवेक से भी
क्योंकि हम जन हैं
साधारण हैं हम नहीं हैं विशिष्ट।'[3]

कवि सहज मानवीय संवेदना से प्रेरित होकर व्यक्ति की मूल प्रकृति को प्रतिपादित करना चाहता है। 'समष्टि' के समूह में व्यक्ति की सत्ता बहुत छोटी है, लेकिन मानव ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि के द्वारा परस्पर-वैमनस्य व द्वेष की दीवारें खड़ी करना चाहता है। स्वयं को स्वामी और दूसरों को अपना क्रीत-दास बनाना चाहता

१. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—माथुरजी, पृ० १३३
२. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ३०
३ वही, पृ० ६

है। मानव की इस प्रवृत्ति का प्रतिपादन कवि ने इस प्रकार किया है—

> **यह है अनुपात**
> **आदमी का विराट से**
> **इस पर भी आदमी**
> **ईर्ष्या, अहं, स्वार्थ, घृणा, विश्वास लीन**
> **संख्यातीत शंख-सी दीवारें उठाता है**
> **अपने को दूजे का स्वामी बताता है**
> **देशों की कौन कहे**
> **एक कमरे में**
> **दो दुनियां रचाता है।'[१]**

इस प्रकार के चित्रण द्वारा कवि व्यक्ति को क्षुद्र या हीन चित्रित करना नहीं चाहता। वह मानव को उसकी समस्त श्रेष्ठताओं व क्षुद्रताओं द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है। उसका विश्वास है कि गलित-गर्हित के साथ आदमी को अंगीकार कर गले लगाना बड़े साहस का काम है। इसे कोई विषपायी 'शिव' ही कर सकता है।[२] यही कारण है कि कवि ने यथास्थान अपने काव्य में व्यक्ति के महत्त्व का ही प्रतिपादन किया है, क्योंकि देवतापन ने हमेशा से मनुष्य को नपुंसक व क्रियाशून्य बनाया है—

> **हम आदमी में देवता है**
> **और देवता बड़ा बोदा है**
> **हर आदमी में जन्तु है**
> **जो पिशाच से न थोड़ा है**
> **हर देवतापन**
> **हमको नपुंसक बनाता है।'[३]**

कवि यह विश्वास भी प्रकट करता है कि क्षुद्रता व विकृतियों के कर्दम में पड़ा हुआ आज का साधारण मानव ही कल का नेता, विश्वनिर्माता, महान् कलाकार अथवा वैभव-सम्पन्न व्यक्ति भी बन सकता है—

> **हम भी हो सकते थे**
> **नेता, विश्व-निर्माता**
> **देश के विधाता**
> **महापुरुष, कलाकार**
> **भद्रलोक**

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ६५, ६६
२. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—माथुर, पृ० १३५
३. जो बन्ध नहीं सका—माथुर, पृ० ४

धन, यश, श्रीवान
अधिकारों के दाता
वैभव, विभूति के अधिष्ठाता ।'[1]

जिस मानव को आज तक 'बेजुबान कठपुतली', 'समूह की एक इकाई' मात्र समझा गया, वही हाड़-मांस का मनुष्य सब कुछ करने की अपार शक्ति भी रखता है । विकृतियों का पुन्ज होने पर भी वह सब कुछ करने का साहस रखता है, क्योंकि उसका आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास अभी मरा नहीं है । इन भावों की अभिव्यक्ति उन्होंने 'निर्णय का क्षण' नामक ताजा कविता में की है—

भीड़ वह नहीं है
जिसे तुम हिकारत से
कहते रहे नाचीज
× × ×
दुतकारते रहे हर बार
तुमने जिसे समझा है
बेजुबान कठपुतली
वह हाड माँस की
सबसे बड़ी ताकत है ।[2]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मानव-यथार्थ के प्रति गिरिजाकुमार माथुर का दृष्टिकोण अन्य नये कवियों से नितान्त भिन्न है । उन्होंने मानवीय विकृतियों को खुलकर उद्घाटन किया है किन्तु अधिकांशतः नये कवियों की तरह लघुता को ही व्यक्तित्व की सार्थकता नहीं माना है । वे मानवीय विकास की सम्भानाओं के प्रति आशंकित न होकर पूर्ण आस्था और विश्वास प्रकट करते हैं । मानव की मौलिक विशेषताओं का प्रतिपादन उन्होंने सशक्त वाणी में किया है । समग्र सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही मानव-गरिमा की प्रतिष्ठा की है । उसे केवल तिरस्कार का ही पात्र नहीं माना है, इसके विपरीत लघु व्यक्तित्व की उन शक्तियों को प्रकाशित भी किया है जो उन्नयन की विशाल आधारभूमियों का द्योतन करती हैं । माथुरजी ने मानव की प्रतिष्ठा इस रूप में की है कि उसकी सचेतन जागरूकता का सतत आभास होता रहे । मानव की लघुता में भी उन्नयन की सम्भावनाओं व निर्माण की क्षमता को खोजा है । अतः व्यक्ति के जागरूक व्यक्तित्व और निर्माणोन्मुखी क्षमताओं का चित्रण माथुरजी के काव्य में सर्वत्र देखा जा सकता है जो नयी कविता में विशेष रूप से अलग उठ खड़ी होती है ।

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ४६
२. निर्णय का क्षण माथुर (हस्तलिखित प्रति के आधार पर) ।

वैयक्तिकता : एक नया दृष्टिकोण

डॉ० शिवकुमार मिश्र ने 'व्यक्तिवाद और उसकी चरम परिणीत अंहवाद को प्रयोगवाद की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है।'[1] गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में व्यक्तित्व की सहज अभिव्यक्ति तो मिलती है किन्तु उसका अहंवादी रूप प्रायः नहीं पाया जाता। कवि का 'मैं' एक का नहीं 'समष्टि' का द्योतक है अतः व्यक्ति-चेतना की अभिव्यक्ति करता हुआ भी कवि सामाजिक चेतना से असंपृक्त नहीं है। उनकी व्यक्तिवादी अभिव्यंजना समाज से अलग नहीं है। सामाजिक कल्याण में व्यक्ति की अम्मान्यता किस प्रकार विसर्जित हो गई है इसका चित्रण कवि ने 'कोणार्क पर तीसरा पहर' कविता में किया है। जहाँ कवि का मैं समष्टि का मैं बन गया है—

मैं अंकित हो गया हूं सम्पूर्ण
हर मूर्तित स्थिति में
घटित हुआ हूं मैं
अब अपना कुछ नहीं है शेष
और अब मैं नहीं हूं।'[2]

युग-जीवन की विषम परिस्थितियों द्वारा कवि का व्यक्तित्व बार-बार टकरा कर उन परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए बेचैन रहता है किन्तु उसका यह प्रयत्न असफल रहता है—

इस दुनिया में
जहां अब दो-तीन वि-मुख दुनिया है
मैं बीच में ध्रुवान्तों के टकराता हूँ
परिधियों से बाहर
विभक्त सत्य सा
पछाड़ खाता हूं।[3]

सामाजिक विषमताओं के परिणामस्वरूप कवि का व्यक्तित्व कुण्ठित हो रहा है, उसकी कोमल भावनाओं की हत्या हो रही है। परिस्थितियों के इस वैषम्य, झुंझलाहट व खीझ को कवि ने 'अन्तिम आत्महत्या' कविता में व्यक्त किया है—

'मांस के लुगदे
चट्टानों की लेई
लोहे के परनाले
मीलों की गोल भाप में

१. नया हिन्दी-काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० २२२
२. जो बन्ध नहीं सका—माथुर, पृ० ८७
३. वही, पृ० २७

चिनगारियों-से उड़ते आदमी
—किसी ने भी
मेरी अन्तिम आत्महत्या नहीं देखी ।'[1]

समष्टि में व्यक्ति की सत्ता एक एक्सट्रा से अधिक नहीं है। कोहरे-सी भीड़ में पल-भर जिसकी सूरत दिखाई देती है और पल-भर में विलुप्त हो जाती है—

'सहसा मैंने चौंक कर
देखा
अपने को उस फिल्म में
परदे की छाती से फूल कर उभरती
एक कोहरे-सी भीड़ में
× × ×
एक अनावश्यक एक्सट्रा
पल-भर को आया
पल में चला गया ।'[2]

कहीं-कहीं कवि में अहंवादी प्रवृत्तियों को भी देखा जा सकता है किन्तु यह अहंकार की पर्याय न होकर स्व-अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति है जहाँ कवि ने सामाजिक सत्य से स्वयं को अलग करने का प्रयत्न किया है। व्यक्तित्व-बोध की सहज अभिव्यक्ति का एक चित्र—

'वह सच था
जो मैंने बोला था
वह उनसे अलग
जो मैंने सोचा था
वह व्रत मेरा है ।'[3]

गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में यथास्थान व्यक्तिवादी परिधि को तोड़ने की व्यग्रता भी मिलती है। ऐसी रचनाओं में समष्टि-कल्याण का स्वर ही प्रधान है। कवि की सहानुभूति उन सबसे है जिन्होंने अपने जीवन में दुःख-दर्द व अभावों को सहन किया है। 'व्यक्तित्व का मध्यांतर' कविता में मानवीय संवेदना को व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है—

इस लाली का मैं तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीड़ित हैं मेरे समान

---

१. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ३६
२. वही, पृ० ४७, ४८
३. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ८०

दुःख, दर्द, अभाव भोग कर भी जो झुके नहीं
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान।"[1]

गिरिजाकुमार माथुर अहंवादी कवि नहीं हैं। मानव-मात्र के प्रति दया, ममता, सहानुभूति का प्रकटीकरण उनके काव्य में सर्वत्र देखा जा सकता है। किन्तु वह इतना अवश्य मानते है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होना चाहिए। रूढिग्रस्त समाज में कवि परिस्थितियों के अन्तर्विरोध को समाप्त करके आने वाले व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहता है। अहं के प्राधान्य के कारण 'कवि शंका करता है, प्रश्न करता है, पूर्व-प्रतिष्ठित मूल्यों के प्रति अनास्था प्रकट करता है, किन्तु आस्था और जीवन की समग्रता और पूर्णता को पकड़ नहीं पाता।'[2] वह स्वयं को कोसता है, समाज को बुरा-भला कहता है। उसकी आस्था सामाजिक मूल्यों से हटकर आत्मकेन्द्रित हो जाती है, फलस्वरूप उसकी लेखनी द्वारा यही निःसृत होता है—मैं कुत्ता हूं, जारज हूँ, खण्डित हूँ आदि। माथुरजी ने इसी अहंवादी वक्तव्य देने की प्रवृत्ति का विरोध किया है। उनका मत है कि 'स्टेटमेण्ट' कविता नहीं हो सकता। क्योंकि जब तक भावुक-वर्ग उस विशेष संवेदना को ग्रहण न कर सके जो कृतिकार देना चाहता है तो उसका कविकर्म व्यर्थ है।

वक्तव्य देने की जिस प्रवृत्ति का माथुरजी ने उपर्युक्त पंक्तियों में विरोध किया है लगभग इसी प्रकार की कुछ पंक्तियाँ उनकी कुछ समय पूर्व-प्रकाशित कविता 'एक अधनंगा आदमी' में देखी जा सकती हैं—

मैं एक पहाड़ हूँ
सफेद गोबर का······
मैं एक जरखेज रेगिस्तान हूँ
सूखे का·········
मैं एक मातमी नदी हूँ
भूख और मौत की उल्टियाँ
करती हुई·········
मैं एक डकारता जंगल हूँ
फटे पेट जनती हुई भीड़ का
मैं तिहरा समुद्र हूँ
कूड़े का········ ।'[3]

किन्तु ये पंक्तियाँ 'काव्य' से सर्वथा असम्बद्ध न होकर कवि के विचारों को

---

१. प्रयोगवाद और नई कविता—डॉ० शम्भुनाथसिंह, पृ० ११३
२. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएँ—माथुर, पृ० १३६
३. एक अधनंगा आदमी—माथुर (हस्तलिखित प्रति के आधार पर)।

संप्रेषित करने में ही अधिक सहायक सिद्ध हुई हैं। कवि का मुख्य उद्देश्य युगीन विकृतियों व सामाजिक वैषम्य को साकार करना है जिसे भावक-वर्ग पूर्णतः ग्रहण कर लेता है।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि माथुरजी की रचनाओं में वैयक्तिक अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति हुई है जिसमें अंहवादी रूप प्रायः नहीं पाया जाता (केवल आत्मसम्मान के रूप में ही देखा जा सकता है)। कवि का 'मैं' 'समष्टि' का द्योतक है। यह केवल अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में ही संलग्न न रहकर उस बहु-संख्यक वर्ग के प्रति भी अपनी कल्याणकारी भावना तथा सहानुभूति प्रकट करता है जिसने सारे जीवन दुःखों व अभावों को सहा है। इस रूप में माथुरजी का योगदान सर्वथा मौलिक है। उन्होंने अपने दुःख, दर्द से अधिक समाज के पीड़ितों की पीड़ा को मुखरित किया है।

अनुभूति की प्रामाणिकता और लौकिक जीवन का पूर्ण उपभोग

अनुभूति की प्रामाणिकता नयी कविता की सर्वश्रेष्ठ विशेषता होने के कारण सभी नये कवियों की भाँति गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में भी मिलती है। कवि ने अपने व्यक्तित्व द्वारा भोगे गये सत्य को, स्वानुभूत अनुभूतियों को ही काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। अपनी अनुभूतियों को उन्होंने आवरणों में लपेट कर किसी माध्यम (प्रकृति, आदि) द्वारा व्यक्त न करके सहज रूप में सीधे-सादे ढंग से अभि-व्यंजित किया है। उन्होंने न तो छायावाद की भांति जीवन की केवल कोमल और सुखात्मक अनुभूतियों की ही प्रतीति कराई है और न प्रगतिवादी कवियों की भांति केवल समूह की पीड़ा, दुःख, दर्द, लघुता व अभावों की ओर दृष्टिपात किया है बल्कि इन दोनों में समन्वय स्थापित करके व्यष्टि और समष्टि की उन सभी अनुभूतियों को चाहे वे सुखात्मक हों या दुःखात्मक—सुन्दर हों या असुन्दर, आशा से सम्बन्धित हों या निराशा से, साकार करने का प्रयास किया है। कवि ने समाज के परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्ति की मनोदशाओं का उनकी संवेदनाओं तथा सूक्ष्म अनुभूतियों को पूरी तीव्रता के साथ स्थापित किया है। 'नया द्रष्टा-कवि' नामक कविता में तो माथुरजी ने स्पष्टतः घोषणा की है कि केवल व्यक्ति व केवल समूह को महत्त्व देने वाले कवियों की कविता खोखली तथा आत्मविज्ञप्ति का खजाना मात्र बनकर रह गई है। उनकी अनुभूतियाँ प्राचीन होने के कारण बूढ़ी हो गई हैं। किन्तु कवि अपने द्वारा अनुभूत सत्य को नई आवाज में पूरी तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करना चाहता है—

खोखले हैं
व्यक्ति और समूह वाले
आत्म-विज्ञापित खजाने
× × ×
कड़कड़ाए रीढ़ रूढियों की

झुरियाँ काँपें धुनी अनुभूतियों की
उस नई आवाज की उठती गरज हूँ ।'[१]

'नया बसंत', 'रेडियम की छाया', 'चूडी का टुकड़ा' आदि रोमानी कविताओं में सूक्ष्म प्रणय-अनुभूतियों को व्यंजित किया गया है । 'मशीन का पुर्जा' कविता में क्लर्क के मन में उठने वाली भाव-तरंगों का सूक्ष्म आलेखन किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि माथुरजी ने चाहे प्रणय-अनुभूतियों की अभिव्यंजना की हो अथवा सामाजिक वैषम्य को साकार किया हो, नगरीय जीवन की ओर दृष्टिपात किया हो या लोक-जीवन का चित्रण, उनके काव्य में सर्वत्र अनुभूति की गहनता मिलती है । उन भाव दशाओं में कवि ने गहराई से बैठकर देखा है, स्वयं अनुभव किया है ।

माथुरजी की रचनाओं में लौकिक जीवन के प्रत्येक क्षण को पूर्णतः भोगने का आग्रह भी पर्याप्त रूप में मिलता है । कवि जीवन की एक-एक अनुभूति को चाहे वह सुख से सम्बन्धित हो या दुःख से भोगना चाहता है । वह जीवन के किसी भी क्षण को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहता, क्योंकि एक-एक क्षण को मिलाकर ही सम्पूर्ण जीवन बनता है । जीवन में व्यक्तित्व-निर्माण में क्षणों के उपभोग को ही परम सत्य मानते हुए कवि कहता है—

छिपती, दिपती, मद्धिम पड़ती
धुंधली, पूरी, फिर कटी फांक
यह मैं
मेरा व्यक्तित्व-बोध
क्षण-जीवन का उपभोग परम ।'[२]

जीवन के सुखात्मक अमूल्य क्षणों को कवि खोना नहीं चाहता वरन् उन्हें सहेज-कर रखना चाहता है—

चाँद-भरी राहों पर
स्पर्शों की गाँठों में
बाँधो ये क्षण अमोल ।'[३]

जीवन के एक-एक क्षण के मिलने से ही इतिहास का निर्माण होता है—

चमको तुम मद्धिम चाँद
अभी फिर बादल आएँगे
उड़ने दो रेशमी बाल
कि क्षण इतिहास बनाएंगे ।'[४]

---

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ८६, ८७
२. वही, पृ० ४१
३. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ६२
४. शिलापंख चमकीले—माथुर, ४२

किसी के समर्पित किए गए अर्थवान क्षण व्यर्थ न जाकर अविस्मणीय इतिहास का निर्माण करते हैं—

'अपना कुछ नहीं
क्यों इस पर पछताए मन
अर्पण का हर क्षण
इतिहात बना जाता है ।'[1]

अतः स्पष्ट है कि माथुरजी की क्षणवादी विचारधारा अन्य नये कवियों से पूर्णतः भिन्न है। उन्होंने अपनी रचनाओं में सर्वत्र उस सूक्ष्म व अर्थवान क्षण को पकड़ने की चेष्टा की है जिसमें क्षणिक भोगवादी प्रवृत्तियों का प्राधान्य न होकर मानव-जीवन की गरिमामय प्रतिष्ठा की गई है जिसमें आस्था, विश्वास व सात्त्विक भावों की प्रधानता है। कवि भौतिक दृष्टि से किसी एक सुखद क्षण के लिए सारा जीवन होम करना नहीं चाहता वह तो जीवन के एक-एक क्षण से सम्पूर्ण जीवन को गरिमामय बनाना चाहता है। वह वर्तमान क्षण को ही शाश्वत मानकर अनास्थावादी नहीं बना है। उसे स्वर्णिम इतिहास पर जितना गर्व है उतना ही आने वाले भविष्य पर आस्था और विश्वास भी है।

युगीन-भावबोध की अभिव्यक्ति

गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में युगीन-जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों विचारों व मान्यताओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। माथुरजी चूँकि नगरीय बोध के कवि हैं, नागर-चेतना उनके काव्य में प्रधान रूप से आई है अतः अधिकांशतः शहरी जीवन के विविध पक्षों को ही कवि ने काव्य का विषय बनाया है। वैज्ञानिक उपकरणों ने मानव-जीवन में किस प्रकार परिवर्तन ला दिया है इसका भी स्पष्ट संकेत इनकी कविताओं में मिलता है।

आज मानव-जीवन में सर्वत्र उलझनें, चिन्ता, नैराश्य बौद्धिकता आदि की ही प्रधानता है जिसके परिणामस्वरूप उसे स्वयं उचित राहें नहीं सूझती कि वह किधर जाए? कौन से जीवन-मूल्यों को अपनाए। उसे सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार दिखाई दे रहा है। इस समसामयिक युग-बोध की अभिव्यक्ति कवि ने इस प्रकार की है—

'फेंके हुए गुलझट्टे बालों के
सेमली दिमाग में
साँप और सीढ़ी के खेल-सी
उलझी, चिती—चारों तरफ
राहें ही राहें हैं

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ४४

काजल के थूके हुए भाग हैं
चिराग में।'[1]

सार्वकालिक सत्य के प्रति अविश्वासमयी भावना व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि 'सत्य की विजय होती है' यह परिभाषा आधुनिक युग में निष्प्राण हो गई है, क्योंकि आज का सत्य वह है जो विजयी हो जाये, चाहे सत्य के माध्यम से अथवा छल-कपट व असत्य से—

'होती विजय सत्य की
यह पुरानी परिभाषा है
जो विजयी हो जाये
आज वही सत्य है।'[2]

आज व्यक्ति की सत्ता तमाशबीन से अधिक नहीं है। और सत्य, सत्य न रहकर भीड़ का केवल नारा मात्र रह गया है—

'आदमी तमाशबीन
सत्य : भीड़ नारा।'[3]

युगीन-भावबोध का यथातथ्य चित्रांकन करने के साथ-साथ कवि ने नयी वैज्ञानिक चेतना के उन तथ्यों का संधान भी किया है जिन्होंने समसामयिक जीवन में समूल परिवर्तन ला दिया है। नवीन वैज्ञानिक उपकरणों के परिणामस्वरूप आज के मानव-जीवन में और विशेषकर नगरीय जीवन में काफी परिवर्तन आ गया है। एक आधुनिक ड्राइंग-रूम का चित्र जो वैज्ञानिक उपकरणों से पूरी तरह सज्जित है—

ड्राइंग रूम आधुनिक
बेत-सोफे, कालीन-दीवान
चटाई रोड्स, फिशबोल
एक्योसियम की पत्तीदार रोशनी
मैगजीन-पुस्तकें
कैक्टाई, एब्स्ट्रेक्ट आर्ट
धातु के अनहोने पक्षी।'[4]

आधुनिक औद्योगिक और रासायनिक युग की संवेदनशीलता माथुरजी की 'हब्श देश' शीर्षक कविता में उपलब्ध होती है—

उगल रही हैं खानें सोना
अभ्रक, ताँबा, जस्त, क्रोनियम

---

१. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ८
२. वही, पृ० १८
३. वही, पृ० १९
४. वही, पृ० २९

टीन, कोयला, लौह, प्लेटिनम
युरेनियम, अनमोल रसायन
कोपेक, सिल्क, कपास, अन्न, धन
द्रव्य फोसफेटो से पूरित ।[1]

विज्ञान के नये उपकरणों को काव्य-सामग्री के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने नयी परम्परा का सूत्रपात किया है। वैज्ञानिक उपकरणों की भाँति आधुनिक मानव के दिल और दिमाग भी लोहे और इस्पात की भाँति बन गए हैं। जीवन के हर क्षेत्र में बनावट और दिखावा ही अधिक दृष्टिगत होता है और इस दिखावटी व कृत्रिम सभ्यता का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है—मध्यवर्ग पर—

लोहा, सीमेंट, काँच, कोलतार
चलते हैं तार-खिचे मध्यवर्ग के पुतले
रोल्ड गोल्ड का कल्चर, चमकते मुलम्मे से

× × ×

लोहे के दिल दिमाग, हाथ इस्पात के
निरवधि समय को जो अंकों में बांधते ।'[2]

वैज्ञानिक उपकरणों की तीव्रगामी प्रगति के फलस्वरूप बदलते युग-परिवेश के अनुरूप ही कवि ने चिरपरिचित सामान्य विषयों को काव्य का माध्यम बनाया है। यथा—चूड़ी का टुकड़ा, खत, जूड़े के फूल, क्रानिक मरीज, रेडियम की छाया, चलती हुई रील आदि। 'खत' आधुनिक युग में विचार-विनिमय का सबसे सस्ता व लोकप्रिय साधन है। इसका सम्बन्ध समाज के सभी वर्गों के व्यक्तियों से है—चाहे वे अमीर हों या गरीब, पढ़े-लिखे हों या अनपढ़ सब को कवि ने घरेलू संवाददाता के रूप में इस प्रकार चित्रित किया है—

खत घरु संवाददाता है
हर घर में निजी सुख-दुःख कहानी
लिए आता है
मगर मन चाहता है
वह जभी आए
हंसी लाए
खुशी लाए ।'[3]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि युगीन संवेदना की समग्र और सक्षम अभिव्यक्ति में माथुरजी के काव्य में मिलती है। युगीन-भाव सत्यों को वैज्ञानिक चेतना से

---

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ५८
२. वही, पृ० ७१, ७२
३. वही, पृ० २८

उद्भूत परिवर्तनों को कवि ने पूरी तीव्रता से रूपायित किया है। युगजीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए कवि ने चिरपरिचित सरल व सामान्य विषयों को ही चुना है।[1]

यथार्थ-बोध

माथुरजी ने आधुनिक युग-जीवन के संघर्षशील यथार्थ को काव्य में पूरी समग्रता से संप्रेषित किया है। मध्यवर्गीय चेतना का कवि होने के कारण उन्होंने मध्य-वर्ग की यथार्थ-स्थिति व कठोर वास्तविकताओं का मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने दुख, दर्द, कुण्ठा, अभावों तथा उलझी संवेदनाओं को आज के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पूरी तिक्तता से अभिव्यंजित किया है। मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की कुण्ठा, अवसाद, निराशा के यथातथ्य चित्र प्रस्तुत किए हैं। आज के मध्यवर्ग का सबसे दयनीय पात्र है—क्लर्क। सारा दिन कठोर परिश्रम करके भी वह अपने परिवार का भरणपोषण नहीं कर पाता। जीवन की आवश्यक वस्तुएँ उसके लिए दुर्लभ हो गई हैं। उसके जीवन से प्रेम, आस्था, उल्लास आदि कोमल भावनाएँ समाप्त हो गई और रह गई है—केवल कागज की मोटी-मोटी दीवारें, जो कभी खत्म रहीं होतीं।

कुहरे डूबी छाई है बेहोश चांदनी,
लेकिन वह चलता मशीन की सिलहुट जैसा
उसकी आँखों के संमुख कुछ और नहीं है
केवल मिनट-मिनट पर बढ़ती,
कागज की मोटी-सी दीवार खड़ी है
श्वेत-प्रेत की मूरत जैसी।'[2]

आज के मानव-जीवन को कवि ने क्रानिक मरीज के रूप में चित्रित किया है जिसमें ऊब, घुटन, बेचैनी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसका विश्वास मर चुका है—

जीवन अपाहिज है
रोगी असाध्य बहुत साल से
× × ×
ऊब, घबराहट
बेचैनी, बोरियत
आशंका, आकुलता, चिन्ता, अनास्था
क्षणजीवी, त्वचासुखी
बदमिजाज, नुक्ताचीं
अपने में लीन
किन्तु आत्म-विश्वासहीन।'[3]

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ६५
२. वही, पृ० ६५
३. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० २२, २३

वैज्ञानिक उपादानों की निरन्तर उन्नति ने मानव-जीवन को जहाँ विकास की ओर अग्रसर किया है वहीं अपनी लौह यान्त्रिकता में जकड़ लिया है। कारखानों की बड़ी-बड़ी चिमनियों से उठते अग्निधूम ने जीवन की समस्त कोमल भावनाओं को सोख लिया है और शेष रह गया है—मजबूरियों, लाचारियों व विवशताओं का जहर—

और दूसरी ओर राक्षसी भीम चिमनियाँ
अस्थि-धूम निर्बाध उगलतीं
इस स्पंजी दानव ने
जीवन का अमृत सोख लिया है
केवल संचित होता जाता गरल भयंकर।'[१]

मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन में व्याप्त कुंठा, खीझ व अवसाद का यथार्थ चित्र कवि ने इस रूप में प्रस्तुत किया—

मेरे मन में आकांक्षाओं का ढका मौन
निचोड़ी हुई लालसाएं
भोगता दंभ।'[२]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि माथुरजी की कविताओं में युगीन परिवेश व सामाजिक यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। वर्ग-वैषम्य व आर्थिक विषमता को कवि ने सहज व बोधगम्य ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने एक ओर मध्यवर्ग व निम्नवर्ग की दुरवस्था का चित्रण किया है तो दूसरी ओर उच्च वर्ग की ऐश्याशी का। वस्तुतः तुलना द्वारा कवि मध्यवर्ग की विवशताओं के प्रति युग की संवेदना जगाना चाहता है, केवल बौद्धिक सहानुभूति देना नहीं चाहता। यही कारण है कि माथुरजी के यथार्थ चित्र अश्लील व घृणास्पद न बनकर युगीन चेतना को पाठक-वर्ग के समक्ष साकार करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

नवीन सौन्दर्य बोध

गिरिजाकुमार माथुर के सौन्दर्य-बोध में सत्य व यथार्थ का आग्रह अधिक परिलिक्षित होता है। छायावादी कवियों की भाँति उनके काव्य में केवल कल्पना-प्रसूत सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते। युगीन सौन्दर्य ने उन्हें जितना आकर्षित किया है उतना ही कालुष्य व विकृतियों ने। उनकी दृष्टि में सुन्दर और असुन्दर दोनों ही सत्य है। समसामयिक युग-जीवन में दोनों का समान महत्त्व स्वीकार किया है, केवल सौन्दर्य पक्ष की अभिव्यक्ति द्वारा कवि ने एकांगी दृष्टिकोण का परिचय नहीं दिया है। उन्होंने सर्वत्र यही प्रतिपादित किया है कि जो कुछ भी सत्य है, वह चाहे सुन्दर हो या असुन्दर,

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १२७, १२८
२. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० १७

काव्य में व्यंजित किया जा सकता है। यही कारण है कि जहाँ उन्होंने सुन्दर, कोमल व पवित्र भावों—छवियों को काव्य में निरूपित किया है, वहीं असुन्दर व कलुषित को भी वे छोड़ नहीं पाए हैं।

प्रिया के सौन्दर्य का एक कोमल, मूर्त और मांसल चित्र कवि ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है—

जब तुम पहली बार मिली थी
पीले रंग की चूनर पहिने
देख रही थी चोरी-चोरी
मेरे मीठे गीत प्यार के
मैंने पास अचानक जाकर
छीन लिया था उन्हें
तुम्हारे मेंहदी-रंगे हुए हाथों से
और लाल होकर क्वांरी लज्जा से तुमने
मुख पर आँचल खींच लिया था
जल्दी से निज चांद छिपाने।'[1]

माथुरजी ने जहाँ प्रणयजन्य सूक्ष्म भाव-मंगिभाओं का सुन्दर चित्रण किया है वहीं मानव-जीवन में पग-पग पर आने वाली कठिनाइयों तथा अभावों का मार्मिक चित्रण भी किया है। आज के संघर्षशील युग में मनुष्य जीवन की आवश्यक वस्तुओं को जुटा पाने में असमर्थ है। उसकी पतनोन्मुखी आर्थिक अवस्था के कारण दूध, घी जैसी स्वास्थ्यवर्धक वस्तुएँ स्वप्नवत् हो गई हैं। विभिन्न आवश्यकताओं के जमघट में उसका जीवन उलझकर रह गया है—

'आज पग-पग पै क्लेश कठिनाई
घर से खलिहान तक है अन्न नहीं
कारखानों से लेकर बस्ती तक
है न कपड़ा कहीं पहनने को
दूध घी का यहाँ पै चर्चा क्या
जब न चीनी, न गुड़, न दाल-नमक
हो गया स्वप्न किरासिन का तेल
इनका अब ख्याल है इतिहास की बात
बढ़ रहा नित नया उलझाव घना।'[2]

विज्ञान की दिनोदिन उन्नति को जहाँ माथुरजी श्रेयस्कर मानते हैं वहीं उनका यह विश्वास भी है कि जीवन की कोमल व रंगीन भावनाएँ मशीनों की घटाओं से

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ६२
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ३०, ३१

विलुप्त-सी होती जा रही हैं। जीवन की सरसता, कोमल भावनाएँ समाप्त होती जा रही हैं।

मिट रही रंगीन जीवन की घटा
छा रही हिंसक मशीनी घन घटा
आज जीवन को चुनौती मौत की
नीति कैदी है कुटिल कलधौत की।'[१]

भूख, बीमारी, गरीबी व गन्दगी के कारण जहाँ जिन्दगी कौडियों के मोल बिकती हो वहाँ जन्मदिन की खुशी महत्त्वहीन है। विषमताओं को सहते-सहते आज मानव-जीवन मृत्यु से भी भारी हो गया है। दुख, दैन्य तथा अभावों से भरे जीवन की झांकी कवि ने 'तैंतीसवीं वर्षगांठ' कविता में प्रस्तुत की है—

'जन्मदिन की क्या खुशी होगी उन्हें
जिन्दगी है मृत्यु से भारी जिन्हें
भूख, बीमारी, गरीबी, गंदगी
कौडि़यों के मोल बिकती जिन्दगी।'[२]

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि जीवन के उज्ज्वल पक्ष के साथ-साथ माथुरजी ने अंधकारमय पक्ष को भी व्यंजित किया है। जीवन में खुशी व उल्लास के साथ दु:ख और निराशा के अस्तित्व को भी स्वीकार किया है। समाज में पाई जाने वाली विषमताओं को (विशेषकर आर्थिक विषमता) यथार्थ-दृष्टि से अभिव्यंजित किया है। अत: जीवन के सुन्दर व असुन्दर दोनों ही पक्षों के प्रति कवि का समवाय दृष्टिकोण है। समाज की विकृतियों को, असुन्दर पक्ष को उन्होंने कहीं भी उपेक्षित दृष्टि से नहीं देखा है।

रोमानी तत्त्व

युगीन यथार्थ के सफल चित्रण के बावजूद माथुरजी मूलत: रंग, रस और रोमांस के कवि हैं। उनके आरम्भिक काव्य-संग्रह 'मंजीर' से लेकर नव्यतम काव्य-रचनाओं में यह मूल वृत्ति परिलक्षित हो रही है। कवि ने चाहे वैयक्तिक अनुभूतियों की निश्छल आत्मभिव्यक्ति की हो या सामाजिक यथार्थ को वाणी प्रदान की हो अथवा नवीन वैज्ञानिक चेतना को रूपायित किया हो—उनकी व्यक्तिगत रोमानी आभा सर्वत्र उन्हें नये रूप में अभिचित्रित करती है। इस प्रवृत्ति से वे कहीं भी अछूते नहीं रहे हैं। यही कारण है कि 'शिलापंख चमकीले' तथा 'जो बंध नहीं सका' आदि प्रौढ तथा चिन्तन-प्रधान काव्य-संग्रहों में भी रोमानी रंगों की अनेक रचनायें मुग्ध करती हैं। 'समय की मिट्टी' कविता में प्रिय समर्पण का अनूठा चित्र—

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ६१
२. वही, पृ० ६२

तुम्हारे मन प्राण का पहिला समर्पण
कितना गहरा, अप्रतिम, अनूठा था
अब भी मुझे याद है ।'[१]

कहीं-कहीं पूर्व-दीप्ति के रूप से भी प्रिय-स्मृति को कवि ने साकार किया है। उनकी प्रिया नयन झुकाए लजाती, शर्माती जब पहली बार मिलने के लिए आई थी—

किसी एक रंगीन याद की
जलती मशाल आग
× × ×
छन भर उजल कर फिर डूब गई
× × ×
शायद वह पहली बार मिलने पर
नयन झुका चौंकी शरमाई थी
उस लाल शरम की आंच
देखने वाले मुंह पर भी तैरी लहराई थी ।'[२]

बसन्त के मदमाते मौसम में प्रिय की उँगलियों द्वारा आर्केस्ट्रा वातावरण को और भी अधिक रंगीन व मतवाला बना रहा है। ऐसे स्थलों पर कवि ने रोमानी भावों की सर्वथा नवीन रूप में अभिव्यक्ति की है जिसमें भोग व वासना की नहीं पवित्रता व सुकुमारता की प्रधानता है। यथा—

सहजन के सफेदी-मायल फूलों सा
तुहिनमय उजेला
उतरती फरवरी की मीठी सुनसान शाम
बारीक रोएंदार हवा में तैर जाता है
फूले हुए नींबू रातरानी की महक का
महीन मन्द
बहुत दूर बजता
मुलायम झनक आर्केस्ट्रा
उंगलियाँ तुम्हारी हैं ।'[३]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गिरिजाकुमार माथुर का दृष्टिकोण अन्य नये कवियों से भिन्न है। उनमें उत्तेजित वासना का वह रूप नहीं मिलता जो अज्ञेय, धर्मवीर भारती, भारतभूषण अग्रवाल, राजेन्द्र किशोर, शान्ता सिन्हा तथा विनोद

---

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० १३
२. वही, पृ० ५४
३. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ५४

पाण्डे आदि की रचनाओं में मिलते हैं। इनके रोमानी चित्रों में मूर्तता व मांसलता तो है किन्तु अधिक सुख की प्राप्ति के लिए भोग व वासना से पूर्ण चित्रों का सर्वथा अभाव है। इनकी कविताओं में अधिकांशतः प्रिया के रूप-चित्रण तथा मिलन-क्षणों के स्वच्छ चित्र मिलते हैं जहाँ अश्लीलता की नहीं स्वच्छता, प्रांजलता, सुकुमारता तथा सूक्ष्मता की प्रधानता है।

आस्था, विश्वास व समष्टि-मंगल की भावना

गिरिजाकुमार माथुर अनास्था, निराशा व अविश्वास के कवि नहीं हैं। वे आस्था, विश्वास व संघर्ष के कवि हैं। उनकी यही प्रवृत्ति उन्हें अन्य कवियों से भिन्न करती है। उनकी रचनाएँ मानव को कुंठा व निराशा के कुहासे से बाहर निकाल कर कर्मण्यता की ओर अग्रसर करती हैं। वर्तमान दुखों व क्लेशों को देखकर कवि निराश नहीं होता वरन् संघर्षरत होकर दूषित व्यवस्था को परिवर्तित कर नवनिर्माण की प्रेरणा देता है। माथुरजी ने तो स्पष्टतः घोषित किया है कि विरोधी तत्त्वों से संघर्ष करने की शक्ति के अभाव में ही अनास्था का जन्म होता है। इनका मत है, 'प्रयोगवादी काव्य में अनास्था की जो प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है उसके मूल में वह मनःस्थिति सक्रिय दिखाई पड़ती है जो जीवन के विरोधी तत्त्वों से क्षुब्ध है। इसमें एक ओर तो जीवन के विरोधी तत्त्वों से संघर्ष करने या त्राण पाने की शक्ति या दृढ़ता का अभाव है और दूसरे, किसी भी विचारादर्श पर आस्था और विश्वास की भावना की कमी है।'[1]

विषम परिस्थितियों की पीड़ाओं को झेलते हुए भी स्वर्णिम भविष्य की आशा माथुरजी के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। कवि वर्तमान के दुखों व कष्टों को दूर करके भविष्य के सुन्दर सपने संजोते हुए कहता है—

पर इस धुएं के पर्दे की गाठों में भी
दिखती है मुझको दूरी से नई कहानी
वर्तमान के पीले मुरझाए खंडहर पर
आने वाली नई निशानी।'[2]

वर्तमान के कुहासे में भविष्य की सुन्दर कल्पना उपर्युक्त पंक्तियों में व्यक्त हुई है। आगत भविष्य के प्रति आस्था का एक अन्य उदाहरण—

ये अम्बर-चुम्बी दीवारें
नीली पड़कर गिर जायेंगी,
और भरे पत्थर-सा यह युग बन जायेगा
नई जिंदगी की अविजेय नींव का पत्थर।'[3]

१. आलोचना (जुलाई, १७५४)—माथुर, पृ० ६६
२. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १३३
३. वही, पृ० १२८

कवि वर्तमान की विभीषिकाओं को मिटाकर मंगलमय भविष्य के आगमन की प्रतीक्षा में है। उसका विश्वास है कि आज शोकपूर्ण समाज में आशारूपी सुनहरी किरण का पदार्पण अवश्य होगा—

नई उषा आ रही
शोकमय एक समूची आदि कौम पर
नई उषा आ रही
सैकड़ों साल बाद इन पिरामिडों पर।'[1]

आज विश्व में जब सर्वत्र कुटिलता और त्रास का वातावरण छाया हुआ है तब भी कवि को जनकल्याण का, सत्य और शिव का पूर्ण विश्वास है—

विश्व में अब कुटिलता है, त्रास है
सत्य शिव का तब हमें विश्वास है
और है विश्वास जन कल्याण का
रंग, रस का, त्याग का बलिदान का।'[2]

आशावादी स्वर में कवि कहता है कि एक दिन ऐसा आएगा जब संसार से दुःख की सत्ता समाप्त हो जाएगी और मानव ऐसे नये समाज की रचना करेगा जहाँ दुःख व निराशा का नहीं सुख व उल्लास का वातावरण होगा—

'इसलिए कि रुकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पास लिये आता है मनुज समाज नया
जब दुःख की सत्ता भर जाएगी
पीले बासी फूलों सी।'[3]

माथुरजी की रचनाओं में केवल जन-कल्याण की भावना या मंगलमय भविष्य की कामना ही व्यक्त नहीं हुई है वरन् संघर्ष को भी कवि ने नवनिर्माण का आधार माना है। उन्होंने निष्क्रियता को प्रश्रय न देकर कर्मठता का महत्त्व प्रतिपादित किया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष को महत्त्व देते हुए कवि कहता है—

'और क्योंकि हमने भुजबल से
अपना मार्ग प्रशस्त बनाया
दुःखों से कर युद्ध
परिस्थितियों से लड़कर
और जूझकर भारी से भारी अंधड़ से
अपना ऊँचा सिर न झुकाकर

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ६०
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ६३
३. वही, पृ० २१

'केवल मिथ्या आदर्शों से नहीं
न ही कोरी रंगीन कल्पनाओं से
किन्तु जिन्दगी की मिठास का रस लेने को
हमने कटुता से खुलकर संघर्ष किया है।'[1]

कवि अपना सब कुछ देकर भी जीवन में आस्था और विश्वास की कामना करता है। नियति के क्रूर दाढ़ों में अपने सब सुख-साधनों को सौंपने पर भी जीवन में केवल आस्था और विश्वास की इच्छा व्यक्त करता है—

'मैंने कहा नियति से
सब खत्म कर दे
लूट ले
एक मेरी आस्था
विश्वास रहने दे।'[2]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि माथुरजी के काव्य में सर्वत्र मंगलमय भविष्य के प्रति आस्था, विश्वास की प्रस्तुति का परिचय मिलता है। वर्तमान के क्लेश उनकी आस्था को डगमगाने नहीं देते। उनके इस विश्वास के पीछे, कर्म व संघर्ष की प्रवृत्ति सतत् विद्यमान है। नयी कविता की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए, उपर्युक्त प्रवृत्ति का विवेचन माथुरजी ने इस प्रकार किया है—'उसकी (नयी कविता की) नजर अतीत की श्यामलता और वर्तमान के संघर्ष से आगे भविष्य पर टिकी है। जीवन की संघर्ष-मय कटुता के बीच भारतीय आदर्शानुसार उसकी आशा की लौ निष्काम्य है, क्योंकि उसे विश्वास है कि आज चाहे जो स्थिति हो मानवता का भविष्य कल्याणमय है और वह हर अमंगल शक्ति पर निश्चित रूप से विजय प्राप्त करेगी। इसलिए नयी कविता पलायन, पस्ती और पराजय की कविता नहीं हो सकती।'[3]

सांस्कृतिक परम्परा का नया प्रस्तुतीकरण

धर्म, दर्शन, नीति तथा संस्कृति आदि जीवन के उच्च मूल्यों में नये कवि की आस्था नहीं रही है किन्तु माथुरजी इस वर्ग के कवियों से बिल्कुल अलग हैं, क्योंकि उन्हें प्राचीन भारतीय संस्कृति पर, राम, बुद्ध, कबीर आदि महान् युगपुरुषों पर गर्व है। यही कारण है कि नवीनता के मोह में वे स्वयं को सांस्कृतिक परम्परा से अलग नहीं कर सके। इसीलिए उन्होंने परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को नवीन अर्थ प्रदान करके युग-जीवन के अनुकूल बनाने की चेष्टा की है। पौराणिक पात्रों के माध्यम से समसामयिक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से उनकी प्रमुख कविताएँ

१. धूप के धान—माथुर, पृ० २६
२. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ८१
३. नई कविता (अंक १, १९५४)—माथुर, पृ० ७६

हैं—'वैशाली', 'कबीर', 'बुद्ध', 'राम' (नाश और निर्माण में) 'पृथ्वी-कल्प' तथा 'धरादीप' (धूप के धान) में।

भारतीय इतिहास में अनेक राजाओं के तख्ते-ताऊस एक क्षण में बने और बिगड़े किन्तु अमर गीतों व साखियों के रचयिता कबीर युग-युग तक इसी प्रकार जाने जायेंगे। उन्होंने दो सभ्यताओं (हिन्दू और मुस्लिम) के विलग छोरों को अपने काव्य के माध्यम से मिलाना चाहा, उनमें भावात्मक एकता स्थापित करने की चेष्टा की, राम और रहीम के अन्तर को समाप्त कर एक ईश्वर की स्थापना की—

'उलटते हैं एक क्षण में तख्त-ताऊसी हजारों,
किन्तु गीतों-साखियों के कारवां ये,
चल रहे हैं युगांतर से
दूर की दो सभ्यताओं के विलगतम छोर छते
ओ महागायक तुम्हारे बंधे स्वर में
मिल गए थे, रागमय हो,
एक सुन्दर बिन्दु की सीमा-किनारे,
दूर के मंसूर-शंकर।'[1]

मंसूर और शंकर की इस एकता द्वारा कवि आज के प्रजातान्त्रिक युग में धर्मनिरपेक्ष नीति का समर्थन करता हुआ प्रतीत होता है जिसे युगपुरुष कबीर ने कई सौ वर्ष पूर्व ऐसे युग में स्थापित किया जो धार्मिक चेतना की दृष्टि से अन्धकार-युग था। कवि यही प्रतिपादित करना चाहता है जो आज का भारतीय समाज भी कबीर द्वारा दिखाए मार्ग का अनुसरण कर रहा है।

मानवतावादी कवि होने के नाते माथुरजी ने एक सार्वभौम, सत्य की प्रतीति कराई है कि दानवता से मानवता सदैव विजयी रही है। दानवी प्रवृत्तियाँ चाहे कितनी बलवती क्यों न हो जाएँ किन्तु उनका नाश अवश्यम्भावी है। आज वैज्ञानिक उपकरणों के विकास ने जहाँ मानव-जीवन को सुखी व सम्पन्न बनाया है वहीं अणुबम के माध्यम से उसके विनाश की तैयारी भी कर ली है। आज एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का, एक देश दूसरे देश के खून का प्यासा बना हुआ है। मानवतावादी प्राचीन आदर्श, लगता है जैसे धीरे-धीरे विलुप्त हो रहे हैं। ऐसे तिमिराच्छन्नकाल में वैज्ञानिक यन्त्रों के लौह-पाश में जकड़े आधुनिक मानव को आज भी उस प्राचीन इतिहास की याद बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है जब मानवीय प्रवृत्तियों का दानवी प्रवृत्तियों से संघर्ष हुआ था और मानवता की सकार मूर्ति 'राम' के अग्नि;सहस नेत्रों में लंका के सारे पाप, कलुषित विचार भस्मसात हो गये थे—

तम-डूबे इस यन्त्र-काल में
आज कोटि युग की दूरि से यादें आतीं,

---

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १०७, १०८

'शंभु-चाप से अविच्छिन्न इतिहास पुराने
और वज्र-विद्युत से पूरित अग्नि-नयन वे।'[1]

आधुनिक युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है—युद्ध। युद्ध के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि भारत का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि देश के जिस कार्य (प्रेम, सत्य व अहिंसा की स्थापना) को बड़े-बड़े राजाओं की क्रूर तलवारें अपने अत्याचारों के बल पर सम्पन्न नहीं कर सकीं उसी कार्य को 'बुद्ध' जैसे महान् व्यक्तित्व ने प्रेम द्वारा सम्पन्न किया। इतिहास से उन क्रूर राजवंशों के नाम मिट सकते हैं किन्तु देश में प्रेम और अहिंसा की स्थापना करने वाले उस युग-पुरुष का नाम सदैव अमर रहेगा—

'नहीं रहे वे महावंश अब,
वे कनिष्क से, शिलादित्य से नाम हजारों
किन्तु तक्षिला, सांची, सारनाथ के मन्दिर
और ज्योतिःस्तम्भ धर्म के बोल रहे हैं
जिसे तोड़ने की, क्रूसेडों की तलवारें
वहाँ विश्व, जय हुई प्यार की एक घूँट से।'[2]

'पृथ्वीकल्प' माथुरजी का एक प्रतीक-नाटक है जिसमें इतिहास को पृथ्वी.गाथा के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रतीक-नाट्य में 'आधुनिक युग के वैज्ञानिक चमत्कारों को, अन्तरिक्ष विजय की नयी संभावनाओं को और उनके प्रकाश में मानवता के भविष्य की कल्पनाओं को साकार करने के लिए कवि ने पृथ्वी-कल्प के रूप में अत्यन्त साहसिक प्रयास किया है।'[3]

'धरती की सुन्दरतम
सृष्टि इनसान है
संशय, भय, घृणा,
युद्ध, लिप्सा शैतान है।
× × ×
जड़वादी पंजों में जकड़ी संस्कृतियों पर,
जीत इनसान की
पृथ्वी की गाथा
इतिहास की कहानी।'[4]

कवि ने यह सत्य प्रतिपादित किया है कि जब-जब पृथ्वी पर अत्याचारों की

---

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १२८
२. वही, पृ० ११४
३. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डॉ० नगेन्द्र पृ० १३३
४. तारसप्तक—सं० अज्ञेय, पृ० १७४

तिमिराच्छन्न रात्री घिरती है—तब-तब सभ्यता व संस्कृति की नयी ज्योति प्रज्ज्वलित होती है जिसमें मानवता-रूपी बाती सर्वोच्च शिखर पर रहती है—

> 'धरती पर घिरती
> जब कभी अमावस काला
> तभी नई संस्कृति की
> उठती है दीपाली
> नई चमक का दीप
> लिए कर में वह आती
> ऊँची हो जाती है
> मानवता की बाती।'[1]

इस प्रकार माथुर जी ने देश के साँस्कृतिक इतिहास को नवीन रूप में सम-सामयिक युग-बोध से अनुस्यूत करके प्रस्तुत किया है। पौराणिक पात्रों का वर्णन-मात्र करना कवि का उद्देश्य नहीं था वरन् उसके माध्यम से आज के प्रजातान्त्रिक युग में मानवतावादी विचारों की प्रतिष्ठा करना था।

इतिहास का पुनः मूल्यांकन

'जो बंध नहीं सका' काव्य-संग्रह में 'इतिहास' शीर्षक से कुछ कविताएँ संग्रहीत हैं (यथा—'इतिहास का सिंहासन,' 'इतिहास का हंस', 'इतिहास एक आदिम न्याय', 'इतिहास का बच्चा' आदि) जिनमें इतिहास के प्रति विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। इन कविताओं में इतिहास के विविध सत्यों के साथ-साथ आधुनिक युग-बोध को भी साकार किया गया है। इतिहास को अन्धा, बहरा, लंगड़ा तथा गूँगा चित्रित किया है। गूंगे इतिहास का एक चित्र—

> 'युद्ध, ध्वंस तूफान
> पृथ्वी की बाल-मूर्ति
> पंचामृत रक्त-स्नान
> न्याय असहाय
> अन्याय दृप्त बलवान
> स्वीकृति सबकी समान
> इतिहास गूँगा है।'[2]

नृशंसता, क्रूरता से भरे आततायी युग प्रगतिशील संस्कृति के सार्थवाह कहलाते हैं, सभ्यता के विकास की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कहलाते हैं—

> 'बर्बरता, क्रूरता, नृशंसता, आतंक-भरे
> दिग्विजय वाले, चक्रवर्ती, आततायी युग

---

१. धूप के धान—माथुर, पृ० १३४
२. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० १५

कहलाते प्रगतिशील
संस्कृति के सार्थवाह ।'[१]

जय और पराजय के नियम को कवि ने इतिहास के आदि न्याय के रूप में प्रस्तुत किया है। इतिहास ने सदैव विजयी का गुणगान किया, उसे ही शिव माना है और पराजित को सदैव अशिव ही माना गया। कवि शंका प्रकट करते हुए कहता है कि जो मिट गया, समाप्त हो गया, क्या वह सब कुछ असत्य था ? और जो विद्यमान है, भले ही कितना क्रूर व आततायी क्यों न हो सत्य ही रहेगा ? इसका उत्तर दें नहीं। क्योंकि जय और पराजय क्षणिक उपलब्धि है। इसे मानदण्ड मान लेना ही सबसे बड़ी भूल है जो पूर्ववर्ती कालों में बार-बार दोहराई जाती रही—

'जो मिट गया क्या असत् था
अवशेष ही क्या सत्य है
क्या सही वह जो जीतता
जो हार जाता अशिव है
यह जय-पराजय का नियम
है दाय आदिम न्याय का ।'[२]

इस प्रकार इतिहास की विकृतियों को, अमानवीय व्यवहारों को व्यंग-रूप में प्रस्तुत किया गया है।

व्यंग्य

व्यंग्य की प्रवृत्ति माथुरजी के काव्य की प्रधान विशेषता नहीं है, क्योंकि उन्होंने आधुनिक जीवन के वैषम्य को तुलना द्वारा सरल ढंग से प्रतिपादित अवश्य किया है किन्तु उसके लिए तुलना का सहारा कहीं नहीं लिया। लेकिन कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित उनकी नयी रचनाओं में यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इस विषय में सर्वाधिक चित्र कविता है—'विक्षिप्तों का जुलूस'। यह कविता कुछ वर्ष पूर्व फ्रांस व चीन में घटित सांस्कृतिक क्रान्ति से सम्बन्धित है। इस कविता में अत्याधुनिकता के मोह में पतन के कगार पर खड़े मानव-समाज की खोखली प्रवृत्तियों का पर्दाफाश किया गया है। आधुनिक मानव की निकृष्ट यौन-भावनाएँ उसे हजारों वर्ष पूर्व के असभ्य आदिम युग में ले जाना चाहती हैं। २०वीं० शती के सभ्य व सुसंस्कृत मानव का गुफाओं व वनखण्डों की ओर पुनः प्रस्थान का एक चित्र—

'सड़कों पर घूम रही हैं उन्मादी भीड़ें
चिल्लाता आता है विक्षिप्तों का भारी जुलूस
बकता हुआ घिनौनी गालियाँ

× × ×

१. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० १२
२. वही, पृ० १४

दोनों तरफ लोग
स्तम्भित खड़े हैं
सदियों से सीखी लज्जाओं से गड़े हुए
संस्कारों से कुलीन
भयभीत असमंजस में
भागती मर्यादाएँ हाथों से छिपाती हैं
गुप्त अंग
यौन केश
नुचा हुआ नंगापन ।'[1]

सभ्यता के उच्च-शिखर पर पहुँचे हुए सफेदपोश मानव का यह रूप, जहाँ मर्यादाएँ भी लज्जा से मुंह छिपाने लगती हैं ।

युग-युग से चली आ रही पवित्रता, अन्तरंगता व आत्मीयता आज समाप्त हो गई है । नयी पीढ़ी यौन-भावना की कठपुतली मात्र बनकर रह गई है । शारीरिक भूख की तृप्ति के लिए उचित और अनुचित स्थान का विवेक भी उसमें समाप्त हो गया है—

'मांस के यह टैंक जुनून में दौड़ रहे
सिर्फ देह भोजन के वास्ते
खुले आम सड़कों पर
पार्कों में, सार्वजनिक तटों पर
मद्य भरी कारों में
किसी भी पेड़ की छाया में ।'[2]

सांस्कृतिक क्रान्ति की असफलता और बी० श० के दुखपूर्ण अन्त की एक झलक—

'एक यौन क्रान्ति
एक सांस्कृतिक क्रान्ति
गुफाओं और वनखण्डों में
फिर आदमी की वापिसी
फिर जानवर की गन्ध
बीसवीं सदी का अन्त···।'[3]

अतः प्रस्तुत कविता में आज के वैज्ञानिक युग में सुसंस्कृत मानव के नैतिक अधःपतन, खोखलेपन, भोग तथा वासना-प्रधान प्रवृत्ति पर तीखे व्यंग्य प्रस्तुत किए हैं ।

१. विक्षिप्तों का जुलूस (हस्तलिखित प्रति के आधार पर)—माथुर ।
२. विक्षिप्तो का जुलूस—माथुर ।
३. विक्षिप्तों का जुलूस—माथुर ।

प्रकृति-चित्रण

माथुरजी के काव्य में प्रकृति-चित्रण के क्षेत्र में काफी विविधता परिलिक्षित होती है। उन्होंने जहाँ प्रेम और सौन्दर्य भावों की, सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति प्रकृति द्वारा की है (जिसका विवेचन दूसरे और तीसरे अध्याय में किया गया है) वहीं नवीन भाव-बोध को पूर्ण समग्रता से प्रकृति में स्थापित भी किया है। कवि ने विदेशी वातावरण तथा परिवेश के भी सुन्दर चित्र अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किए हैं। गिरिजाकुमार माथुर ने पहली बार व्यापक पृष्ठभूमि में विस्तृत भूखण्ड का चित्रण किया है जिसमें उनकी भूमावादी प्रवृत्ति स्पष्टतः दृष्टिगत होती है। कथ्य के अभाव में विशुद्ध लैण्डस्केप उतारना भी कवि की अपनी विशेषता है।

पृष्ठभूमि-रूप में प्रकृति

प्रकृति का पृष्ठभूमि-रूप में व्यापक चित्रण करना माथुरजी की निजी विशेषता है। 'चन्द्रखण्डों की आत्मा' नामक कविता में चन्द्रमा की मद्धिम रोशनी और फटे बादलों की चर्चा करने के पश्चात् कवि अपने कुण्ठित व्यक्तित्व-बोध की तुलना चन्द्रमा की छिपती, दिपती, धुंधली कटी फांक से करता है। उसका व्यक्तित्वबोध चन्द्रमा की फांक की भाँति मद्धिम पड़ता जा रहा है। मद्धिम चन्द्रमा और फटे बादल उसके कुण्ठित व्यक्तित्व-बोध की ओर संकेत करते हैं। प्राकृतिक परिवेश का निरूपण अभिव्यक्ति को सजीवता प्रदान कर रहा है—

'मद्धिम चन्द्रमा
फटे बादल
× ⊠ ⊠
छिपती-दिपती मद्धिम पड़ती
धुंधली, पूरी, फिर कटी फांक
यह मैं
मेरा व्यक्तित्व बोध।'[1]

'धूप के धान' की 'चंदरिमा' कविता में कवि के मन पर प्रेयसी के गोल पूनम-से चेहरे से अधिक प्रभाव चंदरिमा का है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा और उसकी उजली चाँदनी आज भी वैसी ही दिखाई दे रही है किन्तु प्रेयसी का गोल पूनम-सा मुख बरसों पुरानी याद बनकर रह गया है। चन्द्रमा और चाँदनी का कवि ने पार्श्व-रूप में इस प्रकार चित्रण किया है कि प्रेयसी का सुन्दर मांसल चेहरा भी प्रभावहीन दृष्टिगत होता है—

'यह झकाझक रात
चांदनी उजली कि सुई में पिरो लों ताग

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ४१

चांदनी को दिन समझ कर बोलते हैं काग
× × ×
चांद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल
यह नहीं चेहरा तुम्हारा
× × ×
क्योंकि यह तो सामने ही दिख रहा है
यह नहीं अब तक हुआ
बरसों पुरानी बात।'[१]

एक अन्य कविता में कवि ने प्राकृतिक वातावरण को इस रूप में चित्रित किया है कि विरही को समूचा परिवेश विरह की ज्वाला में दग्ध करता हुआ प्रतीत होता है। मेघों वाली नीली बिजली, झींगुर की गुंजार, धुंधभरा सूनापन, लहरियोंदार हवा तथा घनघुमड़न आदि प्राकृतिक उपादान उसकी अतीत की स्मृतियों को याद दिलाती हैं। भुजबंध के उन्माद-सी रात उसी प्रकार बढ़ रही है जिस प्रकार कवि के मन में प्रेयसी की याद प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है। यहाँ प्राकृतिक वातावरण उद्दीपन-रूप में प्रस्तुत किया गया है—

'नीली बिजली मेघों वाली
झींगुर की गुंजार
धुंधभरा सांवर सूनापन
हवा लहरियोंदार
घन घुमड़न भुजबन्धन के उन्माद सी
बढ़ती आती रात तुम्हारी याद सी।'[२]

भविष्य के प्रति पूर्ण आस्था रखने वाला कवि कहीं-कहीं भविष्य के प्रति संशकित भी हो गया है और ऐसे स्थलों पर उसमें क्षणवादी प्रवृत्तियों का प्राधान्य हो गया है और कवि आशंका प्रकट करता है कि जो चाँद आज शीतल दिखाई दे रहा है वही कल स्याह शीशा बन सकता है और चाँदनी के स्थान पर धूल उड़ सकती है इसलिए वह हेमन्त की मन्द ठिठुरन को प्रेयसी के तनछुवन से उष्मसाम्य देना चाहता है—

'आज दिखता है दही सा चांद शीतल
कौन जाने स्याह शीशा चांद ही कल
उड़े उजली धूल बनकर चांदनी भी
इसलिए हेमन्त की
यह मन्द ठिठुरन

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ९४
२. वही, पृ० १०९

तन छुवन से उष्म
तुम कर दो रसीली ।'[१]

मानवीकरण के रूप में प्रकृति

प्रकृति को कहीं-कहीं चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है । उस पर नाना चेतन भावों का आरोप किया गया है ? चित्रण की यह पद्धति मानवीकरण कहलाती है । छायावादी काव्य की यह एक प्रधान प्रवृत्ति है जो कहीं-कहीं माथुरजी की रचनाओं में भी मिलती है । 'रूप विभ्रमा चाँदनी' नामक कविता में चाँदनी को आधुनिक सुन्दर नारी के रूप में देखा गया है । आधुनिक नारी की भाँति वह छरहरे बदन की है, स्लीवलेस ब्लाउज पहने है । मुँह में इलायची चबाती हुई हलके कदम रखती हुई बेफिक्र मस्ती से जा रही है । यहाँ की चाँदनी निर्जीव न रहकर सचेतन पात्र के रूप में सामने आई है । कवि चाँदनी में अपनी प्रेयसी का रूप देखता है—

स्लीवलस ब्लाउज पहने
छरहरी चांदनी
पेड़ों की चमकदार जालियों तले
बेफ़िक्र मस्ती से
हलके कदम रख चलती
मुंह में मन्द-मन्द इलायची चबाती ।'[२]

एक अन्य कविता में लता का मानवीकरण किया गया है, उसे नारी के रूप में चित्रित किया गया है । उसकी कटि लहरदार, नितम्ब उभरे हुए तथा हथेली नरम है । उसने बुंदकियोंदार मेंहदी लगा रखी है और पाँवों में साँझ का आलता लगाया है—

हरी धूप की किरन-सी लता
लहरदार कटि
धुली कांपती-सी
हथेली नरम
बुंदकियोंदार मेंहदी लगा
पांव में
सांझ का आलता ।'[३]

'आषाढ़ की रात' में नगर का मानवीकरण किया गया है । उसे गोरे बालक के रूप में देखा गया है जो सुख की गहरी नींद में सोया हुआ है । रात के सन्नाटे को, नगर की खामोशी को सोये हुए बालक के रूप में चित्रित किया

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ११२
२. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ५५
३. वही, पृ० ७३

छोटा सा यह नगर सो रहा
ठण्डे गाल लिए गोरे बालक सा
सुख की गहरी नींदों में।'[1]

चाँदनी के अनेक और नये रूप

चाँदनी से सम्बन्धित अनेक 'कविताएँ माथुरजी के काव्य-संग्रहों में संकलित हैं। चाँदनी उनके काव्य में व्यापक रूप से आई है और उसके विभिन्न पक्षों पर कवि ने रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। जिस प्रकार महादेवी के काव्य में 'दीपक' शब्द बार-बार आता है उसी प्रकार गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में 'चाँदनी' तथा 'पूनो' शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं। 'चाँदनी' से सम्बन्धित अनेक कविताएँ कवि ने रची हैं। इस प्रकार की कविताएँ 'धूप के धान', 'शिलापंख चमकीले' तथा 'जो बंध नहीं सका' आदि संग्रहों में संकलित हैं। 'धूप के धान' में 'चाँदनी गरबा', 'चन्दरिमा', 'खटमिट्ठी चाँदनी' तथा 'जो बंध नहीं सका' में 'रूपविभ्रमा चाँदनी', 'चाँदनी बिखरी हुई', 'कातिक चाँद की रात' तथा 'एक टुकड़ा चाँद आदि प्रमुख हैं।

'चाँदनी गरबा' में कवि ने गुजरात के 'गरबा' लोक-नृत्य को चुन पर प्रकृति-चित्रण किया है। यहाँ चाँदनी को चंचल नेत्रों वाली गोरी के रूप में देखा गया है जो उभरे रोएँ छुवा गई है—

'उभरे रोएँ छुवा गई है चांदनी
सींग नुकीले चुभा गई है चांदनी
चंचल नयनी गोरी हिरनी चांदनी।'[2]

इस दृष्टि से 'खटमिट्ठी चाँदनी' कविता बहुत महत्त्वपूर्ण है। चाँदनी से कवि ने अनन्त सुख पाया है। खटमिट्ठी चाँदनी जीवन में अनेक सुख-स्वादों को लेकर आई है—

कितना सुख पाया है
तुमसे ओ चांदनी
× × ×
भर दी है जीवन में
कितनी प्रिय स्वादमयी
सोंधी, मीठी, लोनी
खटमिट्ठी चांदनी

उम्र के कटोरे में जितना आसव है वह सब चाँदनी का षट्रस—

उम्र के कटोरे में
जितना यह आसव है

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ७३
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ७३

उसमें तुम्हारा ही
षड्रस है चांदनी ।'[१]

'चाँदनी बिखरी हुई' में चाँदनी को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है । कहीं चाँदनी को बासमती चावल की भाँति कहा है तो कहीं दूध के बुरादे सी । एक छवि-चित्र में कवि प्रश्न करता है कि दूध, नैंनू, घी, मही-सी चाँदनी फिर कब मिलेगी—

फिर मिलेगी कब दही-सी चांदनी
दूध, नैंनू, घी, मही-सी चांदनी ।[२]

अन्य स्थिति में कवि सोचता है कि जिन्दगी की जो चाँदनी समाप्त हो गई है उसे कैसे जीवन में फिर से भरूँ—

'चांदनी की रात है
तो क्या करूँ
जिन्दगी में चांदनी
कैसे भरूं ।'[३]

'एक टुकड़ा चाँद' कविता में वर्षा के थमने पर बादलों के बीच में से सावन की पूनो का चाँद किस प्रकार निकल रहा है इसका मूर्त चित्रण इस रूप में किया गया है कि पूरा चित्र आँखों के समक्ष साकार हो जाता है—

'काले, चितकबरे, धूम और बादलों में से
निकल रहा गीला चाँद
सावन की पूनों का ।'

भूमावादी चेतना (कास्मिक चेतना)

प्रकृति के कुछ ऐसे चित्रों में कवि की भूमावादी प्रवृत्ति के दर्शन भी होते हैं जहाँ विस्तृत भू-भाग का चित्रांकन किया है । आसमान के घेरे में घिरी धूसर सांवली काली धरती का भू-दृश्यांकन व्यापक परिवेश में इस प्रकार किया है—

ये धूसर, सांवर, मटियाली, मैली धरती
फैली है कोसों आसमान के घेरे में
रूपों छाये नालों के हैं तिरछे ढलान
फिर हरे-भरे लम्बे-चढ़ाव
झरबेरी, ढाक, कास के पूरित टीलों तक ।'[४]

---

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ७७ ८८
२. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ५८
३. वही, पृ० ७९
४. धूप के धान—माथुर, पृ० ४

'ढाकवनी' में भी कवि की भूमावादी प्रवृत्ति का प्राधान्य है जहाँ कवि का उद्देश्य केवल प्रकृति-चित्रण करना है। इसीलिए उन्होंने प्रकृति के प्रत्येक उपकरण का केवल परिचय-मात्र दिया है—

'सनसनाती सांझ सूनी
वायु का कठला सनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर
झांझ-सा बीहड़ झनकता।'[१]

विदेशी वातावरण व प्रकृति का प्रभाव

गिरिजाकुमार माथुर विदेशी वातावरण से भी पर्याप्त रूप में प्रभावित हुए हैं। यूरोपीय प्रकृति के अनेक सौन्दर्य-चित्र इन्होंने अपनी कविताओं में खींचे हैं। इस दृष्टि से 'न्यूयार्क की एक शाम', 'मैन हैटन', 'न्यूयार्क में फाल', 'सिन्धुतट की रात' आदि रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। विदेशी वातावरण में पहुँचकर कवि आश्चर्यचकित रह जाता है। वहाँ की रोमानी ऋतु, धन, नृत्य, विलास आदि से उनका शरीर रोमांचित हो जाता है—

'स्याह सिंधु की इस रेखा पर
है झिलमिली तिलिस्मी रेखा
× × ×
धन, विलास, मद, नृत्य, केलि, रस
ऋतु रोमानी तन रोमांचित।'[२]

'न्यूयार्क में फाल' कविता में कवि ने विदेशी वातावरण का मनोरम चित्र खींचा है। प्राकृतिक उपादानों का वस्तुवादी रूप में चित्रण करके वहाँ के वातावरण को सजीव बनाने का प्रयास किया है—

थम गई बरसात नम
आ गया है नायलन सा पारझीना
यह खुला मौसम
मनोरम फाल का मौसम
हिमानी रात
ठण्डी धूप का मौसम।'[३]

'मैन हैटन' की रंग-रेखाओं को कवि ने इस रूप में प्रस्तुत किया है—

यह पाताल
नागलोक यह

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ६५।
२. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ३
३. धूप के धान—माथुर, पृ० ६८।

"यह धरती का छोर आखिरी
× × ×
यह सोने की दुनिया
यह कंचन लंका, पाताल
धरा का सारा सोना
खिच आया इस नागलोक में ।"[1]

उपर्युक्त विवेचन का यह आशय नहीं समझा जा सकता कि कवि विदेशी वातावरण में जाकर वहीं की प्रकृति में रम गया, क्योंकि भारत भूमि तथा प्रेयसी के प्रेम की याद उसे निरन्तर आती है, इसका अभाव उसे निरन्तर खटकता है। आगे कवि ने लिखा है कि विदेश में आकर भी वह भारत की मिट्टी तथा शरद् की चाँदनी से दूर हो गया है और इस दूरी से उसका तन और मन दोनों सूने हो गए हैं।

'सब कुछ दूर
मिट्टी का परस भी दूर
शरद की चाँदनी भी दूर
× × ×
तन मन हो रहे सूने।'[2]

प्रकृति-चित्रण की उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में परम्परा से ग्रहण करने के साथ-साथ मौलिक योगदान भी दिया है। इसके साथ ही प्रकृति-चित्रण की परम्परित परिपाटी का क्रमशः त्याग करके नवीन सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय चेतना का समावेश किया है। कवि ने भारतीय जीवन के ही नहीं विदेशी वातावरण व प्रकृति के भी सुन्दर चित्र अंकित किए हैं।

भाषा व शिल्प की दृष्टि से माथुरजी की देन अमूल्य है। भाषा, छन्द, ध्वनि व नाद के विषय में कवि ने मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं जिनका विस्तार से विवेचन अगले अध्याय में किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माथुरजी का काव्य नयी कविता की अति-वादी प्रवृत्तियों से पूर्णतः मुक्त है। उनके काव्य की मूल संवेदना समसामयिक कवियों से बहुत भिन्न है। बौद्धिक दुरूहता के स्थान पर सर्वत्र सहज सारल्य व सरसता परिलक्षित होती है। इसका प्रधान कारण है—कवि की रोमानी दृष्टि, भविष्य के प्रति पूर्ण आस्था व विश्वास तथा मानवतावादी दृष्टिकोण। जीवन को सम्पूर्ण आयामों से पूरी जीवन्ता से भोगने की अदम्य शक्ति इनके काव्य में है। वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हुए भी कवि का अहं कहीं भी प्रधान नहीं हो पाया है। जीवन

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ६४, ६६
२. वही, पृ० ७२

में सौन्दर्य व कालुष्य-कुरूपता दोनों का समवायरूप कवि ने स्वीकारा है। उनके यथार्थ चित्रों में नग्नता व अश्लीलता उद्बुद्ध करने का नहीं सही संवेदना को जगाने का प्रयास है। नयी कविता के जिन अभावों या अतिवादी प्रवृत्तियों (अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद, दमित वासना चित्रण, अति बौद्धिकता, दुरूहता, अनास्था-निराशा तथा परम्परा की अस्वीकृति) के कारण प्राय: विद्वानों ने उसकी आलोचना की है, माथुरजी का काव्य इससे मुक्त है। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का मत प्रस्तुत है—'जो नये युग का बरबस आह्वान करने वाले असमर्थ कवि बुरी तरह असफल होकर रह जाते हैं और उनके पास इसके अलावा कोई चारा नहीं रह जाता कि अपनी विफलता को बौद्धिक चमत्कार द्वारा सही-गलत ढंग से छिपाने का प्रयत्न करें। 'नई कविता' का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है और नये कवियों में गिरिजाकुमार माथुर का यह सौभाग्य है कि वे इससे बहुत-कुछ मुक्त हैं।'[१] इसके अतिरिक्त विज्ञान के विविध-उपकरणों को काव्य में ही स्थान मिलता है जिसका सुन्दर उदाहरण है पृथ्वी-कल्प। 'इतिहास' शीर्षक से सम्बन्धित कुछ कविताओं में इतिहास के प्रति विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत करके नया मूल्यांकन किया है। प्रकृति-चित्रण के क्षेत्र में भी उनका नूतन योगदान विचारणीय है। 'चाँदनी' के नये रूपों के प्रस्तुतीकरण में जहाँ कवि की दृष्टि पूर्णत: रोमानी हो गई वहीं कास्मिक चेतना की अभिव्यंजना में वैज्ञानिक। अत: प्रकृति-चित्रण में रोमानी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। कथ्य के अभाव में विशुद्ध लैण्डस्केप उतारना कवि की निजी विशेषता है। इनके अतिरिक्त हिन्दी में पहली बार विदेशी वातावरण व प्रकृति से प्रभावित रचनाएँ माथुरजी ने ही रचीं। कुल मिलाकर नयी कविता के क्षेत्र में माथुरजी का योगदान प्रशंसनीय है।

शिल्प-विधान

काव्य के अन्तरंग (विचारतत्व) और बहिरंग (शिल्पविधान) में अटूट संबंध होता है, क्योंकि काव्य की मूल-चेतना की यथार्थता के अनुरूप ही उसकी रूप-सज्जा भी नवीन व प्राणवान होनी चाहिए। अभिव्यक्ति के विविध उपकरणों (छन्द, भाषा, प्रतीक आदि) के माध्यम से ही कवि अपनी अनुभूतियों को तीव्रतम रूप में व्यंजित करके उसके प्रभाव को समग्रत: पूरी अर्थमत्ता के साथ काव्य में संप्रेषित करना चाहता है। बाह्य रूप-विधान की सक्षमता के अभाव में 'काव्य' को सरस-काव्यात्मक अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है।

युग-विशेष की काव्य-चेतना युगीन भावबोध व तत्कालीन सामाजिक परिवेश के अनुरूप ही रूपाकार ग्रहण करती है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में ही हमें

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४

काव्य-शैली में असीम वैविध्य दृष्टिगत होता है। आधुनिक काल के आरम्भ में तथा द्विवेदी-युग में नैतिक व सुधारात्मक दृष्टिकोण की प्रधानता होने के कारण 'रूप' से अधिक 'कथ्य' को महत्त्व दिया गया। उसी की प्रतिक्रिया-स्वरूप छायावादी-काव्य में शिल्प क दृष्टि से क्रान्तिकारी परिवर्तन परिलक्षित होता है। प्रस्तुत काव्य में रूक्षता व इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर सुकोमलता और कल्पना की प्रधानता है। छायावादी कविता प्रकृति और प्रेम की कविता है अतः इसका रूप-विधान (बिम्बयोजना, प्रतीक योजना, भाषा आदि) भी कोमल व सरस है। प्रगतिवाद ने छायावाद की स्निग्धता, प्रतीकात्मकता, दार्शनिक दुरूहता तथा अलंकरण के स्थान पर सरल अभिव्यक्ति-प्रणाली पर जोर दिया। छन्द के बन्धनों को अस्वीकार किया और सर्व-प्रचलित जनभाषा का प्रयोग किया। किन्तु युगीन-यथार्थ का समग्रता से अन्यतम स्थान है। नयी-कविता में बाह्य रूप-रचना पर पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया गया है।

नयी कविता में रूप-विधान-सम्बन्धी परिवर्तनशीलता व नवीनता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि "आधुनिक युग के व्यक्ति-मानव की संवेदनाएँ अत्यन्त संश्लिष्ट हो गयी हैं और आधुनिक युगीन सन्दर्भ भी बहुत कुछ परिवर्तित हो चुके हैं तो यह मानना पड़ेगा कि इस आधुनिक भावबोध और नवीन सन्दर्भों को नये-रूप-शिल्प द्वारा ही अभिव्यक्त किया जा सकता है।"[१] मानव-जीवन की यथार्थ अनुभूतियों, नवीन जीवन-मूल्यों, यथार्थ सौन्दर्य-बोध, सामाजिक परिवेश की यथार्थता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को काव्य द्वारा प्रस्तुत करने के लिए नये कवि ने परम्परागत अभिव्यक्ति-उत्पादनों को असमर्थ जानकर नये छन्दों की रचना की, संश्लिष्ट बिम्ब-योजना पर बल दिया, नवीन प्रतीकों का निर्माण किया और नये-नये वैज्ञानिक विषयों की खोज की। इसके अतिरिक्त भाषा का नवीन संस्कार करके उसे युगीन भाव-बोध की अभिव्यक्ति के अनुकूल बनाने का श्रेय भी नये कवियों को ही है।

नये कवियों में शिल्प-विधान की प्रौढ़ता की दृष्टि से गिरिजाकुमार माथुर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भावपक्ष व कलापक्ष दोनों को समान महत्त्व देते हुए भी टेकनीक के प्रति उनका स्थान विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। वे काव्य में विषय से अधिक टेकनीक को महत्त्व देते हैं। इस सम्बन्ध में 'तारसप्तक' के वक्तव्य में उनके विचार इस प्रकार हैं—"कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया गया है। विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।"[२] अतः स्पष्ट है कि माथुरजी अपने काव्य की यथार्थ विषय-वस्तु के साथ-साथ समर्थ टेकनीक के प्रति भी पूर्णतः जागरूक हैं। छन्द विधान तथा ध्वनिविधान के सम्बन्ध में उनके विचार मौलिक और सुलझे हुए हैं। व्यंजन ध्वनियों से उत्पादित संगीत की अपेक्षा वे स्वर-ध्वनियों के पक्षपाती हैं। भाषा

१. प्रयोगवाद और नयी कविता—डॉ० शम्भूनाथसिंह, पृ० २१६
२. तारसप्तक (वक्तव्य)—सं० अज्ञेय, पृ० १२४

को व्यंजना-प्रधान बनाने के लिए माथुरजी ने जहाँ उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों को निःसंकोच ग्रहण किया है वहीं कुछ नये शब्दों को गठा भी है। काव्य में रंग-योजना की ओर भी कवि का ध्यान यथेष्ट रूप में गया है। काव्य-चित्रों को अधिक सजीव और ग्राह्य बनाने के लिए उनमें वातावरण के हलके रंगों का प्रयोग किया गया है। उनके काव्य की शिल्प-सम्बन्धी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

बिम्ब-योजना

बिम्ब मनुष्य के विभिन्न इन्द्रिय-संवेदन के अनुभवों पर आधारित है। किसी वस्तु अथवा घटना को देखने पर उसका जो चित्र मन पर अंकित हो जाए उस मानस-चित्र को रूपक आदि की सहायता से अभिव्यक्त करना बिम्ब कहलाता है। बिम्ब-योजना नयी कविता की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि इसका समस्त बाह्य रूपाकार बिम्ब-योजना पर आधारित है। बिम्बों का विषय-वस्तु से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसी के कारण काव्य में स्पष्टता, संक्षिप्तता व चित्रात्मकता का समावेश होता है। नयी कविता चूँकि यथार्थ जीवन पर आधारित है अतः नये कवियों ने मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों से तथा नवीन सामाजिक परिवेश से बिम्ब ग्रहण किए हैं। नयी कविता में प्राप्त बिम्बों के नवीनता के साथ-साथ विविधता भी परिलक्षित होती है। 'उनके काव्य में न केवल दृश्य-बिम्बों की ही सत्ता है, वरन् शब्द, स्पर्श, गंध, ध्वनि आदि की भी सूक्ष्मता से अभिव्यक्ति करने वाले अनेकानेक चित्रों का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।'[1]

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में अनेक प्रकार के बिम्बों की सुन्दर नियोजना हुई है। इनके माध्यम से उन्होंने मन की अत्यन्त सूक्ष्म छवियों का चित्रांकन किया है। माथुरजी के काव्य में पाए जाने वाले बिम्बों के मुख्य रूपों का विवेचन इस प्रकार हैं—

(क) **ऐन्द्रिय बिम्ब**—ऐन्द्रिय बिम्बों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) दृश्य बिम्ब, जिनका सम्बन्ध हमारी आँखों से होता है। (२) अन्य इन्द्रिय-संवेद्य बिम्ब—इस कोटि के बिम्बों को घ्राण, स्पर्श, श्रवण तथा आस्वादनेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। माथुरजी के काव्यों में दोनों प्रकार के बिम्बों की प्रचुरता है—

(ख) **दृश्य बिम्ब**—प्रस्तुत बिम्ब-विधान में हमारे नेत्रों के सम्मुख वस्तु-विशेष का रंग, रूप तथा विभिन्न क्रियाओं व मानव चेष्टाओं का चित्र-सा खिंच जाता है। नीचे की पंक्तियों में शाम की दृश्य-छवि के चित्रांकन के लिए कई लघु बिम्बों की सृष्टि की गई है—

ये हवा धूप मिली
लहर सी आके लिपट जाती है
कभी हल्के से उड़ा देती बाल
कभी छत पर बैठी ललनाओं के

१. नया हिन्दी-काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० ३४३

सोंधे तन-गन्ध भरे आंचल को
गोरे कन्धे से उड़ा देती है
और उड़ जाते सूखते कपड़े
ऊँची सीमेंट की मुंडेरों से।[1]

इस दृश्य-चित्र की प्रथम दो पंक्तियों में निर्मित बिम्ब-स्पर्श चेतना को स्पन्दित करता है। आगे की तीन पंक्तियाँ गन्ध चेतनाओं को उभारती हैं और इस प्रकार कई छोटे-छोटे बिम्ब आन्तरिक एकता के कारण एक के बाद एक मूर्त होते चले गए हैं। इसी प्रकार का एक अन्य दृश्य-बिम्ब 'नई दिवाली' नामक कविता में उपलब्ध होता है—

'कातिक का रसवान महीना
धरती फूली-फली
ठण्डी मिट्टी पर खिल आई
दीपक सुमन दिवाली
गृह-लक्ष्मी सी सांझ खड़ी है
पति किरन तन वाली
जला दीप से दीप
चमक से भरी धरा की थाली।'[2]

कातिक मास की घाम का चित्रण करने के लिए कवि ने अनेक लघु बिम्बों की नियोजना द्वारा दीपों से जगमगाती धरती का पूर्ण बिम्ब चित्रित किया। 'न्यूयार्क में फाल' कविता में बरसात के पश्चात् 'फाल के मौसम' की मनोरम छवि प्रस्तुत की गई है। 'नायलेन से पार झीने' मौसम का एक दृश्य-बिम्ब—

'थम गई बरसात नभ
आ गया है नायलेन सा पारझीना
यह खुला मौसम
मनोरम फाल का मौसम
हिमानी रात
ठण्डी धूप का मौसम।'[3]

दृश्य-बिम्ब के दो अवान्तर भेद किए जा सकते हैं—(क) वस्तु बिम्ब (ख) व्यापार बिम्ब। 'वस्तु चित्रण में जहाँ छाया-चित्रों की-सी स्थिरता होती है तथा वर्णन में कवि एक प्रकार से बिल्कुल निरपेक्ष रहता है वहाँ यथातथ्य बिम्ब का उदाहरण माना

---

१. धूप के धान—माथुर, पृ० २७
२. वही, पृ० ४२
३. वही, पृ० ६८

जाएगा और जहाँ चित्र में एक प्रकार की गत्यात्मकता का आभास होता है ऐसे बिम्ब को व्यापार व्यंजक की संज्ञा दी जाएगी।'[1]

वस्तु-बिम्ब—वस्तु-बिम्बों में यथार्थ की सुदृढ़ रेखाओं द्वारा दृश्य विशेष को स्पष्ट करने का यत्न किया जाता है। ऐसे बिम्बों में अलंकृति की अपेक्षा यथार्थता पर बल दिया जाता है और साथ ही रूप और रंग का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। यथा—

'निकलती ही जा रही घड़ियाँ सुनहली
आयु के सबसे अधिक उज्ज्वल चरण की
ग्रीष्म के उस फूल की
जिसकी नई केसर हवा ने सोख ली।'[2]

एक अन्य वस्तु-चित्र में उपमा आदि का सहारा न लेकर वस्तुपरिगणन सम्पूर्ण शैली में वातावरण की चित्रात्मक सृष्टि की है—

'बीच पेड़ों की कटन में
हैं पड़े दो चार छप्पर
हांडियां, माचिया, कठौते
लट्ठ, गूदड़, बैल, बक्खर
राख, गोबर, चरी, आँगन
लेज, रस्सी, हल, कुल्हाड़ी
सूत की मोटी फतोई
चका, हसिया और गाड़ी
धुआँ कंडों का सुलगता
भौंकता कुत्ता शिकारी
है यहाँ की जिन्दगी पर
शाप नल का स्याह भारी।'[3]

उपर्युक्त बिम्ब वर्णनात्मकता की प्रधानता के कारण वस्तु-परिगणन शैली के निकट हैं किन्तु फिर भी ग्रामीण जीवन के अभाव और ग्रामीणों की दरिद्र स्थिति हमारी आँखों के समक्ष साकार हो जाती है।

तटस्थ भाव से निरूपित शाम की सुनहली धूप का चित्र, जो अब केवल छतों की किनारियों को ही छू रही है काफी सुन्दर बन गया है। ऐसे स्थलों पर उपमा आदि की सहायता न लेने पर भी सम्पूर्ण वातावरण साकार हो उठा है—

१. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प—डॉ० कैलाश वाजपेयी, पृ० ८०
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ५१
वही, पृ० ६८

"शाम की तिरछी, सलोनी, सुनहली धूप
दीपित है अब भी
इमारत के चेहरे पर
दिन है, उजेला है
रोशन है दूर तक
धूप का गोटा लगी
छतों की किनारियाँ।"[1]

अतः वस्तु-बिम्बों में मूर्तिकरण की स्थिरता व यथार्थता का आग्रह ही अधिक परिलक्षित होता है।

व्यापार बिम्ब—इस प्रकार के बिम्ब-विधान के अन्तर्गत विभिन्न व्यापार या क्रिया-कलाप रखे जा सकते हैं और इन क्रिया-कलापों का सम्बन्ध मानव-जीवन से ही होता है। माथुरजी की कविता तो आज के संघर्ष-शील मानव की कविता है अतः व्यापार-बिम्ब भी उनकी रचनाओं में सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। उन्होंने बिम्ब-विधान के अन्तर्गत जीवन के सामान्य उपकरणों का भी समावेश किया है। क्लर्क के चिन्ता-ग्रस्त व अभावमय जीवन को कितनी सक्षमता से कवि ने रूपायित किया है—

और सड़कों पै लोटता है शोर
तीसरे पहर के सुनसान को तोड़
× × ×
घंटियाँ बज रही है रिक्शों की
बीसियों साइकिलों की पांतें—
कैरियर, टोकरी या हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बंधे
कुछ में है फाइलें हर छिन भूखी
जाने कभी खत्म हुईं दफ्तर में
हैं जरा कम ही टोकरी ऐसी
जिनमें आते हैं मौसमी फल-फूल।[2]

माथुरजी की रचनाओं में यद्यपि शहरी जीवन के विविध कार्य-व्यापारों की सफल अभिव्यक्ति हुई है किन्तु साथ ही प्रगतिवादी काव्य की प्रतिक्रियास्वरूप कहीं-कहीं ग्रामीण-जीवन के व्यापारों के आधार पर भी बिम्ब खड़े किए हैं। 'नये साल की साँझ' कविता में संध्या की लालिमा के दृश्यांकन के लिए गिरिजाकुमार माथुर ने कृषक-वधू के बिम्ब का प्रयोग किया है—

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ७४
२. धूप के धान—माथुर, पृ० २९

'लालिमा सांझ की सिमट सारी
जा रही संवलते मैदानों से
जैसे घर लौटती किसान-बहू
काम दिन भर का करके खेतों से
लाल मुँह हो रहा है मेहनत से
कच्ची मिट्टी से भरे
सांवले रसौड़े हाथ
जिनमें पहने हैं लाल से कंगन
हाथ में चाँद सा चमक हंसिया
काटता है जो फसल कुहरे की।'[1]

अन्य इन्द्रिय-संवेद्य बिम्ब—दृश्य-संवेदन के अतिरिक्त अन्य संवेदन बिम्ब इसके अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। जिनमें प्रमुख हैं—स्पर्श, श्रवण, घ्राण आदि बिम्ब। गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में इन सभी प्रकार के बिम्बों की संरचना हुई है।

(१) स्पर्श-संवेदन प्रधान बिम्ब—माथुरजी ने प्रकृति-वर्णन प्रसंगों में स्पर्श-बिम्बों का प्रयोग किया है। धूप में गरमी के लिए कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में उन के बिम्ब का प्रयोग किया है—

'उन सी यह धूप की गरमी मुलायम
है खिला पाती न जीवन फूल को।'[2]

स्पर्श-चेतना को जाग्रत करने वाला एक अन्य बिम्ब जिसमें घर्म (ताप) की दृष्टि से सादृश्य दिखाया गया है। सेमल की गरमीली रुई और जाड़ों की धूप की तपन को स्पर्श द्वारा अनुभव करके ही जाना जा सकता है यथा—

'सेमल की गरमीली हल्की रूई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में।'[3]

'चाँदनी गरबा' नामक कविता में ऋतु की शीतलता के लिए भी कवि ने स्पर्श-बिम्ब का प्रयोग किया है—

'खुली ओस में बिछी दूधिया सेज सी
पानी-सी ठंडी है ऋतु मनभावनी।'[4]

(२) घ्राण-संवेद्य बिम्ब—गंध चेतना को जाग्रत करने वाले बिम्ब भी माथुरजी के काव्य में प्रचुर रूप में मिलते हैं। गंध-बिम्ब का एक उदाहरण—

उड़ती भीनी गंध हवा में दूध की
बिखरा सोई कोरे कुंतल कामिनी।'[5]

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ८०
२. वही, पृ० ५८
३. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ५३
४-५. धूप के धान—माथुर, पृ० ७३

यहाँ कवि ने दूध की गंध के लिए कामिनी के कोरे कुन्तलों से आने वाली गन्ध के बिम्ब का सफल प्रयोग किया है। इसी प्रकार सफल घ्राण-बिम्ब का उदाहरण 'लैंडस्केप' कविता में मिलता है। गीले खेतों से आती हुई मन्द हवाओं में मीठी हरियाली खुशबू का एक बिम्ब—

'इस धूसर' साँवर धरती की सोंधी उसांस
कच्ची मिट्टी का ठंडापन
मटियाला सा हल्का साया
तन मन में साँसों में छाया
जिसकी सुधि आते ही पड़ती
ऐसी ठंडक इन प्राणों में
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है
मीठी हरियाली-खुशबू मंद हवाओं में।'[१]

(३) श्रवण बिम्ब—इस कोटि के बिम्बों का सम्बन्ध श्रवणेन्द्रिय से होता है। ऐसे बिम्बों में सूक्ष्म ध्वनियों व नाद प्रभावों को शब्दबद्ध किया जाता है। इस दृष्टि से माथुरजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। संगीत का ज्ञान होने के कारण ध्वनियों की सूक्ष्मताओं को प्रस्तुत करने में वे अत्यधिक सफल रहे हैं। नीचे की पंक्तियों में निर्जन स्थान में गूंजनेवाली झींगुरों की झंकार के लिए झांझ के नाद का कवि ने प्रयोग किया है—

'सनसनाती साँझ सूनी
वायु का कठला सनकता
झींगुरों की खंजड़ी पर
झांझ सा बीहड़ भनकता।'[२]

आधी रात के सूनेपन को माथुरजी ने विभिन्न स्वर-ध्वनियों के माध्यम से इस प्रकार चित्रित किया है—

'दूर दूर के छाँह भरे सुनसान पथों में
चलने की आहट ओले सी जमी पड़ी थी,
भूरे पेड़ों का कंपन भी ठिठुर गया था।
कभी कभी बस
पतझर का सूखा पत्ता गिरकर उड़ जाता,
मरे स्वरों से सरसर करता।'[३]

इस प्रकार अन्य संवेद्य बिम्बों के अन्तर्गत ध्वनि, स्पर्श व गंध संवेदनों से

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ५
२. वही, पृ० ९५
३. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ५५

सम्बन्धित बिम्बों का रस जाना जा सकता है जिनका प्रयोग करके माथुरजी ने अपने 'कव्य' को अधिक प्राणवान बनाया है।

मनस बिम्ब—भाव-प्रधान या विचार-प्रधान बिम्ब मानस-बिम्ब कहलाते हैं। विचार-प्रधान बिम्बों में बौद्धिक आग्रह के कारण कभी-कभी क्लिष्टता व दुरूहता की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। ऐसे बिम्बों पर आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता का प्रभाव देखा जा सकता है। माथुरजी के काव्य में मानस-बिम्बों के दोनों रूप— (क) भावबिम्ब और (ख) विचार-विम्ब उपलब्ध होते हैं।

भाव बिम्ब—जिन बिम्बों द्वारा किसी विशेष भावस्थिति का चित्रण किया जाता है, भाव-बिम्ब कहलाते हैं। इन बिम्बों का प्रभाव विभिन्न इन्द्रियों पर न पड़कर मानस पर ही पड़ता है। विषाद की स्थिति में निरूपित एक बिम्ब जिसमें प्रकृति के संध्या-दृश्य को विरहजन्य-वेदना की अनुभूति द्वारा उभारा गया है—

> ढल गई शाम
> अब रात साँवली सूनी सूनी उठ आई
> दीपक की लौ पर काजल की ज्यों रेखाएँ।'[1]

वे मिलन की स्थिति में निर्मित भाव-विम्ब जिनमें कोमलता, स्निग्धता व मिलन की आशा का चित्रण है—

> जीवन में फिर लौटी मिठास है
> गीत की आखिरी मीठी लकीर सी
> प्यार भी डूबेगा गोरी सी बाहों में
> ओठों में, आँखों में,
> फूलों में डूबे ज्यों
> फूल की रेशमी रेशमी छाँहें।'[2]

इसी प्रकार मिलन की आतुरता को निरूपित करने वाला एक और सफल भाव-चित्र, जिसमें कवि की प्रिया रेडियो द्वारा उनके गीतों को सुनने के लिए कातरता से प्रतीक्षा करती है—

> "और चित्र सी आँखें बंद किए तुम,
> मेंहदी रंजित गोरे हाथ टिकाए मुख पर—
> खोई सी सुनने को आतुर
> मेरे लहर बने गीतों को।'[3]

प्रणय-सम्बन्धी अनेक कोमल व मार्मिक अनुभूतियों का सफलतापूर्वक चित्रण माथुरजी के काव्य में उपलब्ध होता है। एक अत्यन्त सूक्ष्म मन:स्थिति का बिम्ब—

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १०४
२. वही, पृ० १११
३. वही, पृ० ६३

बोलते में
मुसकराहट की कनी
रह गई गड़कर
नहीं निकली अनी
खेल से
पल्ला जो उंगली पर कसा
मन लिपटकर रह गया
छूटा नहीं ।'[1]

विचार-प्रधान बिम्ब—विचार-प्रधान बिम्बों में विचारों की प्रधानता होती है। ऐसे बिम्ब मस्तिष्क को चिन्तन के लिए विवश करते हैं अर्थात् इनमें बौद्धिकता व चिन्तनात्मकता की प्रधानता होती है। नीचे की पंक्तियों में कवि ने जीवन की व्यस्तता की तुलना तूफान एक्सप्रेस की रात से की है, जिसका कभी अन्त नहीं होता—

"डूबा व्यक्तित्व सभी
गोपन से फैले हुए पत्थर सी
जिन्दगी की तूफान रात खत्म होती नहीं ।'[2]

यात्रा करते हुए यात्री की मंजिल निश्चित होती है किन्तु दर्द के सफर का कहीं अन्त दिखाई नहीं देना। ऐसा लगता है मानो एक सीमित वृत में बार-बार चक्कर काट कर मानव फिर वहीं आ जाता है। 'दु:ख दर्द की घुमेर' को तोड़ने में वह असफल रहता है इस प्रकार की चिन्तनात्मक स्थिति का एक बिम्ब—

'दूर, बहुत दूर
अंधियारे क्षितिज पर
क्या टिमटिमाने लगी
मंजिल की बत्तियाँ,
भोर जली बत्तियाँ
मंजिल क्या पास है
× × ×
दर्द के सफर का
क्या अंत पास आया है
दिखता नहीं है कुछ
आँखें कहीं और हैं
टूटती नहीं है दर्द दु:ख की घुमेर यह ।'[3]

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ५१
२. वही, पृ० ३७
३. वही, पृ० ३७-३८

इस प्रकार विचार-प्रधान बिम्बों में साधारण वातावरण निर्माण करते-करते कवि का दृष्टिकोण बौद्धिक जटिलता से अनुस्यूत होने लगता है।

संश्लिष्ट बिम्ब या सान्द्र बिम्ब—सान्द्र बिम्ब से अभिप्राय संक्षिप्त, कसावपूर्ण अथवा संश्लिष्ट रूप मे अभिव्यक्त बिम्ब-विधान से है। सुगठनात्मकता ही संश्लिष्ट बिम्बों की विशिष्टता है। ऐसे बिम्बों में अनुभूति की अपेक्षा कुशल अभिव्यक्ति का आग्रह अधिक होता है। संक्षिप्त और कसावपूर्ण अभिव्यक्ति का एक चित्र—

आवाजें आती हैं
पत्थर, पत्थर से टकराती हैं
गलियों, मकानों पर
सिर धुन मंडराती हैं
जैसे ढूंढ रही
प्यासी, आंच से तपती आत्मा
एक नया शरीर।'[१]

आज के कुंठाग्रस्त मानव की आवाजें अपने सामाजिक परिवेश से बार-बार टकरा कर सही अभिव्यक्ति के लिए उसी प्रकार राह खोज रही हैं जैसे आँच में तपती आत्मा नया शरीर पाने को व्याकुल रहती है। सशक्त अभिव्यक्ति-कौशल के कारण उपर्युक्त बिम्ब अधिक प्रभावपूर्ण बन गया है।

उतरती आती छतों से
सर्दियों की धूप
ऊजले ऊन की मृदु शाल पहिने
वह मुंडेरों पर ठहर कर
झाँकती है झिमरियों से
रात के धोये हुए उन आँगनों से
और अलसाये हुए
कम्बल लिहाफों पर बिस्तरों पर
जो उठाए जा रहे हैं
× × ×
धुले मुख सी धूप यह गृहिणी सरीखी
मंद पग धर आ गई है
चाय की लघु टेबिलों पर।'[२]

अलंकृत बिम्ब—अलंकृत बिम्बों में अलंकृति, कलात्मकता व सज्जा की

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ४६
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ५६

प्रधानता रहती है। इनमें अनुभूतियों की अपेक्षा अलंकरण की ही प्रधानता होती है। नए कवियों में माथुरजी में शिल्प के प्रति विशेष आग्रह दृष्टिगत होता है, अतः कलात्मकता की दृष्टि से उनकी रचनाओं का स्थान सर्वोच्च है। प्रिया के रूप-सौन्दर्य का चित्रण कवि कलात्मक ढंग से इस प्रकार करता है—

१. **देह कुसुमित मृणाल**
जैसे गेहूँ की बाल
जैसे उचकोहे बारों से
रोमिल रसाल
किशमिशी चन्द्रलट
कसम से डर प्रियाल।'[१]

२. **नीली रात चंदोवे वाली**
पंख गिरा ज्यों मोर का।'[२]

अत्यधिक अलंकरण तथा अत्याधुनिकता के मोह के कारण माथुरजी के बिम्बों में कहीं-कहीं कोरी चमत्कारिकता भी आ गई है यथा—

चाँद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल।'[३]

इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीकल्प', 'राम', 'हब्शदेश', 'युगसांझ' आदि कविताओं के बिम्ब-विधान में भावों व विचारों की गम्भीरता तथा स्वरूप की व्यापकता मिलती है। ऐसे बिम्बों की रचना विराट् पृष्ठभुमि में की गई है। इन बिम्बों में भावों व विचारों की एकरूपता मिलती है।

समग्र रूप में कहा जा सकता है कि गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में प्रायः सभी प्रकार के बिम्ब मिलते हैं। कवि ने अपनी प्रतिभा तथा चित्रात्मक शक्ति के द्वारा अमूर्त वर्ण्य को भी मूर्त साकार व मांसल बना दिया है और इसका प्रधान कारण है कवि की रोमानी दृष्टि। माथुरजी की बिम्ब-योजना के सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का कथन सत्य प्रतीत होता है। 'गिरिजाकुमार के अन्तः संस्कार छायावाद के सूक्ष्म-कोमल-शतशत रंगोज्ज्वल बिम्बों से बसे हुए हैं—उनकी काव्य-चेतना का पोषण एक ओर प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के काव्य-वैभव से और दूसरी ओर अंग्रेजी रोमानी कवियों की चित्रमय विभूतियों से हुआ था। कवि ने इस वैभव-विलास का पूर्ण उपयोग करते हुए उसे नवीन उपकरणों से सिद्ध किया।'[४]

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ५३
२. वही, पृ० ४
३. धूप के धान—माथुर, पृ० ९४
४. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डा० नगेन्द्र, पृ० १३५

२. प्रतीक विधान

प्रतीकों का प्रयोग काव्य में नयी अभिव्यंजना-शक्ति, अर्थ-सौष्ठव व लाक्षणिक विशिष्टता लाने के लिए किया जाता है। डा० भगीरथ मिश्र के शब्दों में—'अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव-विचार, क्रिया-कलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है तब वह प्रतीक कहलाता है।'[1] प्रतीक में संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति होती है, कम शब्दों में अधिक अर्थ भरने की चेष्टा रहती है। ऊपर से देखने पर 'बिम्ब' और 'प्रतीक' दोनों समान दिखाई देते हैं परन्तु फिर भी इनमें सूक्ष्म अन्तर पाया जाता है। इन दोनों में सबसे प्रमुख अन्तर तो यह है कि बिम्ब में चित्रात्मकता की प्रधानता होने के कारण वस्तु या भाव विशेष का निश्चित स्वरूप सामने आ जाता है। अतः बिम्ब में हमारी अनुभूतियों को उभारने की क्षमता रहती है किन्तु प्रतीक में केवल संकेत दिया जाता है, फलस्वरूप अनिश्चितता व अस्पष्टता सी रहती है।

नयी कविता में चूंकि शिल्प का आग्रह अधिक मिलता है अतएव नवीन प्रतीकों का प्रयोग नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। मानव-मन की शत-शत अनुभूतियों व यथार्थ सामाजिक परिवेश को अभिव्यंजित करने के लिए नये कवियों ने परम्परागत रूढ प्रतीकों को त्याग कर नए प्रतीकों का निर्माण किया है। फलस्वरूप नवीन भाव-बोध को अभिव्यक्त करने में आज की नयी कविता अधिक सशक्त व प्राणवान प्रतीत होती है। नयी कविता की प्रतीक-योजना के सम्बन्ध में गिरिजाकुमार माथुर के विचार इस प्रकार हैं—'सधे जमे और एक परिचित दायरे में घूमने वाले प्रतीक उपमानों के स्थान पर वस्तु-जगत् के समस्त क्रिया-कलापों को उसने (नयी कविता) अपनी वर्द्धमान उंगलियों को छूकर उन्हें ग्रहण किया है। मानसिक जगत् की अनेक सूक्ष्म प्रक्रियाओं के पर्दे उठाये हैं। दैनिक जीवन की सैकड़ों छोटी-छोटी घटनाओं के वातावरण और प्रतीकों से काव्य-शिल्प को समृद्धिशाली किया है...।'[2]

नयी कविता के समर्थ कवि गिरिजाकुमार माथुर ने प्रतीकों के नवनिर्माण द्वारा अपने काव्य की शोभा को द्विगुणित किया, उसे अधिक भावसम्पन्न बनाया है। माथुरजी के काव्य में प्रतीकों के विविध प्रयोग मिलते हैं। उन्होंने ऐतिहासिक सांस्कृतिक व पौराणिक प्रतीकों से लेकर नव्यतम वैज्ञानिक चेतना से भी प्रतीकों को ग्रहण किया है। उनके काव्य में पाए जाने वाले प्रमुख प्रतीक निम्नलिखित हैं—

१. **सांस्कृतिक प्रतीक**—प्रतीक जो धर्म व संस्कृति से गृहीत किए जाते हैं सांस्कृतिक प्रतीक कहलाते हैं। गिरिजाकुमार माथुर ने भारतीय संस्कृति व धर्म से ही

---

१. काव्यशास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० २६४
२. धूप के धान (भूमिका)—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १३

नहीं, विदेशी धर्म व संस्कृति से सम्बद्ध प्रतीकों को भी चुना है। उन्होंने मनु से लेकर ईसा तक के प्रतीकों का प्रयोग किया है। प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने महात्मा बुद्ध का धर्मगत चित्रण इस प्रकार किया है—

> **'जिनमें डूबी डूबी दिखती,**
> **ध्यान-मग्न तसवीर बोधितरु के नीचे की।'[१]**

इसी प्रकार (शिव) को कल्याणकारी भावना के रूप में माना है—

> **'सदियों पहले का शिव-सुन्दर मूर्तिमान है।**
> **चलता जाता है बोझका ले इतिहासों पर**
> **श्वेत हिमालय की लकीर सा।'[२]**

२. **पौराणिक प्रतीक**— पौराणिक प्रतीक पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं। इन पौराणिक प्रतीकों पर अतीत संस्कृति के किसी आदर्श का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इन पौराणिक प्रतीको के आधार पर आज के युगबोध को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। एक स्थल पर माथुरजी ने आज की संहारक शक्तियों को असुर-संस्कृति का और मानवता को सीता के पौराणिक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया

> **'जब जगत को चाहिए फुलवाड़ियाँ**
> **हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ**
> **फिर धरा—सीता सताई जा रही**
> **फिर असुर संस्कृति जमाई जा रही।'[३]**

राम-कथा से सम्बन्धित एक अन्य पौराणिक प्रतीक का उदाहरण जिसमें 'शंभु-चाप', 'लंका' आदि शब्द प्रतीक रूप में आए हैं—

> **तम-डूबे इस यंत्र-काल में**
> **आज कोटि युग की दूरी से यादें आतीं**
> **शंभु-चाप से अविछिन्न इतिहास पुराने**
> **और वज्र-विद्युत से पूरित अग्नि-नयन वे**
> **जिसमें भस्म हुए लंका के पाप हजारों।[४]**

प्रिया को पवित्र भावना से संयुक्त करने के लिए माथुरजी ने 'राधा' के पौराणिक प्रतीक की नियोजना भी की है—

१-२. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ११२
३. धूप के धान—माथुर, पृ० ६२
४. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ११८

किस राधा का हल्दी सा मुख
इस उदास चंदा में आया ।'[१]

'दिवालोक का यात्री' नामक कविता में कवि ने पौराणिक प्रतीक के द्वारा मध्यवर्गीय नवयुवक के स्वप्नों के चूर-चूर होने के भाव को अभिव्यंजित किया है। 'संपाति' एक गिद्ध था जो मिथ्याभिमान के कारण सूर्य को छूना चाहता था किन्तु सूर्य की तेज किरणों के कारण उसके पंख झुलस गए और वह पृथ्वी पर आ गिरा था। अतः जिस प्रकार सीमित साधनों से युक्त गिद्ध सूर्य को छूना चाहता था उसी प्रकार सीमित शक्ति-साधनों वाला मध्यवर्गीय युवक उच्च आकांक्षाएं अपने मन में संजोता है जो प्रायः अपूर्ण ही रह जाती हैं। 'संपाति' प्रतीक का प्रयोग—

'तू उड़ा संपाति का अभिमान लेकर
सूर्य छूने का नया अरमान लेकर
तेजमय रवि व्यास जब आया निकटतर
पंख झुलसे गिर पड़ा हतप्राण लेकर ।'[२]

निम्नलिखित एक अन्य उदाहरण में 'कंस व दुर्योधन' को आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक रूप में और राम, कृष्ण तथा गौतम आदि को मानवतावादी सात्विक प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्त किया गया है —

नैतिकता के दीपक पर
जले कंस दुर्योधन
\+ \+ \+
जब जब इस धरती की
ज्योति थकी मुरझाई
राम कृष्ण गौतम और
गांधी बन उठ आई ।'[३]

रामकथा का एक सर्वविदित प्रतीक है—सौमित्र-रेखा। इस प्रतीक का प्रयोग माथुरजी ने दृढ़ता व अखण्डता के रूप में किया है। कवि ऐसी सौमित्र-रेखा खींचना चाहता है जिससे आने वाले युग पर दानवी सभ्यता की काली छाया न पड़े—

'भर कालिमा की भीम-तूली में इसे
खींचूं सुदृढ़ सीमांत में
सौमित्र-रेखा सा विषम'
जिससे न आगामी युगों में जा सके
जन-रक्त-रंजित सभ्यता की घेर छाया दानवी ।'[४]

---

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ७४
२-३. धूप के धान—माथुर, पृ०, ७७ १४६, १४७
४. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १२५

कल्पों के बाद फिर
छल के मारीचि ओट
अविचल सौमित्र-रेख सहसा ही हुई भंग
कल्पों की धूप पकी
पद्धति पर उठा खंग ।'[1]

यहाँ 'छल के मारीचि' और 'सौमित्र-रेख' पौराणिक प्रतीक हैं ।

३. **वैज्ञानिक प्रतीक**—आधुनिक काल में विज्ञान की दिनोंदिन उन्नति के कारण मानव-जीवन इससे अप्रभावित नहीं रह सका है। फलस्वरूप नया कवि भी इसकी उपेक्षा नहीं कर सका है। अपनी बौद्धिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने वैज्ञानिक प्रतीकों का सहारा लिया है। नये कवियों में माथुरजी के काव्य में वैज्ञानिक प्रतीकों का सहारा लिया गया है। नये कवियों में माथुरजी के काव्य में वैज्ञानिक प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। आज के यथार्थ सौन्दर्य-बोध के लिए उन्होंने वैज्ञानिक प्रतीकों का आश्रय लिया है। 'अणु' को उन्होंने संहारक शक्ति के प्रतीक रूप में व्यक्त किया है—

किन्तु नहीं
मिट सका कभी न भविष्य मनुज का
जग का वैभव रचने वाले ज्योति-मनुज का
अणु का नाग नाचने वाले महामनुज का ।'[2]

माथुरजी की 'आग और फूल' तथा 'पहिए' आदि कविताएं स्पष्टतः वैज्ञानिक प्रतीकों पर आधारित हैं । इनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

'युग में है दिखने लगा गैस का उजियाला
चल पड़े भाप से नई मशीनों के पहिये
× × ×
चढ़ चले जीतने सिंधु भयंकर स्टीमर
बारूद और गोलों के ले काले पहाड़ ।'[3]

यहां गैस', 'भाप', 'स्टीमर', 'बारूद' तथा गोलों आदि वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग कवि ने प्रतीक-रूप में किया। वैज्ञानिक उन्नति से किस प्रकार युग-जीवन में परिवर्तन आया है—इसका काव्यात्मक चित्रण यहाँ किया गया है।

ब्रह्म के निर्गुण व सगुण रूप को लेकर ही आज तक विद्वानों में परस्पर मतभेद रहा है किन्तु आधुनिक युग विज्ञान का युग है अतः माथुरजी ने ईश्वर को अव्यक्त, अक्षर या निर्गुणतत्व के रूप में प्रस्थापित नहीं किया है। उन्होंने अनादि परब्रह्म को परमाणु

१. जो बँध नहीं सका—माथुर, पृ० ३५
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ६७
३. वही, पृ० २०

के प्रतीक रूप में व्यक्त किया है—

'फेंक दो काषाय
क्योंकि अब अव्यक्त, अक्षर
सूक्ष्म-निर्गुण तत्व में
रण ठना है
हो गया है पिशन अणु का
परम ब्रह्म अनादि मनु का
आत्मा का बम बना है ।'[१]

वैज्ञानिक प्रतीकों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का एक सुन्दर उदाहरण—

स्टेनगनों, टैंकों की नलियों से
झुलस रहे चन्द्र-घिरे जटा जूट
चैरी में उगी नागकेसर की बारूद' ।[२]

४. **ऐतिहासिक प्रतीक**—नयी कविता में ऐतिहासिक घटनाओं के प्रतीकों द्वारा विभिन्न विचारधाराओं और भावदशाओं की सफल अभिव्यक्ति की गई है। माथुरजी के काव्य में भी ऐतिहासिक-प्रतीकों की सुन्दर योजना मिलती है। गिरिजाकुमार माथुर ने यथास्थान उस नवीन जागरण का संकेत ऐतिहासिक प्रतीकों के माध्यम से किया है जो पूर्ववर्तीकालों में होने वाले रक्तपात, हिंसा व अत्याचार को अब त्याग चुका है। उन्होंने हिंसा, अत्याचार व बर्बरता का संकेत ऐतिहासिक प्रतीक चंगेज द्वारा किया है—

'आदम का पुत्र बहुत
भटका न्यायों के
खून भरे घेरों के ।'[३]

अन्यायी और बर्बर शासकों के लिए कवि ने नीरो, सीजर, चंगेज तथा तैमूर आदि अत्याचारी ऐतिहासिक चरित्रों को प्रतीक-रूप में प्रस्तुत किया है—

अत्याचारों के लौह कवच
सीजर की असि-गूँजों से ले क्रूसेडो तक
नीरों, चंगेजों, तैमूरों के अट्टहास
उठकर सहसा हैं आ जाते
फिर बुझ जाते हैं काल चक्र की घूमों में ।'[४]

ऐतिहासिक प्रतीक-योजना में कवि ने कहीं-कहीं इतिहास के किसी विशिष्ट

---

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ७६,
२. जो बँध नहीं सका—माथुर, पृ० ३२
३. धूप के धान—माथुर, पृ० ७
४. धूप के धान—माथुर, पृ० १६

काल की प्रसिद्ध वस्तु-विशेष का नाम लेकर अर्थ की व्यंजना भी की है—

देश के इतिहास भी बनते बिगड़ते,
अश्रु जैसे ताज सुधि के
युगों की लंबी पलक से ढुलक पड़ते,
लाख कोहेनूर गिरते भूतिका में,
उलटते हैं एक क्षण में तख्त-ताऊसी हजारों ।[1]

उपर्युक्त पक्तियों में 'कोहेनूर' और तख्त-ताऊसी' किसी एक काल-विशेष के वैभव को स्पष्ट न करके, सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक वैभव के अन्ततः नष्ट हो जाने के भावों को ही अभिव्यंजित करते हैं ।

इसी प्रकार नीचे की पंक्तियों में आए प्रतीक भी इतिहास की एक घटना-विशेष को ही स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं—

'गोपा के सोते मुख की तस्वीर सलोनी
गौतम बनने के पहले किस तरह मिटी थी ।'[2]

यौन-प्रतीकों व संकेतों का उपयोग

'रेडियम की छाया' और 'चूड़ी का टुकडा' आदि माथुरजी की कुछ ऐसी कविताएँ भी हैं जिनमें यौन-भावना की अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिक प्रतीकों को अपनाया गया है ।

उन्हीं रेडियम के अंकों की छाया पर
दो छांहों का वह चुपचाप मिलन था,
उसी रेडियम की हल्की छाया में,
चुपके का वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था,
कमरे की सारी छांहों के हल्के स्वर सा,
पड़ती थी जो एक दूसरे से मिल-गुथंकर
सूनी सी उस आधी रात में ।'[3]

उपर्युक्त सांकेतिक चित्रण द्वारा आलिंगन-व्यापार का संकेत किया गया है, सम्पूर्ण चित्र ऐन्द्रिय सम्पर्क की मर्यादित अभिव्यक्ति में सफल रहा है ।

यौन-प्रतीकों के साथ-साथ कवि ने प्रकृति-प्रतीकों का भी सुन्दर प्रयोग किया है और इनके द्वारा मन के गोपनीय भावों की सहज अभिव्यक्ति की है । यथा—

सपना एक बचाते थे हम
देकर सारा सच जीवन का

---

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० १०७
२. वही, पृ० ११३
३. वही, पृ० ५६

एक ओसकन रस लेने को
देना चाहा मधुवन सारा ।'[१]

यहाँ 'ओसकन' का प्रयोग पावन स्मृति के रूप में किया गया है । जीवन की इस स्मृति को रखने के लिए कवि अपने समस्त सुख-साधनों को त्यागने के लिए भी तत्पर है । अतः 'ओसकन' व 'मधुवन' प्रतीकों की सुन्दर नियोजना हुई है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि माथुरजी की रचनाओं में लगभग सभी प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग व्यापक ढंग पर किया गया है । नगरीय बोध के कवि होने के कारण वैज्ञानिक प्रतीकों का इनमें बाहुल्य है । युगीनभाव-बोध की सहज और सक्षम अभिव्यक्ति के लिए धार्मिक, सांस्कृतिक, पौराणिक और ऐतिहासिक प्रतीकों का भी सफलता-पूर्वक निर्वाह किया गया है ।

अप्रस्तुत विधान—नयी कविता में शिल्पगत नवीनता का आग्रह प्रबल है । इसीलिए नये कवियों ने परम्परागत अप्रस्तुतों की निरर्थकता प्रतिपादित करते हुए नवीन अनुभूतियों व नवीन भावबोध के प्रस्तुतीकरण में परम्परा-ग्रहीत अप्रस्तुतों को अनुपयुक्त समझ और नये-नये अप्रस्तुतों (उपमानों) की योजना की । इस दृष्टि से माथुरजी ने भी सार्थकता दिखाई है । सूक्ष्म भाव-संवेदनों को अभिव्यंजित करने के लिए उन्होंने नये-नये तथा संक्षिप्त उपमानों की योजना की है जिनमें गुण-साम्य व प्रभाव-साम्य पर विशेष बल दिया गया है । इनके काव्य में उपमानों के प्रयोग चार रूपों में पाए जाते है । मूर्त के साथ मूर्त वस्तु की उपमा, मूर्त के लिए अमूर्त उपमान, अमूर्त के साथ अमूर्त उपमान तथा अमूर्त के लिए मूर्त उपमान । चारों प्रकार की उपमान योजना के उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) मूर्त प्रस्तुत के लिए मूर्त उपमान योजना

(१) **देह पड़ी रह जाती**
खोखले लिफाफे सी ।'[२]

× × ×

(२) **मुँह तक मैली चादर लपेटे**
हठरी से मकानों का
यह आधी सी सन्नाती चलती ।'[३]

× × ×

(३) **गालों की मोटाई जैसा**
यह पतझर का मौसम आया ।'[४]

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ११
२. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ३७
३. वही, पृ० ३४
४. धूप के धान—माथुर, पृ० ६३

मूर्त के लिए अमूर्त उपमान

'वहीं हरेक सनीचर के दिन
हाट लगा करती है,
भूतकाल की भटकी हुई आत्मा जैसी ।'[१]

अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान

(१) 'जिसकी सुधि आते ही पड़ती
ऐसी ठंडक मन प्रानों पर
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है
मीठी हरियाली-खुशबू मंद हवाओं में ।'[२]

× × ×

(२) 'यह जीवन का एकाकीपन
गरमी के सुनसान दिनों सा ।'[३]

अमूर्त के लिए मूर्त उपमान

(१) 'दर्द औ उदासी वह
सूने प्लेटफार्म सी ।'[४]

× × ×

(२) 'टूटती वाणी अकेली
ज्यों अकेली लहर आकर
टूट जाती पत्थरों पर ।'[५]

अतः स्पष्ट है कि माथुरजी ने परम्परागत उपमान (यथा—मुख, खंजन-कमल-नैन आदि) के स्थान पर तार्किक दृष्टि से समसामयिक जीवन तथा प्रकृति से उपमानों का चयन किया है ! आधुनिक मानव की उलझी संवेदनाओं के अनुरूप ही उन्होंने उपमानों की योजना की है जिसमें यथार्थता व वैज्ञानिकता की प्रधानता है।

उपर्युक्त चार प्रकार की उपमान योजना के अतिरिक्त गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में पुराण, प्रकृति, विज्ञान तथा जीवन के सामान्य क्रियाकलाप से भी उपमानों को ग्रहण किया गया है। विज्ञानसम्मत उपमानों का प्रयोग इनमें सर्वाधिक मिलता है। यथा—

वैज्ञानिक उपमान

(१) 'टूटी हुई देह सी टूटी-फूटी बेंचे

× × ×

१. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ६६,
२. धूप के धान—माथुर, पृ० ५
३. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ३२
४. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ३६
५. धूप के धान—माथुर, पृ० ५६

जर्जर एनेमिक प्रयासों से
भटके हुए मकान ।'[1]

(२) **'नीचे दबी कमजोर व्यक्ति सी धरती**
सिमटती चली जाती है
जैसे सिलाई की मशीन के नीचे
तेजी से पीछे को कपड़ा खिसकता है ।'[2]

'कमजोर धरती' यहाँ आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति का सही रूप सामने लाती है जो युगीन परिस्थितियों की असमानता के कारण अपने-आपमें ही सिमटता जा रहा है। माथुरजी के उपमान युगीन भावबोध की अभिव्यंजना में पूर्णतः सफल रहे हैं।

पौराणिक उपमान

'शिलापंख चमकीले' की 'खत' नामक कविता में गिरिजाकुमार माथुर ने 'खत' के लिए अनेक पौराणिक उपमानों की सुन्दर योजना की है। आधुनिक युग की 'खत' अमूल्य भेंट है जिसे विदेश के किसी कोने से कहीं भी भेजा जा सकता है। खत के आने से वैसी ही सिहरन तथा खुशी होती है जैसे अशोक वन में मुद्रिका के गिरने से सीता को—

'वही है दूर की अनमोल मुद्रा भेंट
यद्यपि सहज साधारन
जिससे उमगती मन में
अचानक अनकही सिहरन
लगती आज भी वह तेज चिनगारी
गिरी थी ज्यों उदास अशोक वन में
मुद्रिका प्यारी ।'[3]

आज परस्पर विचार-विमर्श का सबसे सस्ता साधन 'खत' है। यही वह माध्यम है जिसके द्वारा प्रियजनों का मिलन होता है। कवि ने खत को कहीं 'नए जमाने का हंस' कहा है तो कहीं 'कमल की पंखुरी पर लिखा गीत'—

'वही है मेघदूत नए जमाने का
वही है हंस
दमयन्ती मिलन को पास लाने का
उनींदे नयन में अनिरुद्धमय
सपना उषा का है

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ३६
२. वही, पृ० ३३
३. वही, पृ० २५

कमल की पंखुरी पर लिखा
गीत शकुन्तला का है।'[1]

सामान्य जीवन से ग्रहीत उपमान

सामान्य जीवन के क्रियाकलापों से भी कवि ने उपमानों की संयोजना की गई है, यथा—

'काली चिकनी सड़कों की ऊँची पटरी पर,
बढ़ता जाता वह मशीन सा,
चांदी के पहियों पर चलती हुई
मोटरों के स्वर सुनता।'[2]

इसी प्रकार का एक अन्य चित्र जिसमें सायंकाल का वर्णन इस प्रकार किया है—

'दूधिया चांद श्वेत हंसली सा
लालिमा सांझ की सिमट सारी
जा रही संवलते मैदानों से
जैसे घर लौटती किसान-बहू
काम दिन भर का करके खेतों से
लाल मुंह हो रहा है मेहनत से।'[3]

उपर्युक्त उपमानों के अतिरिक्त 'गृहलक्ष्मी सी सांझ', 'मरते ओले जैसा मन', 'स्वीट-पी जैसा छोटा लॉन', 'रुँधी हुई छाती-सा सूनापन', 'अन्तहीन मोह सी रात', 'गेहूँ की बाल जैसी धरा' तथा 'नयी याद से भरे हृदय के टुकड़े जैसा रेडियो' आदि सरल, सहज और सुन्दर उपमानों की योजना की है। इसी प्रकार अर्थमत्ता को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि ने कुछ प्रभावोत्पादक विशेषणों का प्रयोग किया है जैसे—'चंगेजी न्याय', 'आदिम छायाएं', 'आरोपित चेहरे', 'स्लेटी अंधेरा', 'बेहोश सभ्यतायें' तथा 'इन्सानी दर्द' आदि।

माथुरजी ने उपमानों तथा विशेषणों के अतिरिक्त अलंकारों द्वारा भी अपने काव्य को अलंकृत किया है। यद्यपि रूपक, उपमा, मानवीकरण आदि अलंकारों के प्रति कवि का आग्रह नहीं है किन्तु कहीं-कहीं सहज रूप में अभिव्यक्ति की तीव्रता के कारण अनायास ही इनकी निबंधना हो गई है। नीचे मानवीकरण का उदाहरण है जिसमें चांदनी को एक आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया गया है—

'स्लीवलेस ब्लाउज पहने
छरहरी चाँदनी

---

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० २५ २६
२. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ९३
३. धूप के धान—माथुर, पृ० ८०

पेड़ों की चमकदार जालियाँ तले
बेफिक्र मस्ती से
हलके कदम रख चलती
मुंह में मन्द-मन्द इलायची चबाती
नशीले सैक्स-रचे नखरे से
जान-जानकर
अठखेलियाँ करती अदा से।'

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण—

'छोटा सा यह नगर सो रहा,
ठण्डे गाल लिए गोरे बालक सा।'[१]

उपमा अलंकार का प्रयोग भी कवि ने कहीं-कहीं किया है। यद्यपि अलंकार के प्रति कवि का तीव्र आग्रह नहीं है फिर भी पौराणिक संदर्भ से सम्बन्धित कविताओं में अलंकार अनायास ही आ गए हैं। उपमा का एक सुन्दर उदाहरण जिसमें 'अज' की उपमा बालेन्दु से दी गई है—

नांदिनेय रघु से आज जन्मे
ज्यों बालेन्दु क्षीर सागर से
रूप कांति ज्यों एक दीप से
जलकर पाता दीप दूसरा।'[२]

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट है कि माथुरजी ने अलंकार-योजना द्वारा युगीन संवेदनाओं को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है'। उनकी अलंकरण योजना में यद्यपि यथार्थता व बौद्धिकता का समावेश है किन्तु जहाँ-तहाँ पाण्डित्य-प्रदर्शन के कारण दुरूहता तथा कृत्रिमता भी आ गई है। लेकिन समग्र रूप से उनकी उपमान योजना, विशेषण प्रयोग तथा अलंकार-योजना स्वाभाविक, सहज-सरल और भाव-संवेदनों को उभारने वाली है। उनकी सुरुचिपूर्ण अभिव्यक्ति करने वाली है।

छन्द-योजना

छन्दों के प्रति नये कवियों का दृष्टिकोण पूर्णतः विद्रोहात्मक रहा है। नये कवियों ने छन्द-रचना की पूर्व-प्रचलित सभी पद्धतियों को पूर्णतया अस्वीकार करते हुए अतुकान्त और मुक्त छन्द के नूतन रचनाविधान को स्वीकार किया है। आज की जटिल अनुभूतियों, बौद्धिक तथा वैचारिक चेतना की अभिव्यक्ति आदि को वर्ण, मात्रा, यति आदि नियमित छन्द-विन्यास द्वारा अभिव्यंजित नहीं किया जा सकता, क्योंकि कवि के मन में क्षण-विशेष में उठने वाले भावों में परस्पर-सम्बन्ध नहीं है। वे भाव-

१. जो बँध नहीं सका—माथुर, पृ० ५५
२. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ७३
३. धूप के धान—माथुर, पृ० १२१

छवियों स्वयं खण्डित हैं और खण्डित भाव-भंगिमाओं की अभिव्यक्ति मुक्त छन्द में ही की जा सकती है। छन्दों की परिवर्तनशीलता के विषय में कुंवर नारायण के विचार सार्थक प्रतीत होते हैं—'कुछ विषय ऐसे होते है जो कविता से एक स्वतन्त्र संगठन की मांग करते हैं, जिन्हें कोई बना-बनाया छन्द 'रेडिमेड' कपड़ों की तरह नहीं पहनाया जा सकता, बल्कि जिसके लिए भाषा और शब्दों को दूसरी तरह से कांटना-छांटना पड़ता है।···छन्द, जिन्हें कविता का व्याकरण कहना शायद गलत न होगा, कविता के विकास में कुछ उसी तरह टूटते और बनते चलते हैं जैसे भाषा के विकास में व्याकरण।'[१] अतः नवीन भाव-बोध को परम्परागत छन्दों में अभिव्यक्त करने से कथ्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। मुक्त छन्द में भावों की प्रवाह-मयता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। फलस्वरूप काव्य में शब्द और भाव की लय का निर्वाह सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

छन्द-सम्बन्धी नवीनता गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में सर्वाधिक उपलब्ध होती है। उन्होंने भी मुक्त छन्द को ही पसन्द किया है। उन्होंने छन्द के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोग किए हैं। छन्दों की स्वाभाविकता व नवीनता के साथ-साथ माथुरजी ने संगीतात्मकता पर भी विशेष बल दिया है। 'तार सप्तक' के 'वक्तव्य' में उन्होंने छन्द-सम्बन्धी नवीन विचारधारा का परिचय इस प्रकार दिया है—'मुक्त छन्द का मैंने सम्पूर्ण विधान रचा है। मुक्त छन्द को दो भागों में विभक्त किया है—वर्णिक और मात्रिक तथा इनके रूपान्तर। वर्णिक में मैंने कवित्त के विराम भी शुद्ध माने हैं, जब तक वे अनुच्चरित (अन-एक्सेण्टेड) वर्ण पर समाप्त न होकर उच्चरित (एक्सेण्टेड) पर समाप्त होते हैं। इस भाँति कवित्त के नियमों को लेकर कितने ही प्रकार की मुक्तछन्द-पंक्तियाँ निर्मित की हैं। सवैये के विरामों पर स्थित एक नये प्रकार का बहुत संगीतमय मुक्तछन्द लिखा है ('आज है केसर रंग रंगे')। एक कविता में एक ही प्रकार का मुक्त छन्द प्रयुक्त होना आवश्यक समझता हूँ। यदि उच्चरित वर्ण-विन्यास (सिलेबल) से पंक्ति आरम्भ हुई हो तो समस्त पंक्तियां उच्चरित से ही प्रारम्भ होनी चाहिएँ।······पंक्तियों के विरामों की ध्वनि-मात्राएं पूर्णतः सम एवं शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ। इन नियमों के विरुद्ध लिखा गया मुक्त छन्द अशुद्ध मानता हूँ।'[२]

मुक्त छन्द-सम्बन्धी मान्यताओं को माथुरजी ने अपने काव्य में पूरी-पूरी तरह निभाने की चेष्टा की है। इस प्रयास में उन्हें अन्य नये कवियों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। डॉ० शिवकुमार मिश्र के अनुसार—"माथुरजी अपने विविध प्रयोगों के बल पर न केवल अपने मुक्त छन्द को अधिक सुथरा बनाने में सफल हुए हैं, अपितु उन्होंने उसे एक सहज संगीतात्मकता भी प्रदान की है। उनका मुक्त छन्द चाहे वह

१. तीसरा सप्तक—कुंवरनारायण, पृ० २३५
२. तारसप्तक (वक्तव्य)—माथुर, पृ० १२५, १२६

कवित्त का आधार लिए हो, चाहे सवैये का, चाहे गजल अथवा बहर की लय पर आधारित हो, चाहे किसी अन्य लोक-प्रचलित माध्यम पर, सब में लय का समावेश पूरे आकर्षण के साथ विद्यमान मिलेगा।'[१]

गिरिजाकुमार माथुर ने कवित्त और धनाक्षरी आदि परम्परागत छन्दों को तोड़ने के साथ-ही-साथ उर्दू की 'गजल' और 'बहर' की लय के आधार पर तथा अंग्रेजी छन्दों के आधार पर रचना की है। माथुरजी के काव्य में छन्द-सम्बन्धी नवीनता के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

'आज हैं केसर रंग रंगे वन,
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी,
केसर के वसनों में छिपा तन,
सोने की छांह-सा,
बोलती आँखों में
पहिले वसंत के फूल का रंग है।'

उपर्युक्त कविता में सवैया को तोड़कर मुक्त छन्द की रचना की गई है जिसमें आन्तरिक लयवत्ता और संगीतात्मकता का पूर्ण निर्वाह किया गया है।

'नये साल की साँझ' कविता में छन्द-रचना वातावरण-निर्माण के लिए गजल के काल-मान पर की गई है—

'ये नये साल की है सांझ नई
एक और वर्ष की किरन उजल के डूब
उठ रहा है वह नया दूज का चाँद
दूधिया चाँद श्वेत हंसली सा।'[२]

रुबाइयों का प्रयोग भी माथुरजी की रचनाओं में मिलता है। उनकी रुबाइयों में सामाजिक चेतना और भविष्य के प्रति आस्था की अभिव्यंजना है। इस दृष्टि से 'मिट्टी के सितारे' कविता महत्वपूर्ण है—

'कल थे कुछ हम, बन गये आज अनजाने हैं
सब द्वार बन्द, टूटे सम्बन्ध पुराने हैं
हम सोच रहे यह कैसा नया समाज बना
जब अपने ही घर में हम हुए बिराने हैं।'[३]

'शाम की धूप' कविता में उर्दू की बहर को तोड़कर उनके काल-मान और लय के आधार पर नया मुक्त छन्द रचा है—

'चल पड़ी तेज हवा
बदल गया मौसम

१. नया हिन्दी-काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० ३६९
२. धूप के धान—माथुर, पृ० १६०
३. वही, पृ० ८२

आ गई धूप में कुछ गरमाई
बढ़ गया दिन का उजेला रस्ता
जिसपै सूरज के चमकते पहिये
शाम को देर तक चले जाते ।'[1]

माथुरजी की रचनाओं में लोक-गीतों के आधार पर भी छन्द-योजना उपलब्ध होती है। ऐसे गीतों में लोक-धुनों का आश्रय लिया गया है। लोक-गीतों में ग्रामीण-जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करने के साथ-साथ रोमानी भावनाओं का प्रकाशन भी सफलतापूर्वक किया है। इस दृष्टि से 'चांदनी गरबा' लोकगीत महत्व-पूर्ण है—

'उजला पाख क्वांर का फूला कास सा
खिली चंदीली रात की कली सुहावनी
नरम नखूनी रंग धुले आकाश में
छिटक रही है पूरनमा की चांदनी ।'[2]

काव्य में लयात्मकता का निर्वाह करने के लिए उपर्युक्त 'चाँदनी गरबा' नामक लोकगीत में कवि ने पूरनमासी के स्थान पर 'पूरनमा' शब्द का प्रयोग किया है। छन्द में 'पूरनमासी' शब्द के स्थान पर उसका दूसरा पर्याय भी नहीं रखा है क्योंकि देशज वातावरण के अनुरूप यही शब्द अधिक संगत था।

उर्दू छन्दों के साथ-साथ अंग्रेजी छन्दों का भी माथुरजी ने कहीं-कहीं प्रयोग किया है। 'वसन्त एक प्रगीत स्थिति' नामक कविता में अंग्रेजी छन्द 'ओड' का प्रयोग किया है—

'पिया आया बसंत फूल रस के भरे
फूल रस के भरे
गंध जुड़े कसे
चली पियरी बतास
छाई मन में दिगंत
अमलतासी उजास
रोमतन गुलमुहर
लाल शीतल चिराग
गोल फूलों में घुंघची से
काले पराग
नई सरसों के फलों से केसर भरे
फूल रस के भरे ।'[3]

---

१. धूप के धान—माथुर, पृ० २७
२. वही, पृ ७३
३. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ५३

प्रस्तुत पंक्तियों में निश्चित व्यवस्था का स्टेंजा 'फुल रस के भरे' बार-बार दुहराया जा रहा है।

माथुरजी ने मात्राओं के आधार पर अपनी इच्छानुसार छन्दों का निर्माण भी किया है। 'युगारंभ' कविता में २३ मात्राओं के चरण को लिया गया है। चरण में ६, ६, ६, ५, पर यति योजना है। चरणांत में लघु-गुरु की सर्वत्र योजना है। 'एशिया का जागरण' कविता, ३२ मात्राओं के चरण है। यति का क्रम १०, ६, १०, ६ का है लेकिन मात्राओं की एक रूपता का निर्वाह सर्वत्र नहीं किया गया है।

गिरिजाकुमार माथुर ने छन्दों को अनेक स्थलों पर भंग किया है। ऐसा उन्होंने भाववस्तु में नव्यता लाने के लिए किया है। इस दृष्टि से माथुरजी के विचार द्रष्टव्य हैं—'जिस पंक्ति में मेरा कथ्य पूरा हो गया है किन्तु छन्द के अनुसार चरण की मात्राएँ या गतियां पूरी नहीं हुईं, उसे शुद्ध रखने के लिए अनावश्यक शब्दों, पर्यायों या विशेषणों की भरती नहीं की, जान-बूझकर न्यूनाधिक रहने दिया है।[१] कवि के इस कथन की पुष्टि 'छाया मत छूना मन' कविता से स्पष्टतः की जा सकती है—

'यश है, न वैभव है, मान है—न सरमाया
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया
प्रभुता का शरण-बिम्ब केवल मृगतृष्णा है
हर चंदिरा में छिपी एक रात कृष्णा है।'[२]

'हर चंदिरा में छिपी एक रात कृष्णा है' इस पंक्ति का 'में' शब्द दो मात्रा का है जबकि छन्द के अनुसार यहाँ एक मात्रा की ही आवश्यकता है। 'में' शब्द में एक अधिक है किन्तु छन्द-भंग होने के बाद भी उसे उसी रूप में रहने दिया है, क्योंकि 'चंदिरा' तथा छिपी' जैसे अर्थवान शब्द को बदला नहीं जा सकता।

छन्द-भंग का एक अन्य उदाहरण 'अनकही बात' कविता में देखा जा सकता है—

'खेल से
पल्ला जो उंगली पर कसा
मन लिपट कर रह गया
छूटा नहीं।'[३]

'पल्ला' शब्द में एक मात्रा कम होने पर भी पूरी पंक्ति में आन्तरिक लयात्मकता है फलस्वरूप मात्रा की कमी खटकती नहीं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माथुरजी ने कहीं भी छन्दों के बन्धन को स्वीकार नहीं किया है। लयात्मकता व भावबोध की स्पष्टता के कारण जहाँ कहीं भी

१. नयी कविता: सीमाएं और सम्भावनाएं—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १२३
२. धूप के धान—माथुर, पृ० १०१
३. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ५१

उन्हें छन्द-भंग करने की आवश्यकता अनुभव हुई है वहां उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता से काम लिया है। छन्द-निर्वाह से अधिक कवि का ध्यान वातावरण निर्माण, अर्थवत्ता व भाव-व्यंजना पर रहा है। छन्द-योजना की संक्षेप किन्तु भावव्यंजना की संक्षेप शैली का सफल प्रयोग 'अनकही बात' 'हेमंती पूनो', 'सिंधु तट की रात', तेंतीसवी वर्षगाँठ' 'खटमिट्ठी चांदनी' आदि कविताओं में मिलता है।

ध्वनि-विधान के सम्बन्ध में भी माथुरजी ने नए विचार प्रस्तुत किए हैं। ध्वनि से उनका तात्पर्य शब्दों की 'नाद शक्ति' से है। विषय की व्यंजना अथवा काव्यगत संकेतार्थ से नहीं। उन्होंने व्यंजन ध्वनियों के स्थान पर स्वरध्वनियों को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार, 'शब्द की आत्मा स्वर-ध्वनि है, इसी कारण उस पर अवलम्बित संगीत आन्तरिक, गम्भीर और स्थायी है। वह आकाश-तत्व का संगीत है················मुक्तछन्द के अन्तःसंगीत में (मैंने) उन्हीं ध्वनियों की गूँजे धुनी हैं।'[१] प्रस्तुत कथन का निर्वाह माथुरजी की रचनाओं में सर्वत्र मिलता है। उन्होंने यथास्थान व्यंजनमूलक तुकान्तों के स्थान पर (स्वर-ध्वनियों' के तुकान्तों का प्रयोग किया है यथा—'रेशमी' की तुक 'जामुनी' से (ईकरान्त समानता), महलों की अलकों से, 'हाथ हल्दी रचे' की) 'फूल रस के भरे' आदि से की है।

'तेतीसवीं वर्षगांठ' कविता से स्वर-ध्वनिमूलक तुकान्तों का एक उदाहरण—

'है गनीमत हम न सड़कों पर गिरे
भूख रोगों से नहीं अब तक मरे
है यही क्या कम कि औसत उम्र से
जिंदगी के दस बरस ज्यादा हुए।'[२]

ध्वनियों के अतिरिक्त 'नाद' शब्द का प्रयोग भी कवि ने विशेष शिल्पगत प्रक्रिया के लिए किया है। उनके अनुसार, "अर्थ की अच्युत अभिव्यक्ति करने वाले शब्दों की एकैक ध्वनियों के मिश्रण से रचना का नाद-रेखापट बनता है।"[३] स्वर-ध्वनियों पर आधारित नाद-तत्व में आन्तरिक गतिमयता व लयात्मकता उत्पन्न करने की शक्ति अधिक रहती है। अनुभूति की अर्थव्यंजना और स्वरध्वनियों के बीच के प्रगाढ़ सम्बन्ध को प्रस्तुत पंक्तियों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

'जब मेरी आँखों में
बादल सूनी बेमानी शामों की
स्तब्धताएं मंडराती हैं
जब मेरी वाणी में
बिन धूमर पीड़ा से असहाय
बच्चों के बेकसूर चेहरे उतरते हैं।'[४]

१. तारसप्तक (वक्तव्य)—माथुर, पृ० १२६
२. धूप के धान, माथुर—पृ० ६३
३. नयी कविता: सीमाएँ और सम्भावनाएँ—माथुर, पृ० २०, २१
४. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ८४

इन पंक्तियों के प्रत्येक अंश में अर्थ की अभिव्यक्ति स्वर-ध्वनि प्रधान नागपट के माध्यम से हुई है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नये कवियों में माथुरजी ने छन्द-विधान के क्षेत्र में अनेक मौलिक उद्भावनाएं की हैं। उन्होंने अपने काव्य में उर्दू व अंग्रेजी छन्दों का सुन्दर प्रयोग किया है किन्तु कहीं भी छन्द के बन्धनों को स्वीकार नहीं किया है। सशक्त भाव-व्यंजना के लिए कवि ने स्वतंत्रतापूर्वक छन्दों को भंग भी किया है। तुकान्त योजना के लिए उन्होंने अधिकांशतः स्वरध्वनियों का ही आश्रय लिया है। संगीत से निकट परिचय होने के कारण छन्द की आन्तरिक लयात्मकता व अर्थव्यंजना का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। छन्दविधान की दृष्टि से नयी कविता में माथुरजी का स्थान अग्रणी है।

शैली के विविध रूप

नये कवियों में गिरिजाकुमार माथुर ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनके काव्य में शैली के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। उनके काव्य में छायावादी गीत-शैली से लेकर आधुनिकतम पत्र, संलाप एवं एकालाप शैली तक के दर्शन होते हैं जिनमें उनकी उच्च प्रतिमा व भावबोध की सूक्ष्मता मिलती है। काव्य-रूपों की विविधता होने का प्रधान कारण यह है कि कवि ने पौर्वात्य व पाश्चात्य काव्यरूपों का गहन अध्ययन करके उनमें समन्वय स्थापित किया है। नगरीय बोध का कवि होने पर भी लोकगीतों तक की धुनों का सुन्दर प्रयोग किया है। उनके काव्य में पाए जाने वाले काव्य-रूप इस प्रकार हैं—

प्रगीत (लिरिक)

प्रगीतों का उत्कर्ष छायावाद-युग से सर्वाधिक मिलता है। इसमें विविध अनुभूतियों की अखण्ड तथा एकतान अभिव्यक्ति की जाती है अर्थात् भावों की अन्विति प्रगति का मुख्य तत्व है। इस प्रकार की प्रगीतात्मक कविताएं माथुरजी के प्रथम काव्य-संग्रह 'मंजीर' में मिलती है जिसमें प्रभावोत्पादकता के साथ-साथ संगीतमयता भी है। संगीतमय शब्दों में विविध मनोदशाओं की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति मिलती है। यथा—

तुमने प्यार नहीं पहचाना
तुमने जिसको समझा गागर
आग भरा वह मेरा सागर
वे मेरे मोती थे जिनको
तुमने समझ लिया था पत्थर
उन सफेद हलके फूलों को

तुमने छोड़ा धूल बताकर
मिटती लहर सोचकर तुमने उठता ज्वार नहीं पहिचाना।'[१]

गीत—गीत के सम्बन्ध में माथुरजी का विचार है—'मैं गीत को अनुभूति का प्रतीक चित्र मानता हूं। अभिधामूलक अभिव्यंजना के स्थान पर सांकेतिकता की सबसे अधिक आवश्यकता गीत में होती है, यह मेरी स्थापना है।[१] मेरी दृष्टि में गीत यथार्थ जीवन से उत्पन्न छोटी-से-छोटी मानसिक प्रतिक्रियाओं और तीखी अनुभूतियों की भावनामयी अभिव्यक्ति होते हैं, जो लम्बी रचनाओं की तरह विस्तृत बारीकियों में न जाकर अनुभूति के निचोड़ को खण्ड-रूप में व्यक्त करते हैं। अनुभूति के वे सार-खण्ड होते हैं।'[२] गीतों की परम्परागत टेकनीक में भी माथुरजी ने परिवर्तन किया है। उन्होंने सर्वत्र चार पंक्ति वाले 'चरणों' का निर्वाह नहीं किया है। भावाभिव्यंजन की आवश्यकतानुसार उन्होंने गीत के बीच में अतुकान्त पंक्तियों का प्रयोग भी किया है। इससे यान्त्रिक रूपाकार में काफी परिवर्तन हुआ है और गीतों में भाव-विस्तार के लिए स्वतन्त्रता भी मिली है। हेमंती पूनो' कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'आज दिखता है दही सा चांद शीतल
कौन जाने स्याह शीशा चांद हो कल
उड़े उजली धूल बनकर चांदनी भी
आबनूसी मूर्ति सी हो आयु उज्ज्वल
इसलिए हेमंत की
यह मंद ठिठुरन
तन छुवन से
उष्म तुम कर दो, रसीली।'[३]

कहीं-कहीं कवि ने परम्परागत रूपाकार का भी प्रयोग किया है जिसमें प्रारम्भ की दो पंक्तियाँ जिनकी तुकें आपस में मिलती हैं इसके पश्चात् चार पंक्ति वाले टाइप बन्द अंतरे। ये चारों पंक्तियां भी तुकान्त होती हैं। इसके बाद अस्थायीनुमा पहली पंक्ति या पंक्तियों से मिलनेवाली पंक्ति आदि है और 'बन्द' का एक चरण समाप्त हो जाता है। इस प्रकार की शैली का प्रयोग भी माथुरजी के काव्य में मिलता है—

'छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन
जीवन में हैं सुरंग सुधियां सुहावनी

---

१. मंजीर—माथुर, पृ० ५०
२. नयी कविता : सीमाएँ और सम्भावनाएं—माथुर, पृ० १२६
३. धूप के धान—माथुर, पृ० ११२

छवियों की चित्र-गंध फैली मनभावनी
तन सुगंध शेष रही बीत गई यामिनी
कुतंल के फूलों की याद बनी चांदनी
भूली सी एक छुवन
बनता हर जीवित क्षण
छाया मत छूना, मन
होगा दुख दूना, मन ।'[१]

अंग्रेजी एलर्जी के आधार पर माथुरजी ने शोकगीत भी लिखे हैं। शोकगीत से अभिप्राय है—किसी स्नेही व्यक्ति के दिवंगत होने पर उसके प्रति शोकपूर्ण रचना—गाँधीजी के निधन पर लिखी 'सायंकाल' नामक कविता का उदाहरण—

'सूरज डूब गया धरती का सायंकाल हुआ
काल पुरुष मिट गया, धरा का सूना भाल हुआ
आदि ज्योति उठ गई आज
मिट्टी के घेरे पार
युग की अक्षय आत्मा सिमटी
बली एक चीत्कार
आज समय के चरण रुक गये
हुई प्रलय की हार ।'[२]

मोनोलॉग या एकालाप

शैली के इस रूप में कविता में भाषण निहित रहता है और श्रोता मौन रहता है। इस प्रकार की कविता में संवादों व घटनाओं का अभाव रहने पर भी चरित्र-विशेष के मनोविश्लेषण की सम्भावनाएँ प्रस्तुत रहती हैं। इस दृष्टि से गिरिजाकुमार माथुर का 'याज्ञवल्क्य और गार्गी' एकालाप महत्वपूर्ण है जिसमें अव्यक्त अक्षर निर्गुण ईश्वर को 'अणु' शक्ति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है—

'प्रश्न मत पूछो
निरुत्तर हूँ
× × ×
क्योंकि अब अव्यक्त, अक्षर
सूक्ष्म निर्गुण तत्व में
जीवित धरा में
रण ठना है

१. धूप के धान—माथुर, पृ० १०१
२. वही, पृ० ४४

हो गया है पिशन अणु का
परम ब्रह्म अनादि मनु का।"[1]

डायलॉग अथवा संलाप-शैली

इस काव्य-रूप के अन्तर्गत दो पात्रों आदि के मध्य संलाप होने के कारण नाटकीयता की नियोजना की जाती है किन्तु काव्यगत संवाद नाटक के संवाद से भिन्न होते हैं। माथुरजी ने इस संलाप-शैली का उपयोग 'देह की आवाज' कविता में किया है। इसमें शरीर और मन के बीच छन्दमय वार्तालाप है। मन इस भौतिक शरीर की व्यर्थता और आत्मा की महत्ता को प्रतिपादित करता है। किन्तु शरीर का कहना है कि बुद्धि, ज्ञान व आत्मा देह-तेज की ही भावकृति है। देह से ही मन-रूपी पंकज खिलता है—

'मन ने शरीर से पूछा
क्यों है इतना आकर्षण
रसमय चुम्बकमय कसी देह का
× × ×
पशुओं जैसे सब काम
देह करती है
छिन भरी जन्मती, जीती है, मरती है
× × ×
उत्तर में फिर आवाज
देह की बोली
थे बुद्धि-ज्ञान, आत्मा की सभी अदितियाँ
है देह-तेज की ज्योतित भावाकृतियाँ
खिलता है देह बीज से
पंकज मन का।'[2]

पत्र-शिल्प

कथा-साहित्य की भांति कविता के क्षेत्र में भी इस शैली का प्रयोग हुआ है। इसमें पत्र की कल्पना करके उत्तर देने की प्रक्रिया का समावेश होता है। पत्र-शिल्प का प्रयोग गिरिजाकुमार माथुर ने अपने नवीन काव्य-संग्रह 'जो बंध नहीं सका' की प्यार की तीन व्यंजनाएं" कविता में किया है। तीन अलग-अलग पत्रों में अपने प्रणय-भावनाओं को प्रेयसी के प्रति निवेदित किया गया है। उदाहरण—

'दो खत भेज चुका हूं
पर उत्तर नहीं आया

१. धूप के धान—माथुर, पृ० ७९
२. वही, पृ० १०३, १०६, १०७

तुम्हारा
हमेशा यही करती हो
सोचती ही नहीं
कि इधर भी डाकखाना है
और डाकिया रोज यहाँ भी आता है
×　　　×　　　×
और प्यार का यह हाल है
कि पूरा का पूरा
कलश सब उंडेल दिया
केवल तुम्हारे लिए
फिर भी तुम
बूंद से भी कम उसे मानती ।'[१]

काव्य-रूपक

पन्त के रजत-शिखर व शिल्पी आदि काव्य-रूपकों की भांति माथुरजी ने भी 'इन्दुमती' काव्य-रूपक की सृष्टि की है। नयी कविता में यह नवीन प्रयोग है। इस काव्यरूपक में दो पात्र हैं—इन्दुमती और सुनन्दा तथा प्रधान घटना है—इन्दुमती और अज का विवाह। काव्यरूपक के प्रारम्भ में रघुकुल की उज्जवल गाथा का संक्षेप में वर्णन किया है। इसके पश्चात् अज की तेजस्विता का चित्रांकन, तत्पश्चात प्रभातकाल का सुन्दर आलेखन किया है। काव्यरूपक के बीच में स्वयंवर गीत भी है। गीत के पश्चात सुनन्दा स्वयंवर में आने वाले नरेशों का एक-एक करके परिचय देती है किन्तु इन्दुमती अज के गले में माला डाल देती है—

'मूर्तिमय अनुराग जैसी वह स्वयंवर माल
कामिनी ने त्यों भुजाएं कंठ में दीं डाल
इन्दु अज का मिलन जैसे सिंधु सुरसरिधार
ज्यों शरद के चंद्रमा से चाँदनी सुकुमार ।'[२]

लोकगीतों की धुनों पर आधारित गीत

नयी कविता में भाषा को अधिकाधिक जनसामान्य के स्तर तक लाने के आग्रह के कारण लोकगीतों की धुनों पर आधारित गीतों की रचना भी प्रारम्भ हुई है। इस प्रकार के प्रयोग माथुरजी की रचनाओं में भी मिलते हैं। गुजराती लोक-नृत्य 'गरबा' के साथ गाए जाने वाले गीता के आधार पर उन्होंने 'चाँदनी गरबा' गीत की रचना की। इसके विषय में माथुरजी ने स्वयं लिखा है—'चाँदनी गरबा' का छन्द एक गुजराती लोक-गीत से लिया है जिसे गरबा नृत्य के समय गाया जाता है—(अशी

१. जो बंध नहीं सका—माथुर, पृ० ६८, ६६
२. धूप के धान—माथुर, पृ० १३०

माशे शरद पुनमनी रात जे—चांदलिया उग्यो रे सीस म्हारा चौक मां) ।'[1] इसकी कुछ पंक्तियां—

'उभरे रोए छुवा गई है चांदनी
सींग नुकीले चुभा गई है चांदनी
चंचल नयनी गोरी हिरनी चांदनी ।'[2]

गरबा-नृत्य की यह विशेषता है कि ज्यों-ज्यों गीत अन्त की ओर बढ़ता है त्यों-त्यों गीत में तीव्रता आने लगती है । फलस्वरूप गीत द्रुत गति में गाया जाने लगता है । गरबा नृत्य की प्रस्तुत विशेषता का पूर्णतः निर्वाह इस गीत में किया गया है ।

समाज यथार्थ शिल्प

इस शिल्प के भी सर्वप्रथम प्रयोगकर्ता माथुरजी हैं और इस दृष्टि से श्रेष्ठ रचना है—ढाकवनी । कवि के अनुसार—'ढाकवनी' में 'जहाँ एक ओर वातावरण निर्माण के लिए जनपदीय (बुन्देलखण्ड) उपमान, प्रतीक और शब्द-योजना का आधार लिया गया है, वहाँ दूसरी ओर 'समाज-यथार्थ (सोशल रियलिज्म) के शिल्प का प्रथम बार उपयोग किया गया है ।'[3] ग्रामीण जीवन का अभावग्रस्त यथार्थ चित्र कवि ने इसमें प्रस्तुत किए है । उदाहरणस्वरूप—

'घन वनस्पति भरे जंगल
और यह जीवन भिखारी
शाप नल का घूमता है
भौथरे है हल कुल्हाड़ी'[4]

क्यूबिस्ट शिल्प का प्रयोग

'शिलापंख चमकीले' की 'नयानगर' कविता में कवि ने इस नए शिल्प का सफल प्रयोग किया है—

'छोरहीन धातु खंभ, अनुलोम ताम्रतार
वर्गकटी चनखारी, पत्थर की रेखाएं
सधे ठसे डामर की नहर, सड़क—धाराएं
रोशनी-भुजाएं समानान्तर खिंची हुई
स्याह धरातल पर बिम्ब-वृत डालती हुई ।'[5]

माथुरजी ने कविता को विज्ञान जैसे अछूते क्षेत्र में ले जाने का प्रयास भी

१. धूप के धान (निवेदनम्)—माथुर, पृ० १५
२. वही, पृ० ७३
३. वही, पृ० १५
४. वही, पृ० ६८
५. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ७१

किया है। ऐसा करते हुए इतिहास के प्रति उन्होंने नवीन लाजिकल दृष्टि प्रस्तुत की है। 'पृथ्वी-कल्प' इसका सुन्दर उदाहरण है। पृथ्वीकल्प पद्धतियों के विराट्, संघर्ष पर आधारित प्रतीक-नाट्य है। इस प्रतीक-नाट्य में ऐतिहासिक दृष्टि से मानवीय तथा दानवी प्रवृत्तियों के संघर्ष को दर्शाया गया है। अन्त में कवि ने यही प्रतिपादित किया है कि सदैव वर्बरता, क्रूरता व अन्याय की पराजय होती है और मानवीय मूल्यों की विजय होती है

'धरती की सुन्दरता
सृष्टि इनसान है,
संशय, भय, घृणा
सुहृद, लिप्सा शैतान है।
× × ×
जड़वादी पंजों में जकड़ी संस्कृतियों पर,
जीत इनसान की
पृथ्वी की गाथा
इतिहास की कहानी है।'[१]

उपर्युक्त काव्यशैलियों के अतिरिक्त 'जो बंध नहीं सका' की 'रोएंभर का स्पर्श' कविता में फेंटेसी का प्रयोग भी किया गया है। 'देह के दूरियां' रचना में काल-विभा (टाम-डायमेन्शन) की एक अस्पर्शित अनुभूति है।

गिरिजाकुमार माथुर ने कई लम्बी कविताओं की रचना भी की है। ये वृहदाकार कविताएं उनके काव्य की श्रेष्ठ उपलब्धि हैं। लगभग सभी काव्यसंग्रहों में ये मिलती हैं। उदाहरणस्वरूप—'मंजीर' की 'जौहर की धूल', 'प्रेम से पहले', 'तूफानों का छाया', 'विजय'; 'धूप के धान' की 'एशिया का जागरण', 'पहिए', 'प्रौढ़ रोमांस', 'देह की आवाज', 'धरादीप'; शिलापंख चमकीले की 'तूफान एक्सप्रेस की रात', 'हब्श देश' आदि तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ कविताएं यथा इतिहास के जर्राहों से' 'एक अधनंगा आदमी', 'विक्षिप्तों का जुलूस' तथा 'निर्णय का क्षण'। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कवि की नयी कविताएं दस-दस पृष्ठ तक की हैं। हिन्दी कविता को यह उनकी अमूल्य देन है जो उनकी काव्य-शैली का रूप प्रस्तुत करती है।

समग्र रूप कहा जा सकता है कि गिरिजाकुमार माथुर ने विविध काव्य-रूपों के प्रयोग द्वारा नयी कविता को पर्याप्त समृद्ध किया है। नवीन शिल्प-विधान के क्षेत्र में माथुरजी की देन अविस्मरणीय है। प्राचीन काव्य-रूपों से लेकर नव्यतम काव्य-शैली का प्रयोग उन्होंने अपने काव्य में किया है। काव्य-रूपों के क्षेत्र में इतनी विविधता शायद ही किसी अन्य नये कवि में मिलती हो। यह कवि की सूक्ष्म और

१. तारसप्तक—स० अज्ञेय, पृ० १७४

सारग्राहिणी दृष्टि तथा समन्वयात्मक प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि उनके काव्य में परम्परागत तुकान्त गीत-शैली, छायावादी प्रगति शैली से लेकर मनोलाप, संलापशैली और यहां तक कि कथाकाव्य की पत्र-शैली का भी प्रयोग मिलता है।

भाषा और शब्दचयन

भाषा के क्षेत्र में नयी कविता ने युगान्तकारी परिवर्तन किया है। आधुनिक भावबोध तथा युगीनपरिवेश की परिवर्तनशीलता के कारण काव्य की विषय-वस्तु में तीव्र परिवर्तन आ गया है। काव्य की इस नवीन विषय-वस्तु के संप्रेषण के लिए नये कवियों ने 'न केवल नई भाषा की खोज प्रारम्भ की, अथवा नए शब्दों के निर्माण का संकल्प किया वरन् पुराने शब्दों का नया संस्कार करने, उनमें प्रचलित अर्थों से अधिक नया अर्थ भरने और इस प्रकार उनमें ताजगी लाने की ओर भी प्रवृत्त हुए।'[1]

छायावाद की कृत्रिम, अलंकृत तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा के स्थान पर नये कवियों ने बोलचाल की सामान्य-भाषा का प्रयोग किया, शब्दों को नये अर्थ प्रदान किए और काव्य भाषा को जन-सामान्य तक लाने का प्रयास किया। दर्शन, विज्ञान, फैक्टरियाँ, गांव, शहर आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से शब्दों का चयन किया। हिन्दी के अतिरिक्त इतर बोलियों के शब्दों, उर्दू की शब्दावली व मुहावरे तथा अंग्रेजी के वाक्यविन्यास तथा विरामचिन्ह आदि का स्वच्छन्द प्रयोग करके नये कवियों ने काव्यात्मक जागरूकता का ही परिचय दिया है। नयी कविता में विचार-वस्तु के अनुरूप सशक्त अभिव्यंजना-कौशल पर अधिक बल दिया गया है।

भाषा के क्षेत्र में गिरिजाकुमार माथुर ने नयी कविता को सरलता—सादगी और विशिष्टता प्रदान की है। उनके काव्य में प्रगति और प्रयोग का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। उन्होंने शब्दों को न केवल नये अर्थ प्रदान किए अपितु नये शब्दों को खोजा भी है। कवि की स्पष्ट मान्यता है कि रचनाकार की विचारधारा यदि स्पष्ट नहीं है 'तो उसकी अभिव्यंजना के जो उपकरण हैं अर्थात् भाषा, प्रतीक, उपमान, अपने-आप अस्वाभाविक, अधूरे, खंडित और रूप-व्यक्तित्व-विहीन होंगे। भाषा जान-बूझकर बिगाड़ी या गढ़ी हुई होगी जिसका व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध न होगा।'[2] लयात्मकता व रंगयोजना की ओर भी कवि का पूरा-पूरा ध्यान गया है। माथुरजी के अनुसार प्रत्येक शब्द का अपना अलग अर्थ होता है, अलग संस्कार होता है। अतः किसी शब्द को यदि उसके स्थान से हटा दिया जाए तो काव्यगत लयात्मक-सौन्दर्य समाप्त हो जाएगा।

विषयानुकूल भाषा का प्रयोग माथुरजी के काव्य की विशेषता है। रोमानी कविताओं में उन्होंने श्रुतिमधुर कोमल शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों पर छोटी और मीठी ध्वनि वाले साधारण बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है—

१. नया हिन्दी-काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र, पृ० ३५६
२. धूप के धान (निवेदनम्)—माथुर, पृ० ११, १२

'अधर पर धर क्या सोई रात
अजाने ही मेंहदी के हाथ
मला होगा केसर अंगराग
तभी पुलकित चंपक-सा गात ।'[1]

क्लासिकल कविताओं में आर्यागुण लाने के लिए बड़ी लम्बी और गम्भीर ध्वनि वाले शब्दों का प्रयोग किया है । इस दृष्टि से 'राम', 'युग सांझ' तथा 'हब्सदेश' आदि कविताएँ महत्त्वपूर्ण हैं । 'राम' कविता का उदाहरण प्रस्तुत है—

'देश-दिशाएं, काल, लोक, सीमा से आगे,
वह त्रिमूर्ति चलती जाती मन के फूलों पर
अपने श्यामल और चरण को पावन करती
वर्षों, सदियों, युगों, युगों के इतिहासों को ।'[2]

शब्दों की ध्वन्यात्मकता व लयात्मकता का भी कवि ने पूरा-पूरा ध्यान रखा है । प्रत्येक शब्द की आत्मा को उद्घाटित करने की चेष्टा की है । उसके द्वारा व्यंजित अर्थ-व्यजंनाओं को स्पष्ट किया है । कुछ शब्दों को कवि ने वातावरण का ध्वनि-भाव लेकर गढ़ा है जिनमें प्रमुख है—'सुनसान' तथा 'खंडरों' आदि शब्द—

'गूंजता था सूनसान
ऊजड़ खंडरों में
गिरते थे पत्ते
वन-पंछी नहीं बोलते थे ।'[3]

माथुरजी के अनुसार उपर्युक्त पंक्तियों में 'सुनसान' शब्द में 'ऊ' की ध्वनि लम्बाई और दूरी व्यक्त करती है, 'आ' की ध्वनि विस्तार । बीच में 'न' की ध्वनि सनसनाहट और गहराई व्यक्त करती है' ।[4] इस प्रकार 'सूनसान' शब्द गहरे सुनसान के यथार्थ रूप को प्रकट करता है ।

भाषा के इन रूपों के अतिरिक्त साधारण बोलचाल की भाषा का भी इन्होंने सर्वत्र प्रयोग किया है । भाषा के सरल-प्रवाह और संलाप शैली का एक उदाहरण—

'मेरे विरही युवा मित्रवर
तुम जिस दुख से परेशान हो
वह सचमुच है दु:ख नहीं कोई जीवन में
असली दुख हैं और बहुत से
तुम जिसको हो समझ रहे भारी पहाड़ सा
वह तो कागज सा हल्का ।'[5]

१. मंजरी—माथुर, पृ० ७०
२. नाश और निर्माण—माथुर, पृ० ११८
३. वही, पृ० ५४
४. तार सप्तक—सं० अज्ञेय, पृ० १२५
५. धूप के धान—माथुर, पृ० २२

मानव की असहाय अवस्था तथा युगीन भावबोध की अभिव्यक्ति कवि ने वैज्ञानिक शब्दावली में इस प्रकार की है—

'लाल भट्टियों के इस नये कारखाने में
बैठा है मतवाद सम्प्रदायों सा कट्टर
दल की बृहद् निहाई पर
मानव आत्मा को लिये टीन सा
ठोंक रहा है, पीट रहा है
एक सरीखा-जस्ते का-सा ब्लाक बनाने ।'[1]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रसंगानुसार कवि की भाषा में स्वतः, अन्तर आ गया है। कहीं उन्होंने कोमल-कान्त पदावली का प्रयोग किया है तो कहीं आर्या-गुण प्रधान दीर्घस्वरों का; कहीं साधारण बोलचाल की संलापमयी भाषा है तो कहीं वैज्ञानिक शब्दावली ।

शब्द-प्रयोग

माथुरजी के काव्य में शब्दों का साभिप्राय प्रयोग मिलता है। उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों के साथ-साथ विज्ञान एवं लोकजीवन के विविध क्षेत्रों से शब्दों को ग्रहण करके अपने शब्द-भण्डार को पर्याप्त समृद्ध किया है।

स्वनिर्मित शब्द-प्रयोग

गिरिजाकुमार माथुर ने परम्परागत शब्दों के अतिरिक्त कुछ नये शब्दों का स्वयं निर्माण किया है यथा—बैसंदर (यज्ञ की अग्नि), पतिचालन (रेजीमेंटनेशन के अर्थ में), अतिमांत (आत्यंतिक के अर्थ में), हम्मदा (पथरीला रेगिस्तान), समूम (अत्यंत गर्म रेगिस्तानी हवाएँ), भूमानी (पृथ्वी की आभा), चंदरिमा (चन्द्रमा की आभा), मटीली (मिट्टी के रंग की) तथा धुव्वन (स्पर्श) आदि।

अंग्रेजी शब्दों का हिन्दीकरण

ध्वनिसाम्य के कारण अंग्रेजी के कुछ शब्दों को कवि ने हिन्दी शब्दों जैसा बना दिया यथा—पेचरोल—यहाँ पेच शब्द हिन्दी का है और 'रोल' शब्द अंग्रेजी का। दोनों को मिलाकर पेचरोल नया शब्द बना दिया जो लिपटे हुए दुचके के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

नवीन वैज्ञानिक शब्दों का निर्माण

कवि ने कुछ वैज्ञानिक शब्दों का स्वतः निर्माण करके उन्हें नया **अर्थ प्रदान** किया है। उदाहरण स्वरूप—'ज्वाल रज'—इस शब्द का प्रयोग अणुविस्फोट में पदार्थ के भस्म होने के रूप में किया गया है। 'नागछत्र'—इस शब्द का प्रयोग अणु-विस्फोट के पंगस रूप—धूमबाद्दल के अर्थ में क्रिया गया है। 'स्पर्शभरी' शब्द का प्रयोग भौंथरे के अधिक डेलीकेट-शेड के रूप में हुआ है।

---

१. तार सप्तक—सं० अज्ञेय. पृ० १७६

लोक भाषा के शब्द

हिन्दी से इतर भाषाओं व बोलियों के शब्दों द्वारा भी कवि ने अपनी भाषा को समृद्ध किया है। कुछ नए शब्द इस प्रकार हैं—'लुगड़ा', 'सतिए', 'धूरी सांभा', फरिया, अलोप, बीजरी, घोर, रुदं कांवर, बेहरा, अलोप, मरेदी, समई, आंसे, संस, टगर, निरुई, पन्यिा, हठरी, भुरे, सुनैली आदि।

अंग्रेजी के शुद्ध शब्दों का प्रयोग

अंग्रेजी के कुछ शब्दों को माथुरजी ने ज्यों-का-त्यों अपने काव्य में ले लिया है और उन्हें उनके सर्वप्रचलित अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। कुछ उदाहरण—कार, साइकिल, रेडियो, नायलन, ट्रेन, प्लेटफार्म, फुटपाथ, आफिस, क्लर्क, ट्रैक, राकेट, एटम बम, स्टीमर, रेडियम, गैस, एसोसियेशन्स, इम्प्रेशन, आर्केस्ट्रा, पियानो, फल आदि अनेक शब्द।

अन्य भाषाओं की उक्तियाँ

भाषा को अधिक व्यंजना-प्रधान बनाने के लिए विभिन्न भाषाओं की महत्वपूर्ण उक्तियों को भी प्रयुक्त किया है। ऐसी उक्तियों का प्रयोग सर्वत्र 'शीर्षक' रूप में ही किया है। माथुरजी ने प्रायः संस्कृत उक्तियों का ही प्रयोग किया है यथा—'मुहूर्त ज्वलितं श्रेयोः', 'या निशा सर्वभूतानां' आदि।

लोकोक्ति व मुहावरे

गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग कम मिलते हैं किन्तु प्रसंगविशेष में अधिक व्यंजित अर्थ भरने के लिए कहीं-कहीं इनका स्वतः प्रयोग हो गया है—

(१) **थू मेल गाड़ियाँ**
उड़ती हुई हाथों के तोते सी।

(२) **सूनी उड़ी आँखों से देखा करे रात भर।**

(३) **गोफन से फैंके हुए पत्थर सी।**[1]

विशेषण प्रयोग

विशेषण प्रयोग भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गिरिजाकुमार माथुर की रचनाओं में दो प्रकार के विशेषण मिलते हैं—एक क्रियाओं से बनाए गए विशेषण, दूसरे रोमांटिक विशेषण जिनमें रूप रंग, स्पर्श आदि संवेदनाओं को ग्राह्य बनाने की क्षमता है—

क्रियाओं के सहयोग से विशेषण

'नभ पोंछ स्क्रेपर'[2]

यहाँ 'नभ पोंछ' विशेषण क्रिया पर आधारित है।

---

१. शिलापंख चमकीले—माथुर, पृ० ३६, ३७

२. धूप के धान—माथुर, पृ० ६६

रोमांटिक विशेषण

इस प्रकार के विशेषण ऐन्द्रिय आकर्षण का संकेत करते हैं। रूप-रंग-सम्बन्धी कुछ विशेषण—

'यह थकी, अनमनी, सुनहरी धूप।'[१]
'मोरपंखी रात आकर निकल जाती।'[२]
'नरम नखूनी रंग घुले आकाश में'।[३]

यहाँ 'थकी', 'सुनहरी', 'मोरपंखी', 'नरमनखूनी', आदि रूप-रंग सम्बन्धी संवेदनों को संवेद्य बनाने वाले हैं।

स्पर्श-संवेद्य विशेषण भी माथुरजी की कुछ कविताओं में मिलते हैं—

'हवा बहती कटीली।'[४]
'हिमानी रात।'[५]

यहाँ 'कटीली' तथा हिमानी स्पर्श-संवेदन के संकेत करते हैं। गंध-संवेदन सम्बन्धित विशेषण के भी कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

'सोंधे तन गन्ध भरे आंचल।'
'इस धूसर सांवर धरती की सोंधी उसांस।'[६]

'सोंधे' और 'सोंधी' विशेषण गन्ध को संवेद्य बनाते हैं।

रंग-योजना

माथुरजी ने अपने काव्य में जहाँ लय, नाद, ध्वनि तथा मुक्तछन्द को अपनाया है वहीं 'रंगयोजना' के प्रति भी विशेष सतर्कता दिखाई है। रंगों के सही प्रयोग द्वारा चित्र को अधिक यथार्थ बनाने का प्रयास किया है। माथुरजी ने अपनी रंगयोजना-सम्बन्धी मान्यता 'तारसप्तक' के वक्तव्य में प्रस्तुत की है—'वातावरण चित्रण के 'डिटेल' में रंगों का आधार विशेष रूप से रस है, किन्तु मैं चित्र को सदा हलके रंगों की छाहों के आवरण में लिपटा पसन्द करता हूँ। क्योंकि यथार्थ चित्र के सभी डिटेल में कला की दूरी देखता रहा है।'[७]

कवि के इस मन्तव्य की पुष्टि करती है—'रात हेमंत की,' 'वसंत की रात', 'आज के केसर रंग रंगे वन,' 'सावन के बादल' आदि कविताएँ जिनमें हलके शेड्स द्वारा चित्र को प्रभावशाली बनाने की चेष्टा की गई। रेशमी रंगों का प्रयोग कवि ने

१. धूप के धान, माथुर, पृ० ३१
२. वही, पृ० ६०
३. वही, पृ० ७३
४. वही, पृ० १११
५. वही, पृ० ६८
६. वही, पृ० ३१
७. तारसप्तक (वक्तव्य)—स० अज्ञेय, पृ० १२४

अधिकांशतः रोमानी कविताओं में किया है। गम्भीर शैली मे रचित क्लासिकल कविताओं में गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है। ऐसा कविता में प्राचीनता लाने के लिए किया गया है। इस प्रकार की कविताएं हैं, 'बुद्ध', 'राम', 'वैशाली', 'कबीर' आदि। 'दियाधरी' तथा ढाकवनी रचनाएँ जहाँ लोक-चेतना के रंग में रंगी हुई है जिनमें 'रियलिज्म' तत्व उभर कर आया है वहीं 'गीतिका' तथा 'पृथ्वीकल्प' आदि प्रतीकात्मक रचनाएं आधुनिक वैज्ञानिक प्रभावों से प्रभावित हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि शिल्प-विधान के क्षेत्र में गिरिजाकुमार माथुर की उपलब्धियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने भाषा को नयी अभिव्यंजना-शक्ति दी, शब्दों को नया भाव-बोध व नयी अर्थ-भंगिमाएँ दीं। विभिन्न प्रकार के बिम्बों द्वारा काव्य में चित्रात्मकता की सृष्टि की। उर्दू व अंग्रेजी के छन्दों को नए रूप में प्रस्तुत किया। परम्परागत छन्दों के साथ-साथ मुक्त छन्दों के अनेक सुन्दर प्रयोग किये हैं। काव्य-शैलियों की विविधता की दृष्टि से भी कवि का योगदान अभूतपूर्व है। माथुरजी की शिल्पगत उपलब्धियों का मूल्यांकन डॉ० नगेन्द्र ने इस रूप में किया है—'शिल्प या क्रिया-कल्प इस कवि का अपना वैशिष्ट्य है। इस क्षेत्र में उसका सौन्दर्य-बोध अपने समसामयिक कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक अविकसित है।'[१]

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां—डॉ० नगेन्द्र, पृ० १३

उपसंहार-मूल्यांकन

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य का विस्तृत विवेचन करने के उपरान्त उनके कृतित्व के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निष्कर्षों का सहज आकलन किया जा सकता है।

माथुरजी उन विकासशील कवियों में से हैं जिन्होंने किसी वाद-विशेष की परिधि में सीमित होकर काव्य-रचना नहीं की है अपितु आधुनिक हिन्दी कविता की विभिन्न धाराओं की अतिवादी प्रवृत्तियों से अपने को अछूता रख, उनके बीच परस्पर समन्वय स्थापित किया है। उन्होंने छायावाद तथा वैयक्तिक काव्यधारा की भाँति न केवल व्यक्ति को महत्व दिया है और न प्रगतिवाद की भाँति केवल समाज को, अपितु युगीन परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति तथा समाज दोनों का समान महत्व अंगीकार कर दो अति-वादों में संतुलन स्थापित किया है। यही कारण है कि उनके काव्य में छायावाद का रंगीन-रोमाँस, बच्चन आदि वैयक्तिक कवियों की निश्छल सहज उच्छ्वास, प्रगतिवादी सामाजिक यथार्थ की सत्य व मानवतावादी दृष्टि और नयी कविता का नया युगबोध, भावबोध एवं नवीन वैज्ञानिका चेतना एक साथ विद्यमान है।

माथुरजी के काव्य की मूल संवेदना रंग, रस और रोमान है जिसे उन्होंने सामाजिक यथार्थ से समन्वित करके प्रस्तुत किया है। उनकी आरम्भिक रचनाओं में छायावादी परिवेष्टन वायवीयता तथा अमूर्तता के स्थान पर मांसलता, स्थूलता तथा लौकिक प्रणयानुभूतियों का प्राधान्य है। उनका आकर्षण किसी अज्ञात सत्ता के प्रति न हो र इसी मूर्त स्थूल जीवन के प्रति है। भौतिक जीवन के पूर्ण उपभोग को ही कवि ने सर्वश्रेष्ठ माना है। उनकी कविताएँ आदर्शपरक अनुभूतियों पर आधारित न होकर यथार्थ और लौकिक जीवन के अधिक निकट हैं। उन्होंने जिस वैयक्तिक प्रेम की प्रतिष्ठा की है उसमें न झिलमिलाते आवरण है और न कुँठाएँ ही—केवल निष्कपट आत्माभिव्यंजना है। उनकी श्रृंगार-चेतना में शरीर को अनिवार्य रूप में ग्रहण किया गया है। उनके रूप, रस और मासंल चित्रों में अनुभूति की प्रामाणिकता, मिलन की उत्कंठा व बिछोह की पीड़ा के स्वर प्रमुख हैं। मिलन के चित्रों में नग्नता व कुरूपता की नहीं, संयमित सौंदर्य-दृष्टि एवं साकेतिकता की प्रधानता है। परस्पर आलिंगन-चुम्बन आदि संयोग सुख का चित्रण सांकेतिकता रूप में अत्यन्त शिष्ट व संयत भाषा में किया गया है। प्रणय-अनुभूतियों को निवेदित करते हुए कवि ने प्रकृति के विविध रूपों का सहारा भी लिया है। प्रकृति का आश्रय मिलन और विरह की विविध अनुभूतियों को उद्दीप्त करने तथा रोमानी परिवेश को सजीव व ग्राह्य बनाने के लिए किया गया है। उनके काव्य में नारी रूप और सौंदर्य की निर्जीव प्रतिमा मात्र न रहकर जीवन में उन्नयन की प्रेरणा देने वाली अदम्य शक्ति है। उनकी प्रेयसी का प्रेम निष्क्रियता का

चायक नहीं—जीवन-संघर्ष में नूतन शक्ति का संचार करने वाला है। विछोह की अवस्था में भी पूर्वमिलन की मादक स्मृतियाँ उन्हें वर्तमान में कर्मशील बनाती हैं। यही कारण है कि माथुरजी का काव्य निराशावादी न होकर आस्था और विश्वासमय है। 'नाश और निर्माण' के पूर्वार्द्ध में निराशा, पराजय, उदासी आदि की प्रधानता होने पर भी उत्तरार्द्ध में आशा और उल्लास का चित्रण हुआ है। विषम परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहना उनके काव्य का मूल मंत्र है। कुल मिलाकर उनके आरंभिक काव्य-संग्रह 'मंजीर' तथा 'नाश और निर्माण' (की कुछ कविताओं में) रोमानी आभा से मण्डित हैं जिनमें वैयक्तिक प्रणयानुभूतियों को प्रधानता है, सामाजिक यथार्थ का स्वर उतना प्रबल नहीं है।

विकास की सहज प्रक्रिया में युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप कवि के अहं का विलय समाज में होने के कारण आर्थिक परिवेश तथा मानवतावादी विचारों का क्रमशः प्राधान्य होता गया है किन्तु 'व्यक्ति' तत्व वहाँ भी पूर्णतः विलुप्त नहीं हो पाया है। डॉ० विष्णुस्वरूप ने ठीक ही लिखा है—'गिरिजाशंकर माथुर में वैयक्तिक स्वर को बनाये रखकर भी कुंठाओं और संशयों से मुक्ति पाने, स्वस्थ सौंदर्य और रोमान के बीच आस्था का मार्ग खोजते हुए यथार्थ का स्वागत करने और मानवीय परिवेश में व्यक्तित्व के प्रसार की आकाँक्षा की भावनाएं सबसे अधिक स्पष्ट है।'[1] किन्तु इसके अतिरिक्त जो बात उन्हें युगीन यथार्थ की कटुताओं से जूझने वाले, जीवन और समाज के वर्तमान कुरूप और विकृत नक्शे को बदलकर मानवता के एक नये युग की स्थापना के लिए आकुल और सचेष्ट कवियों की पंक्ति में बिठा देती है, वह है उनके काव्य में सतत् सुनाई पड़ने वाला सामाजिकता का अटूट स्वर।'[2] कवि की सामाजिक यथार्थ चेतना प्रगतिशील तत्वों द्वारा निर्मित हुई है जिसमें प्रगतिवादी भदेस, कुरूपता, नग्नता, प्रचारात्मक व राजनीतिक दाँवपेचों की नहीं, समष्टिकल्याण, यथार्थबोध तथा सहज अभिव्यक्ति प्रणाली की प्रधानता है। सबसे विशेष बात तो यह है कि माथुरजी ने किसानों, मजदूरों तथा मध्यवर्ग (विशेषकर क्लर्क के जीवन की) की समस्याओं, अभावों, विषमताओं, आशा-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति यथार्थ रूप में की है, उनके प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति प्रकट नहीं की है। मध्यवर्गीय जीवन की जिस कटुता, घुटन, पीड़ा को कवि ने स्वयं भोगा है, उसे पूरी तिक्तता से काव्य में संप्रेषित भी किया है। इस दृष्टि से 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान' तथा 'शिलापंख चमकीले' काव्य संग्रहों की 'मशीन का पुर्जा', 'क्रानिक मरीज', 'शाम की धूप', 'पहिए' तथा 'व्यक्तित्व का मध्यान्तर' आदि कविताएँ महत्वपूर्ण हैं। इन रचनाओं में आर्थिक वैषम्य से उत्पन्न असमानताओं को वाणी अवश्य प्रदान की गई है किन्तु वर्ग-वैषम्य व आर्थिक विषमता के चित्रण द्वारा कवि रक्त-क्रांति करना नहीं चाहता वरन् प्रबुद्ध पाठक-वर्ग को इस ओर सचेत करना

१. नया साहित्य कुछ पहलू—डा० विष्णु स्वरूप, पृ० ३६
२. नया हिन्दी काव्य—डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० २६८

चाहता है। उच्चवर्ग के जिस शोषण ने समाज की जड़ों को खोखला बना दिया है, उसका पर्दाफाश करना चाहता है। अभावग्रस्त जीवन का चित्रण करते हुए भी कवि की आस्था कहीं विचलित नहीं होती, क्योंकि वे मानव-जीवन को संघर्ष का जीवन मानते हैं। उनका विश्वास है कि कठोर परिश्रम द्वारा मनुष्य विषम परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बना सकता है। देश का नवनिर्माण सभी वर्गों की लगन तथा कठोर परिश्रम द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

गिरिजाकुमार माथुर ने अपने नवीन काव्य-संग्रहों (शिलापंख चमकीले, जो बँध नहीं सका') में व्यष्टि और समष्टि के विलग छोरों के बीच की दूरी को समाप्त करके व्यक्ति-चेतना और सामाजिक चेतना के बीच समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की। नयी कविता का पहला सामूहिक प्रयास 'तारसप्तक' माना जाता है। 'तारसप्तक' के प्रकाशन से लेकर आज तक अपने विकास को सतत् बनाए रखने वालों में अज्ञेय और गिरिजाकुमार माथुर का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। काव्यगत प्रौढ़ता व शिल्पगत नवीनता की दृष्टि से माथुरजी का स्थान अज्ञेय के समकक्ष ही निर्धारित किया जा सकता है, क्योंकि जहाँ अज्ञेय में चिन्तन की गहनता और भावनाओं की सूक्ष्मता के साथ सौंदर्य-संवेदना की व्यापकता बढ़ी, गिरिजाकुमार माथुर में नए यथार्थ के धरातल पर मानवीय आस्था का स्वर अधिक स्पष्ट हुआ, तथा सौंदर्यपरक रोमानी वृत्तियों के रंग उनसे ज्यादा सौम्य होते गये।'[1] अतः कवि के रूप में माथुरजी का स्थान अज्ञेय से किसी भी दृष्टि से कम नहीं माना जा सकता है। क्योंकि यथार्थ की ओर पर्दापण करने वाले वे सर्वप्रथम कवि हैं।

कथ्य की दृष्टि से नयी कविता के क्षेत्र में माथुरजी ने मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है जिनमें सर्वप्रथम है—व्यक्तिमानव की प्रतिष्ठा। उन्होंने युगीन परिप्रेक्ष्य में मानव को उसकी सम्पूर्ण दुर्बलताओं व सबलताओं सहित काव्य में प्रस्तुत किया है। मानव की विकृतियों व क्षुद्रताओं में भी सक्रिय चेतना का आभास पाया है। उनके काव्य में जीवन के प्रति सहज आकर्षण दृष्टिगत होता है। कवि जीवन की एक-एक अनुभूति को पूरी जीवन्तता से भोग लेना चाहता है। अनुभूति की सच्चाई कवि की एक अन्य विशेषता है जो उनके काव्य को यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। आस्था और विश्वास तो उनके काव्य में अन्तःरूप से समाया हुआ है।

माथुरजी के काव्य की प्रधान विशेषता है—नगरीय भावबोध। नगरीय जीवन सम्पूर्ण आयामों से पहली बार उनके काव्य में स्थापित किया गया। यही कारण है कि उनके काव्य में रेस्ट्रां, प्लेटों की टनकारें, मोटर, बंगले, प्यानों की मधुर आवाज आदि शब्द बार-बार प्रयुक्त हुए हैं। नगर में रहने वाले मध्यवर्ग के अभावों, सिसकियों तथा आहों का और उच्चवर्ग की ऐय्याशी के द्वारा कवि नगर के सामाजिक यथार्थ को निरूपित करना चाहता है और इधर कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित उनकी नयी रचनाओं में नगर में रहने वाले २० वी० श० के अत्याधुनिक मानव की

1. नया साहित्य, कुछ पहलू—डा० विष्णुस्वरूप, पृ० ३८

वासनामयी भावनाओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है जो आज के मानव को हजारों वर्ष पूर्व के आदिम युग में ले जाना चाहती है, जहाँ केवल शरीर की भूख प्रधान थी।

नयी कविता के क्षेत्र में माथुरजी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है नवीन वैज्ञानिक चेतना का सूत्रपात वैज्ञानिक उपकरणों को काव्य-सामग्री के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने अछूते क्षेत्र का उद्घाटन किया है। इसके साथ ही विज्ञान की बौद्धिकता व काव्य की भावनात्मकता में ऐक्य स्थापित किया है। वैज्ञानिक प्रगति के परिप्रेक्ष्य में मानव-विकास की सम्भावनाओं के प्रति आशा व्यक्त की गई है। इस दृष्टि से 'पृथ्वीकल्प' सुन्दर प्रतीक-नाट्य है।

माथुरजी के काव्य का वस्तुपक्ष जितना प्रौढ़ है, कलापक्ष भी उतना ही पुष्ट है। विषयवस्तु व टेकनीक के समान महत्व को माथुरजी ने स्वीकारा है। भाषा, छन्द, ध्वनि आदि के क्षेत्र में माथुरजी आरम्भिक प्रयोगकर्त्ता हैं। सन् १९३७ से ही उन्होंने प्रयोग करने प्रारम्भ कर दिये थे किन्तु १९३८ तक आते-आते उन्होंने इस क्षेत्र में (मुक्तछन्द प्रतीक व उपमानों की दृष्टि से) काफी प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी जिसे उनकी नवीनतम काव्य-रचनाओं में देखा जा सकता है। नयी कविता के शिल्पविधान को समृद्ध करने में उनका अमूल्य योगदान है। नयी कविता के शिल्पनिर्माणकर्त्ताओं में उनका स्थान सर्वोच्च है। इनकी भाषाशैली, छन्दयोजना, ध्वनियोजना, नाट्ययोजना आदि काफी समृद्ध हैं।

छन्द के क्षेत्र में कवि ने मुक्त छन्द का समर्थन किया है जिसका सम्पूर्ण रचना-विधान उन्होने रचा हुआ है। मुक्त छन्द के अतिरिक्त कवि ने उर्दू के 'गजल', 'रुबाई' आदि का तथा अंग्रेजी छन्द 'ओड' का सुन्दर प्रयोग किया है किन्तु कहीं भी छन्द के बन्धनों को स्वीकार नहीं किया है। तुकान्त योजना के लिए कवि ने अधिकांशतः स्वर-ध्वनियों का आश्रय लिया है। इससे छन्द में आन्तरिक लयात्मकता की सृष्टि स्वतः हो गई है। जिस लयात्मकता का अभाव आज सभी छोटे-बड़े कवियों के काव्य मे है उसी की नियोजना माथुरजी के काव्य में प्रचुर रूप से हुई है। डा० नगेन्द्र ने इस दृष्टि से उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ मानते हुए कहा है "आज जब अज्ञेय से लेकर छोटे-से-छोटे कवि तक व्याप्त शब्द और स्वर-लय के संगीत का यह दारिद्रय नये कवियों की क्रियाविधि पर छाया हुआ है और ये कवि कविता को संगीत से मुक्त करने का झूठा दम भरते हुए अपने अभाव को छिपाने का निष्फल प्रयत्न कर रहे हैं। गिरिजाकुमार की कविता के शब्द-विधान और स्वर-लय-विधान में अन्तःव्याप्त संगीत उनके पृथक् वैशिष्ट्य का प्रमाण है। मेरा विश्वास है कि वर्तमान युग के छन्द-लय शिल्पियों में उनका स्थान मूर्धा पर रहेगा।"[1]

माथुरजी ने विविध काव्य-रूपों के प्रयोग द्वारा भी नयी कविता को पर्याप्त समृद्ध किया है। उन्होंने परम्परागत काव्यरूपों से लेकर नव्यतम काव्यशैली का प्रयोग

१. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ—डा० नगेन्द्र, पृ० १३३

किया है। उनके काव्य में जहाँ परम्परागत तुकान्त गीत-शैली के दर्शन होते हैं वहाँ अत्याधुनिक मोनोलॉग, संलापशैली और यहाँ तक कि कथा-काव्य की पत्र-शैली का भी प्रयोग मिलता है। काव्य-रूपों के क्षेत्र में इतनी विविधता शायद ही किसी अन्य नये कवि में मिलती हो।

आधुनिक काव्यभाषा के विकास में कवि का महत्वपूर्ण योगदान है। नये भावबोध के अनुरूप उन्होंने भाषा का नया संस्कार किया। नये शब्दों के निर्माण द्वारा और पुराने शब्दों को नयी अर्थवत्ता से समन्वित करके भाषा में नवीन अर्थ भरने का सफल प्रयास किया। जन-सामान्य की भाषा को भाव-प्रेरणा के द्वारा काव्यभाषा का रूप प्रदान किया है। भाषा के क्षेत्र में 'रियलिज्म' जैसी चीज सर्वप्रथम माथुरजी ने दी। विभिन्न भाषाओं के शब्दों द्वारा तथा लोकभाषा के शब्दों से अपने शब्द-भण्डार को पर्याप्त समृद्ध किया है। नवीन बिम्ब-विधान द्वारा काव्य में चित्रात्मकता की सृष्टि की युगीन भावबोध की सक्षम अभिव्यक्ति के लिए धार्मिक, सांस्कृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक प्रतीकों का आश्रय लेकर कम-से-कम शब्दों में अधिकाधिक अर्थ भरने की चेष्टा की है। वातावरण-निर्माण के लिए यथास्थान गहरे व हल्के रंगों का प्रयोग भी किया है।

शिल्प-सौन्दर्य की दृष्टि से माथुरजी के काव्य की एक अन्य विशिष्टता यह है कि उनके काव्य में शीर्षक पूर्ववर्ती काव्यों की भाँति छोटे न होकर काफी लम्बे और गद्यात्मक हैं यथा—'धूप का ऊन', 'बरफ का चिराग', 'नींव रखने वालों का गीत' आदि। ऐसे शीर्षक कवि के नवीन सौन्दर्य-बोध के परिचायक हैं।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि संचेतना, भावानुभूति और शिल्प सभी दृष्टियों से माथुरजी का योगदान नयी कविता के क्षेत्र में अन्यतम है। काव्य-वस्तु की दृष्टि से जहाँ उनके काव्य में सहज विकास की अन्तःप्रक्रिया विद्यमान है वहीं कला की दृष्टि से चिर नवीनता भी मिलती है। वस्तुपरक दृष्टि से यदि मूल्यांकन किया जाए तो नयी कविता के निर्माताओं में गिरिजाकुमार का स्थान अग्रणी है।

परिशिष्ट

भीतरी नदी की यात्रा

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य-व्यक्तित्व की छठी कड़ी है—'भीतरी नदी की यात्रा', जिसका प्रकाशन नवम्बर, १९७५ में हुआ। इसमें कवि के विशिष्ट काव्य-व्यक्तित्व के साथ-साथ नयी कविता के सौन्दर्य-बोध की भी सशक्त हानि व्यक्ति हुई है। 'भीतरी नदी' से कवि का अभिप्राय पलायन से न होकर साधारणीकृत अनारंभ अनुभूतियों के व्यक्तिकरण से है। मूलतः रोमानी कवि होने पर भी 'भीतरी नदी की यात्रा' में अनुभूतियों के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। इसमें जीवन के मधुर पक्ष को उद्घाटित करने वाली सौन्दर्य और प्रेम-सम्बन्धी कविताएँ तो हैं ही, इसके साथ-साथ स्वस्थ सामाजिक यथार्थ को उजागर करने वाली कविताएँ भी हैं। कुछ कविताएँ प्रकृति के मनोहर रूप को उद्घाटित करने वाली हैं और कुछ माथुरजी की यात्राओं की भावात्मक अभिव्यक्ति को साकार करने वाली हैं। ये सभी रचनाएँ मानवीय प्रेम और संवेदना, जीवन के प्रति आसक्ति एवं भरपूर आस्वाद जैसे अन्तःसूत्र में जुड़ी हुई हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि प्रस्तुत रचना में वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर मानव-जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति की गई है।

प्रस्तुत काव्य-कृति का एक विशेष उद्देश्य है—मानव के प्रति प्रेम और अपनत्व की प्रतिष्ठा करना तथा प्रकृति के मनोहर रूप का चित्रकांन करना। गिरिजाकुमार माथुर पिछले कुछ वर्षों से सम्भवतः ऐसा महसूस कर रहे हैं कि "नयी कविता में नगर-बोध के नाम पर अधिकाँश कविताएँ देश के उस वृहद् ग्रामांचल से कट गयी हैं जो हमारे जीवन का सबसे बड़ा और बुनियादी हिस्सा है। तीव्र भावना, रसमयता, प्रकृति के रंग, पेड़-पौधों, फूलों और फसलों के रंगों को इस तरह 'रोमानी' कहकर खदेड़ दिया गया है जैसे कि यह सब यथार्थ से विमुख प्रवृत्ति हो।"[१] यही कारण है कि उनके इस काव्य-संग्रह की अधिकांश कविताएँ मानवीय प्रेम से समन्वित, प्रकृति के स्वाभाविक वातावरण के करीब हैं, उनमें वैज्ञानिक यान्त्रिकता नहीं है। प्रकृति और मनुष्य-जीवन की स्वाभाविक लय के साथ अपनी रचना-धर्मिता को जोड़ना ही कवि का प्रयास परिलक्षित होता है।

रंग, रस और रोमन के प्रति गिरिजाकुमार माथुर का विशेष लगाव रहा है। रोमानी तरलता उनके काव्य की अपनी विशेषता है जिसका परिचय इस संकलन की भी कुछ कविताओं में मिलता है। सौन्दर्य और प्रेम-सम्बन्धी कविताओं में मानव-जीवन के प्रति कवि की गहरी पैंठ व सूझ-बूझ का परिचय मिलता है। ऐसी कविताओं में चिन्तन की प्रौढता व दृष्टिकोण की परिपक्वता दृष्टिगत होती है।

---

१. भूमिका

ऐसी कविताओं में चिन्तन की प्रौढता व दृष्टिकोण की परिपक्वता दृष्टिगत होती है। ऐसी कविताओं में प्रेम के उदात्त रूप के साथ; प्रिय के प्रति उद्दाम आकर्षण की भावना, रूपासक्ति तथा प्रणयजन्य मादकता भी परिलक्षित होती है। 'मामूली शब्दों की मुस्कराहट', 'खुले बालों की रात', 'स्थायी खुशबू', 'थोड़ी देर हो गयी है', 'खुशबू बहुत है' आदि कविताएँ इस दृष्टि में महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रेम मानव-जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता है। प्रत्येक काल में प्रेम को किसी-न-किसी रूप में महत्ता मिलती रही है। जीवन का सम्पूर्ण अस्तित्व ही प्रेम के सहारे टिका है। सम्भवतः प्रेम ही मनुष्य-जीवन का वह केन्द्र-विन्दु है जिसके इर्द-गिर्द जिन्दगी चक्कर काटती रहती है। प्रेम जीवन की वह शाश्वत अनुभूति है जिस पर वय और काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेम की खुशबू स्थायी खुशबू है जिसकी भीनी-भीनी महक मन में समाई रहती है—

'क्यूटीक्युरा पाउडर की सी
भीनी गन्ध
मन में
ये तुम भी हो
याद भी।'[1]

प्रेम के सम्बन्ध में कवि का दृष्टिकोण किसी प्रकार की अपराधभावना से ग्रसित नहीं है। जीवन की कोमल अन्तरंग अनुभूतियों की अभिव्यक्ति न तो वायवी संकेतों के माध्यम से की है और न प्रणय को एक प्रक्रिया के स्तर पर मात्र देह-धर्म के रूप में क्षणिक तृप्ति का साधन माना है। कवि ने प्रेम को जीवन के उस प्रेरक तत्त्व के रूप में स्वीकारा है जो मनुष्य मात्र में आदिम जिज्ञासा व आकर्षण को बनाए रखता है। यह प्रेम किसी काल्पनिक आलम्बन के प्रति निवेदित न होकर इसी लोक के जीते-जागते मनुष्य के प्रति समर्पित किया गया है अर्थात् प्रेम की स्वीकृति लौकिक धरातल पर की गई है, जिसमें शरीर आवश्यक रूप से समाविष्ट है। इसीलिए यह प्रेम कामभावना व उद्दाम-आकर्षण से युक्त है जिसकी स्थूल और ऐन्द्रिय-अभिव्यक्ति की गई है। प्रिय का आगमन जीवन में खुशी व उल्लास का संचार करता है। उसके आने से तन और मन प्रेममय हो जाते हैं। आसपास का वातावरण और भी अधिक मोहक और रोमानी हो जाता है। प्रिय-मिलन के मधुर क्षण की कोमल अनुभूति का एक चित्र —

'तुम्हारे आते ही
मेरे कमरे का रंग गोरा हो जाता है
हर आईने का चेहरा
प्यारा हो जाता है
× × ×
तुम्हारे बदन की रोशनी

१. भूमिका, पृ० २४

मेरे रोम्रों से होकर
पूरी भीतर आ जाती है
एक पिरोयी हुई आँच
बीच में ठहर जाती है
और बाहर की कुत्सा-भरी रात
हमारी पीठ पर रुक जाती है।[१]

रूपासक्ति व आकर्षण प्रेम के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, जिन्हें गिरिजाकुमार माथुर की सौन्दर्य व प्रेमपरक कविताओं में देखा जा सकता है। प्रिया के प्रति उनकी विशेष अनुरक्ति है इसीलिए उसके रूप व सौन्दर्य की मादकता ने कवि के तन व मन पर काले जादू का-सा प्रभाव डाल रखा है। उसके आगमन से जहाँ एकरस व सूनी जिन्दगी में सरसता का समावेश हो गया है वहीं मन में कोमल रोमानी भावनाएँ शत्-शत् वेग से तरंगायित होकर आदिम जिज्ञासा को उद्दीप्त करने में सहायक सिद्ध हो रही हैं—

'तुम मेरे शरीर पर काले जादू की तरह छा गयी हो
तुम्हारी देह मेरे भीतर ताल देती है
किसी जंगली गीत की बहती हुई
अजनबी लय की तरह लगातार
× × ×
तुम मेरे रंगहीन जन्म के अकेलेपन में
एक बाहरी फूल की तरह लग गई हो
मेरे शब्दों की खुशबू
तुम्हारी बाहों की लिपटती गन्ध है
उसके चटकीले रंगों पर
तुम्हारे होठों की छाप है
मेरी वाणी की उग्रता में
तुम्हारी नयी इच्छाओं का ताप है
तुम मेरे नंगे वक्त के पहले खालीपन में
गहरे खुले स्वाद की तरह समा गयी हो
तुम मेरे शरीर पर काले जादू की तरह छा गयी हो।'[२]

जीवन का मूलाधार प्रेम है इसका अहसास मनुष्य को उम्र के प्रत्येक चढ़ाव के साथ महसूस होता है। जीवन में अन्य सभी प्रकार के सम्बन्ध झूठे पड़ सकते हैं लेकिन प्रेम शाश्वत सत्य है—

'अब मैंने जाना
उम्र के हर चरण पर

---

१. भूमिकापृ० ५-६
२. वही, पृ० ७-८

कितने फरक नमूनों में
यह मन सतरंग हो जाता है
कैसे हर निकष झूठा पड़ता है
सिर्फ प्यार रह जाता है
कैसे छोटा-सा मोह
बड़ा सत्य बन जाता है।'[1]

प्रेम के लिए उम्र, स्थान तथा वक्त की कोई पाबन्दी नहीं होती। यह किसी भी उम्र में किसी भी व्यक्ति से हो सकता है। प्रेम में ऐसा आकर्षण है, प्रभावोत्पादकता की ऐसी शक्ति है कि इसे पाकर जीवन कहीं ज्यादा रंगीन व मादक हो जाता है। प्रणय का प्रतिदान पाकर तो शायद व्यक्ति को अपनी उम्र की चढ़ाव तक का अहसास नहीं रहता—

'तुम्हें नहीं मालूम
कि प्यार के लिए कोई उम्र नहीं होती
कोई वक्त, कोई जगह
कोई रोक-टोक नहीं होती
तुम्हें नहीं मालूम
तुम्हारी देह का कुहकता स्वाद
जो तुम मन के भीतर से उँडेलकर
अब तक किसी को दे नहीं पायीं
उसमें कितनी शराब है
कितनी ज्यादा संजीवनी
जिसे पाकर उम्र वापस मिल जाती है।'[2]

(प्रिय के बिना जीवन नीरस और व्यर्थ प्रतीत होता है। उम्र इन्तजार का पर्याय प्रतीत होती है। जीवन जिसे जीना पहले दूभर लगता था, प्रिय के आगमन से उसके प्रति लगाव पैदा होने लगता है, शरीर का रोम-रोम प्रसन्नता का अनुभव करता है। मन स्नेह-वर्षा से अभिभूत हो उठता है—

'अन्धी थी दुनिया, था मिट्टी भर अन्धकार
उम्र हो गई थी एक लगातार इन्तजार
जीना आसान हुआ तुमने जब दिया प्यार
हो गया उजेला सा रोओं के आरपार।'[3]

इस संकलन की कविताओं में जहाँ प्रणय की गूढ़ आन्तरिक स्थितियों की मुक्त व शिष्ट अभिव्यक्ति मिलती है वहीं 'नयी आँखें', 'वक्त के हाशिये', 'चेहरे पर

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर पृ० ८१
२. वही, पृ० ८३
३. वही, पृ० ३२

आती है परछाइयाँ' आदि कविताओं में गहरी और विशाल जीवन-दृष्टि का परिचय भी मिलता है। इनमें युवावस्था व प्रौढावस्था में तन और मन की विभिन्न स्थितियों व अनुभूतियों का सूक्ष्म अन्तर स्पष्ट किया गया है। 'वक्त के हाशिये' कविता मे जीवन की इन अवस्थाओं में परस्पर तुलना करते हुए कवि कहता है कि पहली अवस्था में उम्र का भराव है, शरीर सौन्दर्य से पूर्ण पुष्ट व मांसल होता है। मन में जोश व उमंग होती है। इसीलिए प्रणय-समर्पण की भावना सर्वाधिक होती है। लेकिन प्रौढावस्था में उम्र का उतार अवश्य है परन्तु जिन्दगी का तजुर्बा है, दूरदर्शिता की भावना है, शान्ति है, अपनत्व की भावना है।

'एक उम्र है भराव की
बरसते उठते कसाव की
एक उम्र है
ढलते हुए फूलों पर
रोशनी के उतराव की
एक गुलाबी प्याला है
लबालब भरा हुआ
जरा-सी ठेस लगते ही
रंग झलझला जाता है
एक गहरा कुआँ है
दूर नीचे मीठे जल का
जिसमें फेंका हुआ पत्थर
कसक कर डूब जाता है।'[1]

ऐसा माना जाता है कि बुढ़ापा उम्र से नहीं, विचारों से आता है। यदि व्यक्ति के सोचने-विचारने का ढंग बहुत सुलझा हुआ व नवीन विचारों से पूर्ण है और यदि वह दुनिया को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में युवा-दृष्टिकोण से देखता है तो उसके लिए प्रत्येक दिन उत्सव व त्योहार के समान स्फूर्तिदायक होगा। जिसके मन की भावनाएँ वक्त के बहाव में से बुझ नहीं गई हैं उनके लिए विश्व की प्रत्येक वस्तु प्रेरणादायक प्रतीत होगी। और फिर युवावस्था तो वह अवस्था है जिसमें छोटी-से-छोटी घटनाएँ भी अपार सुख प्रदान करती हैं। प्रत्येक कार्य को करने में अजीब बेताबी-सी रहती है। मन कोमल व प्रेममय हो जाता है। यह उम्र दर्पणों में सजी चित्र-गैलरी के समान होती है। मन में एक बार जो विराज गया उसके प्रति मन प्रणय-समर्पण के लिए लालायित रहता है—

'जो नयी आँखों से देखते हैं दुनिया को
उनके लिये हर दिन उत्सव है
त्यौहार है
× × ×

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर पृ० ७३-७४

सम्बन्ध सब नाजुक
सोंधा है हर खयाल
इच्छाएँ उड़ती हैं
लिये रेशमी रूमाल
मामूली घटनाएँ खुशियाँ बन जाती हैं
हर छोटा तोहफा भी कर देता है निहाल
बातों में बेताबी
उजलत हर काम में
उत्सुकता बेमिसाल
अचम्भा अनजान में
यह उम्र दर्पणों में सजी चित्र-गैलरी
मन में जो विराजा वह लेता आकार है
हर शरीर मस्ती है
हर युवती प्यार है।"[1]

(मानव-जीवन नाटक के समान है और यह संसार विशाल रंगमच है जहाँ आकर प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना अभिनय कुशलतापूर्वक सम्पन्न करके संसार से विदा होना पड़ता है। इस प्रकार जिन्दगी का कारवाँ कभी नहीं झुकता। वह समय की गति के साथ-साथ आगे बढ़ता रहता है। फर्क केवल इतना रहता है कि पुरानी कतारें आगे बढ़ती रहती हैं (अर्थात् बूढ़े संसार से कूच करते रहते है) और नए लोग नयी कतारें उनके पीछे आती रहती हैं। सांसारिक आकर्षण ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं लेकिन जिन्दगी का नाटक कभी खत्म नहीं होता। हम बार-बार जन्म लेकर उसे दोहराते रहते हैं—

'फिर वही है हवा
कासनी नीलिमा
फिर वही दुष्ट मौसम
शरम तोड़ता
फिर वही फूल पीले
नये घोंसले
× × ×
चल रही है रंगीली कथा आज भी
बन्द होगा न अलमस्त नाटक कभी
सिर्फ पिछले खिलाड़ी उतर आ रहे
सिर्फ पिछली कतारें बढ़ी जा रहीं
हम खड़े मुग्ध

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ७१-७२

'दुहराये जाते हुए
फिर नए ढंग से
एकटक देखते ।'[१]

मृत्यु से पृथक् जीवन का कोई मूल्य नहीं है। जीवन की भाँति 'मृत्यु' भी चिरन्तन सत्य है उससे बच सकना किसी के वश की बात नहीं है। सुन्दर सुखमय जीवन व्यतीत करने के पश्चात् जीवमात्र अपने अस्तित्व को तभी प्रमाणित करता है जब वह मृत्यु से साक्षात्कार करता है। उस समय मृत शरीर प्राणों के निकल जाने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे चीजें तो ज्यों की त्यों है लेकिन उनकी रौनक समाप्त हो गई है। नाना आकर्षणों से भरा संसार यथावत् रहता है लेकिन व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है—

'चीजों के चेहरे से
रौनक सी पुँछ गयी
आईनों से बिम्बों की छाया
निकल गयी
सब कुछ वैसा ही रहा—
कुछ दिन को बनी दुनिया
आखिर में छुट गयी ।'[२]

मानव-जीवन की यह सबसे बड़ी सच्चाई है कि आजीवन व्यक्ति संघर्षरत रहते हुए भी स्वयं को अकेला महसूस करता है, लेकिन फिर भी कठिनाइयों के आगे घुटने नहीं टेकता, क्योंकि आज का मनुष्य केवल जीना नहीं—सार्थक जीवन जीना चाहता है। इसीलिए मृत्यु तक जीवन के हर दुःखात्मक सुखात्मक-क्षण को वह साहसपूर्वक अकेला भोगना चाहता है—

'कट रही है रात मेरी
द्वार पर
हर सुबह डूबी
इसी मंझधार पर
भोगना हर क्षण अकेला ही पड़ेगा
मृत्यु तक ।'[३]

'भीतरी नदी की यात्रा' काव्य-संग्रह में जहाँ प्रेम, सौन्दर्य, जीवन की विविध अवस्थाओं में मानव-मन की स्थिति तथा मृत्यु की शाश्वतता को प्रकट करने वाली कविताएँ हैं वहीं प्रकृति के स्वाभाविक वातावरण को साकार करने वाली कविताओं की भी कमी नहीं है। प्रकृति और मानव का सम्बन्ध शाश्वत है। अनादिकाल से प्रकृति

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ३७-७८
२. वही, पृ० ३६
३. वही, पृ० ३२

के प्रति उसका आकर्षण रहा है। नदी, झरने, फूल, पौधे, फसलों के रंग आदि जहाँ उसके मन में रसात्मकता का संचार करते हैं वह वहीं उनसे प्रेरणा भी ग्रहण करता रहा है। नये कवियों में गिरिजाकुमार माथुर यों तो नगरीय-बोध के कवि हैं। उनके काव्य की मूल संवेदना भी शहरी जीवन से सम्बन्धित है, लेकिन प्रकृति के रम्य वातावरण से कहीं भी उनकी रचनाएँ कटी नहीं हैं। फिर 'भीतरी नदी की यात्रा' कविता-संग्रह में तो कवि ने प्रकृति को विशेष महत्त्व दिया है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह में 'अनमिले भंवर', 'नयी पहचान', 'समुद्र की साँसें', 'गरमी की शाम', 'बीहड़ जंगलों के बीच', 'निसर्ग में वापसी', 'पतझर की एक दुपहर' आदि कविताओं में कहीं प्रकृति का आलम्बन-रूप में यथातथ्य चित्रांकन किया गया है, कहीं प्रकृति रोमानी भावों की उद्दीप्ति में सहायक बनकर आई है और कहीं सामाजिक वैषम्य को साकार करने में सक्षम प्रमाणित हुई है। 'अनमिले भंवर' कविता में कवि ने एक ऐसी प्रातः का चित्रण किया है जिसमें चारों ओर कोहरा छाया हुआ है लताओं से सजे लॉनों में गुलाब की पंखुरियों से ओसबिन्दु टपक रहे हैं। बाहर ऐसी गुलाबी ठण्ड है जिससे सारे शरीर में ठिठुरन पैदा हो रही है। प्रकृति के आवलम्बन रूप की एक झलक—

'बँधे हुए सुन्दर आँगन से
घर के सोंधेपन से
लता-सजे लॉनों को घेरती घनी हैज से
बाहर के ओस-चूते
काले गुलाब
कितना लुभाते हैं
भिन्न स्वाद पानी के ताल
पक्के गहरे रंग की जरा-सी झलक
एड़ी से गोरी मुट्ठियां तक
झुरझुरी जगाते हैं।'[1]

'नयी पहचान' कविता में प्रकृति के विभिन्न उपादाज मानव-मन में रोमानी भावनाओं की उद्दीप्ति में सहायक सिद्ध हुए है। साँची—भोपाल में रात के समय सड़क-यात्रा करते हुए कवि ने ऐसी सुन्दर सलोनी रात का चित्रण किया है जिसमें चारों ओर शीतल चाँदनी छिटकी हुई है, चांद का प्रतिबिम्ब नदी में पड़ने के कारण उसका जल दूधिया रंग का हो गया है। सर्वत्र शीतल मन्द-सुगन्ध पवन वातावरण को मोहक और मदमस्त बना रही है। ऐसे स्निग्ध लुभावने वातावरण को साकार करने वाली कुछ पंक्तियाँ—

चाँदनी रात
वन-गन्ध है पहाड़ों पर
चाँद को

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ११

चक्रवाल झील है निहार रही
आ रही मन्द
चमेली-झकी बारीक हवा
मन बदन के
सभी परदे उठा, उतार रही
नदी दूध-झाग
अछूती जगह
सलोनी रात ।'[1]

सूर्य के तीव्र ताप से झुलसे हुए बैसाख की एक शाम का दृश्यांकन—

'हरे कच्चे पात लिए
गदराये गोल आम
झुके अमलतासों से
झरती
बैसाख शाम
भटक रहा मन
गोल बबूला गरम ।'[2]

वन्य-प्रदेश की गहनता, बीहड़ता और भयावहता का सूक्ष्म चित्रण गिरिजाकुमार माथुर ने 'बीहड़ जंगलों के बीच' कविता में किया है। घाटियों, पर्वतों से घिरे ढाक के वे जंगल जोकि इतने घने हैं कि आसपास के वातावरण में दिन में भी घुप्प अंधकार छाया रहता है, हाथ को हाथ तक नहीं सूझता। ऐसे निस्तब्ध गहन अन्धकार से आच्छादित वन्य प्रदेश का चित्रांकन इन चार पंक्तियों में इस प्रकार है—

'घाटियाँ
पर्वत
अँधेरा धुप
धुमैले घने जंगल ढाक के ।'[3]

कोणार्क के सिन्धु-तट का एक दृश्य—

'लुप्त नदी
खोये हुए मुहाने के रेत टीले
बालू भरा चौड़ा जलहीन पाट
आज भी बना है
किनारों पर झाऊ के जंगलों की पांत
वैसी की वैसी

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० १४
२. वही, पृ० २७
३. वही, पृ० २८

अब भी सनसनाती है
समुद्र की अनवरत ठण्डी साँसों की तरह
पत्तों में, सूनी डालों में
काही तिनकों में।'[1]

प्रकृति जहाँ नैसर्गिक सौन्दर्य द्वारा मानव-मन में सुकोमल भावनाओं का संचार करती है वहीं उसके विभिन्न उपादान नाना क्रियाओं के माध्यम से मनुष्य को कर्म की प्रेरणा भी देते हैं। मनुष्य स्वभाव से आलसी प्रकृति का जीव है, हजारों समस्याएँ प्रतिक्षण उसे घेरे रहती है, लेकिन सन्तोष-धन को सर्वोत्तम मानकर वह जिन्दगी ज संघर्षों से सदैव बचता रहता है। 'निसर्ग में वापसी' कविता में कवि ने बताया है कि पौधा धूप और हवा का सेवन करके अपने विभिन्न अंगों को परिपुष्ट इसलिए बनाता है जिससे दूसरे व्यक्ति उसके फलों को ग्रहण कर सकें। बेल भी सहज सुख के लिए अपना प्रसार व विकास करती है। जल मनमाने ढंग से जहाँ चाहता है सुगमतापूर्वक बहता रहता है और जीवमात्र की प्यास बुझाता है, लेकिन मनुष्य अपने से निश्चित, दुनिया से बेखबर निद्रा में लीन रहता है, आलस से जकड़ा रहता है। जो कुछ मिल गया उसी में संतोष कर लेता है, लेकिन कुछ अधिक उपलब्ध करने के लिए संघर्ष नहीं करता। प्रस्तुत कविता में प्रकृति के ये विभिन्न उपादान मानव को कर्म की प्रेरणा देते हैं—

'यह मिट्टी अपनी जगह निश्चल पड़ी हुई
कितनी आनन्दित है
यह पौधा—
अपने ही पत्तों में लिपटा
धूप हवा लेता अपने में मगन है
यह बेल पसरती है—सहज है सुख के धरातल पर
यह जल—
उधर बहता है जो बेरोक है, सुगम है
और मैं : मुझे नींद कितनी प्यारी है
आत्मदान कितना प्यारा है; परितोष कितना प्यारा है।'[2]

'पतझर की एक दुपहर' कविता में मानव-मात्र के लिए मंगल-कामना करता हुआ कवि कहता है कि जिस प्रकार हर वर्ष पतझर के मौसम में पुराने पीले पत्ते एक-एक करके वृक्ष से झड़ जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में भी वर्ष में कम-से-कम एक बार समस्त चिन्ताएँ, तकलीफें, समस्याएँ, अवहेलानएँ क्यों नहीं समाप्त हो जाती हैं—

'ढेर-ढेर पीले पत्तों की तरह

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० १५
२. वही, पृ० २६

ये मेरे रोग
चिन्ताएँ
तकलीफें
अवहेलनाएँ
क्यों नहीं पूरी-पूरी गिर जातीं
साल में एक बार।'[१]

आधुनिक मानव दिखावटीपन का शिकार कुछ इस तरह से हो गया है कि वह सत्य बात को कहने में हिचकिचाहट महसूस करता है। सत्य बोलने में उसे गर्व की अनुभूति न होकर ऐसा लगता हैं मानो वह कोई मुजरिमाना कार्य कर रहा हो। चेहरे पर नकली मुखौटे लगाकर साधारणजन को झूठे आश्वासनों में भरमाए रखने में दक्ष आज के मनुष्य की कथनी और करनी में इतना फर्क है कि वह कहता तो बड़ी-बड़ी बातें है, लेकिन करता कुछ भी नहीं। कर्म की महत्ता क्रमशः कम होती जा रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो 'कर्म' कुछ ठोस कार्य करने का पर्याय न होकर मात्र शब्द बनकर रह गया है—

'लगता है अब
हर बात से
बड़ा अर्थ कोई कट गया
लगता है
एक बारगी
सब कुछ ही गलत हो गया
× × ×
साफ कहने में कुछ इस तरह कतराना
मानो कर रहे हों आप
कोई काम मुजरिमाना
अब इरादों, दिलासों और दावों का
सब को खूब नाटक
करना आ गया है
अब कर्म की जगह
सिर्फ शब्द आ गया है।'[२]

गिरिजाकुमार माथुर के प्रस्तुत कविता-संकलन में प्रकृति के सुन्दर व प्रेरक रूप तथा वैयक्तिक सुख-दुख के साथ-साथ सामाजिक संचेतना का स्पर्श भी मिलता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि व्यक्ति समाज से कहीं भी कटा हुआ नहीं है। वस्तुतः एक दूसरे का पूरक ही है। 'भीतरी नदी की यात्रा' में कवि स्वयं भी इस

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ३३
२. वही, पृ० ४०

बात को स्वीकारते हुए कहता है 'असलियत में जीवन की समस्त अनुभूतियों को मैं दो स्तरों पर भोगता रहा हूँ। एक को मैं आत्मीय और व्यक्तिगत कहूँगा और दूसरे को सामाजिक। ये दोनों प्रकार की रचनाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं, क्योंकि मैं मानता हूँ कि जीवन का अन्तरंग भोग सामाजिक न्याय और स्वस्थ पक्ष के बिना सम्भव नहीं (भूमिका)। सामाजिक चेतना को उजागर करने वाली कविताओं में जीवन की कटुता घुटन, अवसाद व टूटते हुए पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण है। आधुनिक इलेक्ट्रान सभ्यता ने मानव को संवेदनहीन व मानवीय सद्भावनाओं से शून्य बना दिया है। अपने चारों ओर फैली अनास्था, घुटन और अन्धकार का चित्रांकन कवि ने 'मूड ट्रेंक्वेलाइजर', 'बीसवां अन्धकार', 'रचनाहीन', 'यन्त्र-त्रास' तथा 'वणिक् संस्कृति का मृत्युगीत' आदि कविताओं में किया है।

आज की तनाव-भरी जिन्दगी में लगता है, सब व्यक्ति दोहरी जिन्दगी जी रहे हैं। दुःख-सुख, उदासी-कहकहे, गुस्सा और रोमान्स के बीच कहीं जिन्दगी झूल रही है जो नाटक से कहीं भी कम दृष्टिगत नहीं होती। लगता है विपरीत परिस्थितियों के बीच जीवन के हर क्षण में मनुष्य अभिनय-सा कर रहा है।

'हम खुश होते है
और दुख मनाते हैं
हम उदास होते हैं
और कहकहे लगाते हैं
हम व्यंग्य करते हैं
और तरस दिखाते हैं
हम गुस्सा करते हैं
और रोमान्स लड़ाते हैं
कितने गम्भीर हैं हम
इस सारे नाटक में
कि अपने हर अभिनय को
बेहद सच मानते हैं।'[1]

वैज्ञानिक आविष्कारों की बढ़ती होड़ के कारण जिन्दगी कुछ इतनी तेज रफ्तार से आगे बढ़ रही है कि जनसामान्य के मन से धीरे-धीरे मानवीय सद्भावनाएँ समाप्त होकर जड़ता व यान्त्रिकता-सी आती जा रही है। मनुष्य मनुष्य से घृणा, द्वेष व ईर्ष्या करता है, एक दूसरे पर शक-शुबाह करके दोषारोपण करता है, व्यंग्य कसता है। कड़वी से कड़वी बात कहने में तथा अवहेलना करने से भी वह कतराता नहीं और यह सब इसलिए होता है कि आज का व्यक्ति स्वार्थी हो गया है। वह दूसरे का हक छीनकर शायद तृप्ति का अनुभव करता है।

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ४२

विधाता की सबसे सुन्दर रचना व बुद्धिपूर्ण रचना—मानव का उद्देश्य तो मन में मानवीय भावनाओं का उन्नयन करना होना चाहिए। अपने मन के ममत्व और प्रेम को रोटी के छोटे-छोटे टुकड़ों की भाँति मानव-मात्र से बाँटने की अदम्य आकाँक्षा होनी चाहिए।

'इस कलमुँही दुनिया में
जहाँ आँखों में
सिर्फ घृणा की है कालिमा
हर मन में शक शुबहा
कड़वी कुत्सा
हर कर्म में छिपी ईर्ष्या
हर मुँह में तेज धार
व्यवहार में अवहेला
× × ×
कितना आसान है

किसी से कुछ छीनना
कितना आसान है
किसी पर दोष थूकना
× × ×
पर कितना कठिन है
एक मामूली सी ममता को
औघड़ हो बांटना
एक प्यार भरे छोटे से मन को
रोटी की तरह टुकड़े कर
देते चले जाना।'[1]

आधुनिक मानव का संत्रास यही है कि मानवीय सम्बन्धों में धीरे-धीरे बिखराव आ रहा है। कारण, भौतिक सुख की उपलब्धि के लिए किए गए वैज्ञानिक आविष्कार जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना बन गए हैं। ऊँचे-ऊँचे लोहे-शीशे से निर्मित भवन मनुष्य के लिए सुन्दर सजी समाधि मे ज्यादा मूल्य नहीं रखते। वहाँ घर का सुख-चैन खत्म हो गया है। माता-पिता व बच्चों के बीच आत्मीय सम्बन्ध शिथिल होते जा रहे हैं। पत्नी···नारी के उच्च आदर्शों को विस्मृत कर बैठी है। इसीलिए उसे घर-गृहस्थी, पति-बच्चों से ज्यादा सुख होटल में कैबरे करने व माडलिंग करने में उपलब्ध होता है। बच्चे जिन्हें बचपन में माता-पिता का स्नेह उपलब्ध नहीं होता वे युवा होते ही अपने गमों को नशे से भुला देना चाहते हैं। काल्पनिक सुख की उपलब्धि नशे के इंजेक्शन द्वारा करना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि जीवन का सुख-चैन, अपनापन

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ३७-३२

सब अपना न रहकर बाजारू-सा हो गया है। माँ-बाप, पति-पत्नी के टूटते सम्बन्धों ने उन्हें मात्र एक मर्द और औरत बना छोड़ दिया है। आधुनिक सभ्यता में रंगे हुए आज के मानव की इसी विडम्बना का चित्रण 'यन्त्र-त्रास' कविता में हुआ है।

'मैंने रहने के लिए
मंजिलों मंजिलों ऊँचे
भवन बनाए थे
वह मुझ पर ही बैठ गए
लोहे शीशे की समाधि से
× × ×
मैंने मन के सुख चैन को
सदियों की तपस्या से
एक गृहस्थी बनाई थी
वह एक दिन
कपड़े फेंक
कैबरे में नाचने लगी
विज्ञापनों में बैठ गयी
घर होटल में बदला
बच्चे युवा सब भागे
नशे के इन्जेक्शनों का लगा
फेशनेबिल चस्का
× × ×
सारा अपनापन उजड़ा
बाजारू हुआ अन्तरंग
आदमी हुआ सस्ता
अब माँ है न बाप है
न पत्नी है, न पति
अब प्लेक्सी ग्लास के
किसी भी उघड़े फ्लैट में
कोई भी मर्द है
कोई भी औरत है।'[1]

'बीसवाँ अन्धकार' प्रस्तुत काव्य-संग्रह की काफी सशक्त रचना है जिसमें कवि ने पाश्चात्य देशों में मशीनीकरण के दुष्परिणामों का आकलन किया है। वहाँ विज्ञान के बढ़ते चरणों के कारण मनुष्य का जीवन जंगी मशीन के बटन और इतिहास के कूड़ेदान में रद्दी के पैकेट से ज्यादा महत्त्व नहीं रखता। नफरत, आक्रोश,

---
१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ४८ ४९

हिंसा, तोड़फोड़, मारधाड़, युद्ध का वातावरण दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है। अपने चारों ओर इस विषाक्त अन्धकार के फैलाव के कारण ही पश्चिमी देशों के लोग प्रकृति से काफी दूर हो गए है। प्रकृति उनमें नयी स्फूर्ति व प्रेरणा नहीं भरती। प्रकृति का लुभावना रूप उन्हें अपनी ओर आकृष्ट नहीं करता, क्योंकि जिन्दगी कुछ इतनी तेज रफ्तार से आगे बढ़ रही है कि दो क्षण रुक कर प्राकृतिक सुषमा का अवलोकन बहुत कठिन हो गया है। 'प्रकृति के रम्य स्थल मशीनी सभ्यता के राक्षसी पंजों की जकड़न में धीरे-धीरे जकड़ते जा रहे हैं। लगता है उनका सुन्दर रूप-रंग छीन कर मनुष्य उन्हें भी मशीनी बनाने में पीछे नहीं रहना चाहता।'[1]

'तुमने बेहिसाब,
चर डाले सारे सुगन्ध जंगल
डीफोलिएट झौंक नंगधडंग किये पेड़
ढोक लिया नदियों का पानी
बना लिया
समुद्रों को तेल का कुप्पा
झीलों को गटर और पोखर
कारखानों के फुजले ने
भरे ताजी हवाओं में गन्धक के बादल
धूप पर इलैक्ट्रो प्लेटिंग
चाँदनी पर डियोडोरेण्ट वार्निश।'

आज की इलेक्ट्रॉन सभ्यता ने मनुष्य को सेण्ट्रल-हीटिंग, कम्प्यूटर, टीवी, कार आदि जीवन की सुख-सुविधाएँ तो दी हैं, लेकिन इनके साथ-साथ समाज को मफिया, मुनाफाखोरी, मर्डर, भोग कैबरे आदि पापमयी प्रवृत्तियों से परिपूर्ण दुनिया भी दी है। 'ऐसी दुनिया जो मानवीय सम्बन्धों व स्नेहिल वातावरण से कोसों दूर है। जहाँ बच्चों के दिल में माँ-बाप के लिए इज्जत नहीं है, क्योंकि बार-बार उनके बाप बदलते है, माँ बदलती है कारण माँ-बाप के बीच कई बार तलाक होते हैं। हर बार नयी माँ के आने पर नया हंगामा पैदा होता है। बच्चा जन्म लेते ही अपने-आपको एक खुशहाल वातावरण में, माँ-बाप की ममत्व-भरी छत्रछाया में महसूस न करके अपने जनकों के बीच मारपीट, मुक्केबाजी, झड़प-झगड़े को ही देखता है। ऐसे ही बच्चे जो आजीवन प्रेम से वंचित रहते हैं आगे चलकर अपराधी बन जाते हैं। अपनी नासमझी से वह स्वयं तो दुःख उठाते ही हैं साथ ही समाज को भी कलंकित करते हैं—

'भागती हुई सामने
अण्ट-शण्ट बराती
ऐश-इशरत से भौंचक
चकाचौंध अन्धलोक की पोल में भहराई

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ६५

घन्नाती इलेक्ट्रॉन सभ्यता···
वर्षों से
र्माफिया, मुनाफा, शराब धुत-रूलेट
स्विग, कैबरे, कैसीनों, भोग, मर्डर के बीच
पोशीदा पापों से भयभीत
खूबसूरत सम्बन्धों से कटी हुई दुनिया
मैंने देखा है
भागते हुए तुम्हें
अपने ही बनाये हुए घर से
अपराधी सन्तान हमलावर से

× × ×

जिन्होंने जन्मते ही देखे
आधी नींद में चौंककर
अपने जनकों के बीच
शोर, थुक्का फजीहत-मुक्केबाजी झड़प-झगड़ा
सूजी आँख, दाँत कटी बाँह, फटी शर्ट स्कर्ट, टॉप
बार-बार बदले बाप
बार-बार घर में आती
एक औरत धमकाती
एक और नयी माँ
मोहमाया, कोमलता, संवेदना
नफासत कहाँ
यहाँ
बदले में मिला फ्रेम
सेण्ट्रल-हीटिंग, कम्प्यूटर, 'टीवी', एसिड, 'पिल', कार
किस कीमत पर मिला ।[1]

यान्त्रिक सभ्यता ने मनुष्य को इतना शुष्क और संवेदनहीन बना दिया है कि 'प्रेम' जैसी पवित्र अनुभूति भी उसके लिये बोरियत का रेचन मात्र है। उसकी पसन्द इतनी कुरुचिपूर्ण है कि कला उसके लिए कामुक विज्ञापन है। भगवान् की मूर्ति से कोई धार्मिक भावना नहीं जुड़ी है वह तो तस्कर-व्यापार का एक साधन मात्र है। साहित्य उसके लिए सेक्स के प्रदर्शन से ज्यादा महत्त्व नहीं रखता। ऐसी छिछली रुचि व वामनात्मक दृष्टिकोण है आज के मानव का।

'प्यार बोरियत का रेचन
सादा पानी तत्काल,

1. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ६३-६५

तुम्हारी पसन्द प्रेत, थ्रिलर, चमत्कार, मारधाड़
आर्ट कामुक विज्ञापन
ड्राइंगरूम की आसाइश
मूर्ति तस्कार-व्यापार
साहित्य सेक्स का बाजार
संगीत शो कानफाड़ ।[1]

निम्न व मध्यवर्गीय जीवन की कटुता, घुटन, संघर्ष व पीड़ा को कवि ने स्वयं भोगा है और उन्हें पूरी तिक्तता से अपने काव्य में अभिव्यक्त भी किया है। आज के मनुष्य का जीवन मशीन की भाँति यन्त्रवत हो गया है जिसमें अभावों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ, सुख-साधनों से वंचित मनुष्य दिनभर अपने अफसर के इशारों पर कठपुतली की तरह नाचता रहता है—

'काम धन्धे में लगे
तमाम आदमी निकलते हैं
उनमें और कठपुतलियों में
अब कोई फर्क नहीं लगता।'[2]

जीवन में दुखों और अभावों को झलते-झेलते लगता है दुखों की चक्की भी भोथरी हो गई—

इस उड़ती उम्र को देखता हूँ
दुख नहीं होता—
पीस-पीस कर मुझको
दुखों की चक्की भी भोथरी हो गयी है ।[3]

दुनिया के नैतिक बवण्डर में जहाँ चारों ओर द्वेष, कुटिल, षड्यन्त्र मित्र-घात, युद्ध आदि का बाजार गर्म है। पक्षधरता ही परम सत्य है जहाँ न्याय और हत्या दोनों का एक ही अभिप्राय है। ऐसी स्थिति में कवि अपनी आत्मा से प्रश्न करता है कि मिथ्याचारी कुहराम से बचाकर रखे सत्यखण्ड को, मन-ही-मन बाँझ होती प्यार की बूँदों के बीज कैसे रोपे जायेंगे ? क्योंकि मानव-मन रूपी भूमि आज बँजर हो गई है उसमें मानवीय भावों—दया, ममता, प्रेम, सहानुभूति का स्थान झूठ, बेईमानी पक्षपात व स्वार्थपरता ने ले लिया है—

'द्वेष और कुटिलता
षड्यन्त्र और मित्रघात
सत्ता का दर्शन है
× × ×

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ६६
२. वही, पृ० ६८
३. वही, पृ० ७०

यन्त्र एक शस्त्र है
पक्षधरता परम सत्य है
ज्ञान है गुलाम
राज्य सिर्फ ईश्वर है
अब न्याय और हत्या
दोनों ही एक हैं
× × ×
ओ निर्वासित आत्मा
इस घनघोर दुनिया के नैतिक बवण्डर में
तू अपना शेष बचा
मुश्किल से रखा सत्यखण्ड
जो इस मिथ्याचारी कुहराम में
निरादृत, अवहेलित है
उसे कहाँ रोपेगी—
हर भूमि आज बंजर है
ओ ममता भरी उत्सव सी भावना
घृणा की इस कड़वाई बीभत्स रात में
मन-ही-मन बांझ होती
प्यार की पछताती बूँद
अर्पित करोगी कहाँ।'[१]

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में 'आने वाले अन्दलीबों के लिए' कविता गालिब की स्मृति में लिखी गई है। इसमें कवि ने बताया है कि जब-जब सभ्यताओं के महल ढहते है, सिंहासन सूने होने लगते हैं, समाज से व्यक्ति का विश्वास उठने लगता है, विगत प्रेरणारहित हो जाता है, वर्तमान निरर्थक निःस्पन्द प्रतीत होता है, व्यक्ति का व्यक्तित्व विघटनशील तत्त्वों द्वारा विघटित होने लगता है तब-तब समाज में व्यास और तुलसी, गेटे और गालिब जैसे महान् कलाकार जन्म लेते हैं। वे अपनी कला के माध्यम में से मनुष्य मात्र की समस्याओं के दुःख-दर्द को साकार करते हैं—

'जब बड़े पैमाने पर
टूटती है पद्धतियाँ
और मिस्मार होते हैं महल सभ्यताओं के
जब सूने हो जाते है सिंहासन
मिटती हैं राजधानियाँ धूल की बरसात में
जब विश्वासों के फ्रेम परखचों में उड़ते हैं
आखिरी बार चीखता है

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ५७, ५२, ५३

जिन्दा दफन होते हुए इतिहास
वक्त मँडराता है जब तूफानी गर्दिश में
वर्तमान निरर्थ होता है
व्यक्तित्व की संक्रान्ति में
× × ×
तब आग के होंठ खुलते हैं
एक व्यास और तुलसी
एक गेटे और गालिब में।'[1]

कविता किसे कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर गिरिजाकुमार माथुर ने इस कविता द्वारा दिया है कि कविता में न तो रोजगार है, न मुनाफे की दुकान, न वाहि-वाहि का जश्न है, न सीढी-चढ़ तरक्की। न दौलत है न इज्जत, वरन् वह तो अनुभूति सत्य की साकार अभिव्यक्ति है। कविता हर युग में बेकार की चीज मानी गई है और शायर को निठल्ला आदमी समझा गया। यदि कभी कवि और उसकी कविता को महत्ता मिली भी तो उसकी कविता राजा-महराजाओं के लिए आराम की वस्तु बनकर रह गई। राजा को रिझाना, प्रसन्न रखना, उसकी झूठी प्रशंसा करना, उसकी बहादुरी के क़िस्से बढ़ा-चढ़ाकर चित्रित करना ही कवि का लक्ष्य बन गया। लेकिन गालिब जैसे उच्चकोटि के शायर ने अपनी कविता को राजा-नवाबों के दिल-बहलाव की सामग्री न बनाकर उसके माध्यम से जनसामान्य की वाणी को मुखरित किया।

कविता के अन्त में कवि यही बताता है कि कविता का रास्ता जोखिम से भरा है। यहाँ व्यक्ति को अपना सलीब खुद ही उठाना पड़ता है। अपना रास्ता स्वयं निर्मित करना पड़ता है। संसार से अज्ञानता के अन्धकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाना होता है। कवि जोकि जनसामान्य की अपेक्षा ज्यादा संवेदनशील प्राणी होता है उसका यह दायित्व बन जाता है कि वह व्यक्ति और समाज के दुख-दर्द को, उनकी समस्याओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से साकार करते-करते बेनाम मिट जाए जिससे आने वाली पीढ़ियाँ उसकी रचनाओं को पढ़कर प्रेरणा ग्रहण करें, उसकी दूरदर्शिता, समसामयिक परिवेश के प्रति सजगता तथा शायरी के नये आयामों की सराहना करें—

'यह राह है
अपनी सलीब खुद ही उठाने की
इतिहास की स्याह रात में
लपट बनकर जल जाने की
अपनी दुनिया के सामने
बेनाम मिट जाने की

1. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ५८

आदमी के बहुत बड़े दर्द को
अजन्मे भविष्य की धड़कनों में
पहुँचाने की।"[1]

'भीतरी नदी की यात्रा' कविता-संग्रह में' सोनार देश ! सलाम !!' कविता समसामयिक विषय को आधार बनाकर लिखी गई है। इसमें सन् १९७१ में बंगला देश में हुई क्रान्ति का चित्रण किया गया है। बंगला देश जो पहले पूर्वी पाकिस्तान के नाम से जाना जाता था, समुद्र-तट के निकट ताड़ के वनों से आच्छादित, पटसन व धान की खेती से भरपूर, प्रकृति की गोद में बसा यह देश १९७१ में पाकिस्तान में हुए चुनाओं के पश्चात्—भयंकर खूनी दौर से गुजरा। 'आवामी लीग' इन चुनावों में (पूर्वी बंगाल में) भारी बहुमत से विजयी हुई और 'लीग' के नेता शेख मुजीबुर्रहमान ने पूर्वी बंगाल की आन्तरिक स्वतन्त्रता की माँग की, जिसे पाकिस्तानी सरकार ने न केवल ठुकरा दिया बल्कि उसके भाड़े के कसाई सैनिकों ने कर्ज़े से उपलब्ध टैंकों व गोला-बारूद की सहायता से बंगला देश के नागरिकों से अमानवीय व्यवहार किया। वहाँ के निरपराध निहत्थे लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। इन सैनिकों द्वारा किये नरसंहार की चपेट से बच्चे, बूढ़े, औरतें, लेखक, शिक्षक, पत्रकार आदि बुद्धिजीवी-वर्ग के लोग भी नहीं बच पाए। सैनिकों द्वारा की गई गोलाबारी से मस्जिद, मन्दिर, विद्यालय व अस्पताल जैसे पवित्र स्थल भी अछूते नहीं रहे। ऐसे खूँखार कातिलों द्वारा किये गए अमानुषीय व्यवहार का चित्रांकन कवि ने इस प्रकार किया है—

'पद्मा के रंगीन पाट पर
हिल्सा के सोंधे वक्ष पर
धुले-धुले ताड़वन
पटसन और धान पर
उतर आया है
हत्या से लाल आसमान
रॉकेटों से जलते निहत्थे मकान
ताजी देहों पर
गरम इस्पात के निशान
सड़कों पर बरसाते आग
कर्जे के टैंक
भाड़े के कसाई
करते अन्धाधुन्ध कत्लेआम
गोलों से मिस्मार
मन्दिर, मस्जिद, विद्यालय, अस्पताल

१. भीतरी नदी की यात्रा—माथुर, पृ० ६१

चुन-चुनकर जिबह किये
लेखक, शिक्षक, पत्रकार,
बच्चों औरतों भरी मासूम छतों को
हथगोलों से चिथड़े बनाती
घिनौने गिद्दों-सी
छतरीधारी कतार ।'[१]

प्रस्तुत संकलन की कविताएँ भावपक्ष के साथ-साथ कलापक्ष की दृष्टि से भी प्रौढ़ हैं । इन कविताओं में सरलता, सादगी के साथ-साथ युगीन-भाव-बोध को अभिव्यक्त करने की क्षमता भी है । गिरिजाकुमार माथुर ने इस संकलन की कविताओं में गाँव, शहर, दर्शन, विज्ञान आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से शब्दों का चयन करके जहाँ शब्दों को नये अर्थ प्रदान किये और भाषा में व्यंजनात्मकता का समावेश किया वहीं बोलियों के शब्दों, अंग्रेजी व उर्दू के शब्दों तथा वाक्य-विन्यास का प्रयोग करके अपनी काव्यात्मक चैतन्यता का परिचय भी दिया है । सूक्ष्म भाव-संवेदनों को रूपायित करने के लिए नये-नये उपमानों की नियोजना भी की है, जैसे—

'चीजों के चेहरे से
रौनक-सी पुँछ गयी ।[२]
पीठ किये
जब तक पास खड़ी रही
लगती रही आँच-सी ।'[३]

चित्रात्मकता माथुरजी के काव्य की अपनी विशेषता है । इस संकलन की अनेक कविताओं में विभिन्न बिम्बों के द्वारा कवि ने चित्रात्मकता की सृष्टि की है—

'मैदा के रंग-सी
मटकती सुन्दर औरतें
ठंडी रोशनी वाली बैटरियों सी ।'[४]

शब्दों की ध्वन्यात्मकता व लयात्मकता का भी कवि ने पूरा-पूरा ध्यान रखा है । शब्दों की आत्मा को परख कर उनके द्वारा व्यंजित अर्थ को स्पष्ट करने की उन्होंने सर्वत्र चेष्टा की है ।

१. भीतरी नदी की याद
२. वही, पृ० ३६
३. वही, पृ० १३
४. वही, पृ० ६६